पुस्तक विक्रेता—
नंदकिशोर एंड ब्रदर्स
चौक, बनारस।

प्रथम संस्करण
वसंत-पंचमी, सं० २००० वि०
मूल्य २)

मुद्रक
विश्वनाथप्रसाद
ज्ञानमंडल यंत्रालय, काशी।

प्रस्तावना

हिंदी-साहित्य का काल-विभाजन करते हुए इतिहासकारों ने रीतिकाल के भीतर कुछ ऐसे कवियों को फुटकल खाते में डाल दिया है जो रीतिकाल की अधिक व्यापक प्रवृत्ति शृंगार या प्रेम के उन्मत्त गायक थे। इनमें आलम, घनानंद, ठाकुर और बोधा का नाम आता है। भक्तिकाल के बीतते-बीतते हिंदी में शृंगार की धारा वेग से प्रवाहित हुई। शृंगार की अभिव्यक्ति के लिए अधिकतर कवियों ने रीति को अर्थात् रस, नायक-नायिका, अलंकार, पिंगल आदि काव्यांगो के भेदोपभेदों को आधार बनाया। पर ये वस्तुतः काव्य-पक्ष ही सामने करनेवाले थे, शास्त्र-पक्ष नहीं। बात यह थी कि संस्कृत में साहित्य का शास्त्र-पक्ष अपने समृद्ध रूप में इन्हें विवेचित उपलब्ध हो गया, अतः स्वतः छानबीन करने की इन्हें आवश्यकता ही नहीं पड़ी। हिंदी में काव्य-रचना की अभिरुचि रखनेवालों के लिए कविशिक्षा की पुस्तकें अपेक्षित थीं। कविशिक्षा या रीति की पुस्तकें सामने लानेवाले काव्यांगों को अपनी अभिव्यक्ति का साधन बना बैठे, शास्त्र का विवेचन उनका साध्य नहीं रह गया। इसी से रीतिकाल के भीतर जिन जिनकी रचनाएँ समाविष्ट हैं उनमें आचार्य कहलाने योग्य कर्ता बहुत थोड़े हैं, अधिकतर दोहों में लक्षणों को पद्यबद्ध करके ये लक्ष्य-रूप में अपनी रचना रख दिया करते थे। फल यह हुआ कि इनकी रचना शास्त्र में गिनाई सामग्री से आगे नहीं बढ़ सकी। ये केवल 'शास्त्र-संपादन' ही करते रह गए, भाव की मार्मिक अभिव्यक्ति पर से इनकी दृष्टि स्वतः हट गई।

इसी काल में कुछ कवि ऐसे भी दिखाई पड़ते हैं जिन्होंने लक्षण-ग्रंथ तो नहीं लिखे, पर जिनकी रचना पूर्णतया रीतिबद्ध है। ऐसे कवि वस्तुतः लक्षणों को पद्यबद्ध करने का फालतू बखेड़ा अपने सिर नहीं ओढ़ना चाहते थे, पर रीति की सारी जानकारी का उपयोग अवश्य करना चाहते थे। ये चाहते थे कि लक्षण-रूप में प्रस्तुत रचना की अपेक्षा अपनी कृति में अधिक कसावट रखी जाय, उसमें चमत्कार लाने का थोड़ा खुला प्रयत्न किया जाय। बिहारी, रसनिधि

आदि इसी प्रकार के कवि थे। ऐसा खुला प्रयत्न करने पर भी इन्हें रीतिबद्ध कवियों की मंडली से पृथक् नहीं कर सकते। इसका हेतु यह है कि रीति या शास्त्र की जमीन पर ही इन्होंने पच्चीकारी की है, इसी से बिना रीति या नायिकाभेद आदि की पक्की जानकारी के इनके बहुत से छंद बुझौवल से प्रतीत होंगे, अर्थात् इन्होंने बंधान रीति के बल पर ही बाँधा है, उसी में टेढ़े-सीधे मार्ग निकाले हैं। फिर भी रीति के भार से इनकी कविता लक्षण-ग्रंथ-प्रणेताओं की कृति की अपेक्षा कुछ कम दबी है। इन्होंने बंधन ढीला कर लिया है, इसी से इनमें कुछ ऐसी उक्तियाँ भी मिलती हैं जैसी शुद्ध शास्त्र-संपादन की इच्छा रखनेवालों में कदापि नहीं मिल सकतीं।

इतने से ही उन्हें संतोष नहीं हो सकता था जो हृदय के फैलाव के लिए और चौड़ी भूमि चाहते थे। अतः उसी काल में स्वच्छंद मनोवृत्तिवाले ऐसे कवियों का भी प्रादुर्भाव हुआ जो रीति का बंधन तोड़ डालना चाहते थे। ये शास्त्र में गिनाई हुई सूची तक ही रहनेवाले नहीं थे। ये प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए हृदय का पूर्ण योग संघटित करने के अभिलाषुक थे। रीतिबद्ध होकर एक ओर काव्य-रचना अधिकतर बहिर्वृत्ति के निरूपण में व्यस्त थी, दूसरी ओर इनके हृदय का वेग अंतर्वृत्ति के निरूपण का अवकाश चाहता था। अतः इन्होंने रीति-पद्धति का अतिक्रमण किया। 'ठाकुर' कवि ने शास्त्र में गिनाई हुई सामग्री के भरोसे अपना पांडित्य दिखानेवालों को कविता के साथ खेल करनेवाले कहा है—

सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीनो कल्पवृच्छ कामधेनु चिंतामनि,
सीखि लीनो मेर औ कुबेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहीं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है॥

ऐसी रचनाएँ मिट्टी के ढेले की भाँति इन्हें तुच्छ तो जान ही पड़ती थीं, इनके हृदय पर चोट भी करती थीं। रीतिबद्ध रचना अधिकतर अपना शृंगार करने में ही लगी रह जाती थी, उसमें कला-पक्ष प्रधान हो गया था। कवि उनके बनाने में वैसे ही भिड़े रहते थे जैसे पच्चीकारी करनेवाले काच के टुकड़ों को ठीक ठीक बैठाने में परेशान रहते हैं। इसी से उनकी रचना बोझिल हो जाती थी। पर इन प्रेमोन्मत्त गायकों में हृदय का वेग ही कविता का रूप धारण कर लेता था, मरने-पचने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी या कम पड़ती थी। घनानंद रीतिबद्ध कवियों से अपना पार्थक्य यों घोषित करते हैं—

तीछन ईछन-बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्राननि प्यारे भरे अति पानिप मायल घायल चोप चटावत।
यौं घनआनँद छावत भावत जान सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत॥

ये काव्यमूर्ति थे, इनकी कविता ने ही इनका निर्माण किया था, ये स्वयं कविता के निर्माण में हैरान नहीं रहते थे। इसी से इन कवियों की रचना म वाणी के ऐश्वर्य का बहुत बड़ा कोश मिलता है। वाणी के विस्तार की सीमा वस्तुतः ये ही जानते थे। भावों का कोश वाणी के प्रतीकों द्वारा उद्घाटित करने की शक्ति इन्हीं में थी। हृद्गत अनुभूतियों को ठीक ठीक व्यक्त करने के लिए भाषा की गति निरंतर बाधित होती रहती है। इन कवियों ने लाक्षणिक और व्यंग्यमूलक पद्धति पर अधिकाधिक चलकर यह बाधा दूर कर दी है। ये भाषा की गति तीव्र करनेवाले और पद-न्यास की सूक्ष्मता का मर्म समझनेवाले थे। घनानंद ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है—

आँखिन मूँदिबो बात दिखावति सोवनि जागनि बात ही पेखि लै।
बात-सरूप अनूप अरूप है भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै।
बात की बात सु बात बिचारिबो है छमता सब ठौर बिसेखि लै।
नैननि-काननि-बीच बसे घनआनँद मौन बखान सु देखि लै॥

वाणी के द्वारा 'अलेख' का भी 'लेख' हो सकता है और 'मौन' की भी 'पुकार' सुनी जा सकती है। घनानंद ने इसी विरोधमूलक प्रणाली से या वक्रोक्ति-पद्धति पर हृदय की अनेक सूक्ष्म से सूक्ष्म अंतर्वृत्तियों का उद्घाटन किया है।

सब बातों पर विचार करने से इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि 'रीतिकाल' का नाम 'शृंगारकाल' होना चाहिए। 'रीतिकाल' नाम रखने से उसके विभाजन का मार्ग ही नहीं मिल पाता, पर 'शृंगारकाल' नाम रखने से विभाजन सरलतापूर्वक हो जाता है। उसकी दो शाखाएँ स्पष्ट हो जायँगी—रीतिबद्ध और रीतिमुक्त। रीतिबद्ध की भी दो उपशाखाएँ हो सकती हैं—लक्षणबद्ध और लक्ष्यमात्र। रीतिग्रंथ लिखनेवालों ने अधिकतर शृंगार के ही गीत गाए हैं। पिंगल आदि की पोथियों में भी शृंगार की रचनाएँ ही अधिकांश मिलती हैं। 'भूषण' ऐसे दो एक वीर कवियों को अवश्य पृथक् करना होगा। पर निवेदन है कि उनकी भी आरंभिक रचनाएँ शृंगार की ही मिलती हैं और पूर्णतया रीतिबद्ध।

जिस प्रकार रीतिबद्ध रचयिताओं की प्रेरक प्रवृत्तियाँ भक्तिकाल में मिलती हैं उसी प्रकार रीतिमुक्त कवियों की भी। श्रीकृष्ण की जिस स्वच्छंद लीला का आश्रय कृष्णभक्त कवियों ने लिया उसी से रीतिमुक्त कवियों को उत्तेजक शक्ति मिली। सूरदास आदि भक्तों ने कृष्ण और गोपियों के प्रेम का स्वरूप उन्मुक्त रखा है। इसलिए रीतिमुक्त गायकों के लिए वह आकर्षण का हेतु हुआ। रसखान यद्यपि भक्तों की श्रेणी में बैठाए गए हैं तथापि वस्तुतः वे उन्मुक्त प्रेमोन्मत्त कवि थे। उन्होंने कृष्णभक्तों की गीत-परंपरा का त्याग करके और कवियों की परंपरागत कवित्त-सवैया-पद्धति का अवलंब लेकर स्पष्ट प्रस्थानभेद सूचित कर दिया है। इसलिए रसखान प्रेमोमंग के ही कवि ठहरते हैं। उन्हें भक्तों की श्रेणी से खारिज करने की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रेमोन्माद के अभिव्यंजक इन कर्ताओं के लिए राधा-कृष्ण या गोपी-कृष्ण की लीलाएँ काव्य-सामग्री का काम देती रही हैं। व्यक्तिबद्ध प्रेम की एकनिष्ठता के कारण जब इन्हें व्यक्ति-पक्ष त्यागना पड़ा है तब ये कृष्ण की क्रीड़ाशील प्रवृत्ति के उपासक बनकर उनके भक्त हो गए हैं। इसी लिए इनकी रचनाओं का आलोड़न करने पर इस तथ्य पर पहुँचना पड़ता है कि पहले तो

ये रीतिबद्ध रचना करने में प्रवृत्त होते थे पर हृदय की दौड़ के लिए वहाँ खुला मैदान न पाकर रीतिमुक्त हो जाते थे। भारतीय काव्य-परंपरा में उन्मुक्त प्रेम के लौकिक आलंबन का विधान न पाकर ये श्रीकृष्ण का अलौकिक आलंबन ग्रहण करते थे। अतः अंत में इनकी मुक्त रचना का भक्ति में पर्यवसान हो जाता था। इसी से इस प्रकार के सभी कवि अंत में कृष्णलीला के गायक या भक्त हो जाते हैं। यों तो रीतिबद्ध कवि भी 'राधिका कन्हाई के सुमिरन' का बहाना करते थे, पर उनकी वृत्ति भक्ति में लीन नहीं हुई है। यही इन दोनों में पार्थक्य है। शुद्ध भक्तों से इनका पार्थक्य इनकी असांप्रदायिक प्रवृत्ति द्वारा हो जाता है। रसखान में वैसी कट्टरता नहीं, जैसी सूर आदि में थी।

भक्तिकाल में निर्गुण और सगुण-काव्य की दो धाराएँ बह रही थीं। निर्गुण-काव्यधारा की सूफियोंवाली प्रेमप्रणाली और कबीरवाली ज्ञान-प्रणाली इतिहास में उल्लिखित है। कबीर जिस प्रकार की उपासना निर्गुण के सहारे चलाना चाहते थे वह एक ओर तो सूफियों से प्रभावित थी और दूसरी ओर भारतीय योगमार्ग से। स्वयं सूफी भी योगमार्ग से प्रभावित थे। प्रेम की पीर वाले सूफी कवियों से कबीर आदि निर्गुणमार्गियों का भेद इस बात में दिखाई देता है कि कबीर ने वैष्णव प्रपत्तिवाद से प्रभावित होकर सूफियों की भाँति ब्रह्म को केवल प्रिय-रूप में ही ग्रहण नहीं किया है, उस पर पालक, उत्पादक आदि का आरोप भी किया है, उसे स्वामी—पिता आदि भी निरूपित किया है, अर्थात् श्रद्धा का महत्त्वसूचक अंश अधिक स्वीकृत कर लिया है। फिर भी प्रधानतया उन पर सूफियों का ही प्रभाव पड़ा था। भारतीय उपासना-पद्धति के भीतर विदेशी रहस्यवाद का ग्रहण न तो जीवन के लिए उपयोगी था और न काव्य की परंपरा में ही स्वीकृत। इसी लिए सगुणमार्गी भक्तों को शास्त्रानुमोदित, बुद्धिपरिपुष्ट तथा सरल भक्तिमार्ग को राजमार्ग बनाने के लिए उनका विरोध करना पड़ा। सगुणमार्गियों की राम, कृष्ण आदि अवतारों की व्यक्तोपासना ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय काव्य में विदेशी रहस्यवाद की स्वीकृति अनावश्यक है। पर प्रेम-पीर की जो विवृत्ति सूफी रहस्यदर्शियों में दिखाई पड़ती थी और फारसी काव्य जो प्रेम-वैषम्य के गान सुना रहा था उन्हें

देखने और सुनने के लिए भी बहुत से कवि लालायित थे। फारसी काव्य की प्रेमपद्धति और सूफियों की विरहपद्धति का प्रभाव इसी लिए भारतीय शैली के हिंदी-काव्य पर भी पड़ा। बिहारी, घनानंद आदि कवियों ने इसको ऐसे ढंग से सामने किया जिसमें भारतीयता उसको ढके हुए है। बिहारी के विरह-वर्णन में जो अनुमानाश्रित वस्तु-व्यंजनाएँ हैं या सौंदर्य आदि के तथ्य का बोध करानेवाली उनकी संभोग-पक्ष की उक्तियाँ हैं उनमें विदेशी प्रभाव की झलक भर मिलती है। घनानंद ने जो निर्गुण का आधार लेकर कुछ रहस्यमयी उक्तियाँ कही हैं उनमें श्रीकृष्ण ही उनके लक्ष्य हैं। रहस्य की प्रवृत्ति इन कवियों में कभी कभी अवश्य जगती थी पर कबीर या जायसी की भाँति रहस्यदर्शिता इनका साध्य कभी नहीं बनी। कहना चाहें तो कह सकते हैं कि इन्होंने विदेशी प्रवृत्ति को ग्रहण करने का ढंग बताया। नागरीदास आदि सखीभाव के उपासकों में सूफी प्रभाव जो अपनी विशेष झलक मार रहा है उसका कारण यही है कि वे उसे छिपा नहीं सके।

रीतिमुक्त कवियों का रीतिबद्ध कवियों से पार्थक्य क्या भाव, क्या शैली, क्या भाषा सभी में दिखाई देता है। इनमें अंतर्वृत्ति-निरूपण की प्रधानता के साथ ही विरह की ओर अधिक झुकाव भी है। विरह इन कवियों में अनेक अंतर्दशाओं तथा भावना-भेदों का निरूपक बनकर आया है। घनानंद ने अनेक स्थलों पर कहा है कि संयोग में भी वियोग पीछा नहीं छोड़ता—

यह कैसो सँजोग न बूझि परै जु वियोग न क्यों हू विछोहत है।

यदि संयोग-पक्ष पर दृष्टि डालते हैं तो वहाँ भी वर्ण्य की मुद्राओं के वर्णन के स्थान पर ये मुद्राओं या हाव-भावों के हृदय पर पड़े प्रभाव का ही उल्लेख अधिक करते पाए जाते हैं। खुले मैदान में आ जाने के कारण ही इन कवियों ने होली, अखती (अक्षय तृतीया), गनगौर आदि भारतीय त्योहारों में अपनी वृत्ति विशेष लीन की है। ये केवल 'गुलाल की गरद' और 'रंग की कीच' में ही नहीं पड़े रहे। घनानंद की रचना में तो होली-दीवाली के ही वर्णन मिलते हैं, पर ठाकुर की कृति में उमंग और उत्साह के बीच बुंदेलखंड में मनाए जानेवाले अन्य त्योहारों का भी बड़ा ही चटकीला वर्णन है।

एक बात और। बोधा और कहीं कहीं आलम को छोड़कर इन कवियों ने संयोग-पक्ष में 'सुरतांत', 'विपरीत रति' आदि के कुरुचिपूर्ण वर्णनों में अपनी प्रतिभा का अपव्यय नहीं किया और न वियोग-पक्ष में बाजारी रंग-ढंग ही पकड़ा। इनमें स्वच्छंदतामूलक प्रवृत्ति (रोमांटिक स्पिरिट) प्रेम की प्रकृत भूमि पर आरूढ़ होने के लिए जगी थी, वासना के गड्ढे में गिरने के लिए नहीं। इस दृष्टि से भारतीय काव्य की आचारनिष्ठता की सुरक्षा करने में इन्होंने रीति-बद्ध कवियों की अपेक्षा अधिक और दृढ़तापूर्वक योग दिया है। बोधा और आलम के ग्रंथों में वैसी रचनाएँ उनकी आरंभिक कृतियों के रूप में ही जान पड़ती हैं, जब वे अपने को रीति से मुक्त नहीं कर सके थे।

जब शैली की ओर आते हैं तो स्पष्ट दिखाई देता है कि उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अत्युक्ति आदि की लड़ी बाँधनेवालों की अपेक्षा इनकी व्यजना-पद्धति बड़ी ही मार्मिक है। घनानंद ने तो ऐसे ऐसे पथों से भावना को ले जाने का साहस किया है जिन पर पुराने कवि तो गए ही नहीं, नए कवि भी जाने का साहस कम करते हैं—

(१) मो से अनपहचान को पहचानै हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं त्यौं पुकार मधि-मौन॥

इनकी 'पुकार मौन में' है तो उधर 'नेत्रों में कृपा के कान' लगे हुए हैं।

(२) लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रबाहरूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
ऐ किधौं बिचित्रताई मो चित-चितेरे की॥

'रंग से बना' चित्र प्रवाह में न तो स्थिर रह सकता है और न उसका रंग ही धुले बिना बच सकता है, पर यहाँ नेत्रों के प्रवाह में ही प्रिय का चित्र बना हुआ है। ऐसी विलक्षण स्थिति का कारण प्रिय का सौंदर्य है अथवा प्रेमी का मन, कुछ कहा नहीं जा सकता। बाह्यार्थ-वैशिष्ट्य (आब्जेक्टिविटी) इसका हेतु है अथवा स्वात्मवैशिष्ट्य (सब्जेक्टिविटी) कौन जाने !

इन्होंने भी अलंकृत शैली का व्यवहार बराबर किया है, पर पांडित्य-प्रदर्शन के लिए कभी नहीं, हृदय की स्थिति का सच्चा आभास देने के लिए। वस्तुतः ये सुंदरता के भेदों—रमणीयता की विविध स्थितियों—से पूर्णतया अभिज्ञ थे। 'जग की कविताई' से इनकी कविता इसी से पृथक् थी। प्रेम की विषमता के निरूपण के लिए घनानंद ने 'विरोधाभास' का सहारा बहुत लिया है, पर भाषा की मुहावरेदानी में कहीं बल नहीं पड़ने पाया है—

देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं।

आँखें स्वभाव से ही निपेटी (भुक्खड़) हैं, उस पर 'भस्मी व्यथा' (भस्मक रोग) उत्पन्न हो गई है, जिसमें जो खाया जाता है वह भी भस्म हो जाता है; जब खाते रहने पर भी, अधिक मात्रा में खा लेने पर भी, पेट नहीं भरता तब भी इन्हें लंघन करना पड़ रहा है। श्लिष्ट 'भसमी बिथा' में घनानंद ने जो आयुर्वेद की जानकारी का पता दिया है उसकी 'वाहवाही' का फालतू प्रयास यदि छोड़ भी दिया जाय तो भी 'भसमी बिथा' अपने दूसरे अर्थ को व्यक्त करने में असमर्थ नहीं है। 'विरोधाभास' के अधिक प्रयोग से घनानंद की सारी रचना भरी पड़ी है। साहसपूर्वक यह कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक में कहीं भी यह प्रवृत्ति न दिखाई दे उसे बेखटके घनानंद की कृति से पृथक् किया जा सकता है और जहाँ यह प्रवृत्ति दिखाई दे उसे निःसंकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है। इस 'अन्वय-व्यतिरेक' से इनकी कृतियों के छाँटने में पूरी सहायता मिल सकती है। 'विरोध' वस्तुतः आर्थ और शाब्द दोनों प्रकार का होता है। अर्थगत विरोध तो इनमें है ही पर विरोध की प्रवृत्ति प्रकृतिस्थ होने से शाब्द 'विरोध' भी कहीं कहीं दिखाई पड़ता है, पर केशवदासजी के 'विरोध' की भाँति उसका विनियोग पांडित्य प्रदर्शित करने के लिए नहीं है। 'विरोध' की ओर यदि ऐसे स्थलों पर ध्यान न भी जाय तो भी सामान्य अर्थ में कोई बाधा नहीं पड़ती। जैसे, 'दईमारी हारीं हम आप हौ निरदई'। यहाँ 'निरदई' का अर्थ 'निर्दय' तो है ही साथ ही 'दईमारी' के

साहचर्य में 'निर+दई' भी है। पर 'निर+दई' पर दृष्टि न भी पड़े तो भी अर्थ में कोई व्याघात नहीं पड़ता।

भाषा के विचार से तो रीतिबद्ध कवियों में से बहुत कम इनकी तुलना में टिक सकेंगे। घनानंद और ठाकुर ने व्रजभाषा को बहुत शक्ति दी है। वाग्योग का ऐसा विधान शब्दों का मनमाना और निरर्थ प्रयोग करनेवाले में कहाँ। लोकोक्तियों का जैसा विनियोग ठाकुर ने किया है, हिंदी के दूसरे कवि ने नहीं। घनानंद की रचना में तो भाषा स्थान स्थान पर अर्थ की संपत्ति से समृद्ध होकर सामने आती है। वाक्यध्वनि, पदध्वनि तो दूर रहे, इन्होंने पदांशध्वनि से भी जगह जगह काम लिया है। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

मेरो मनोरथहू वहियै अरु है मो मनोरथ पूरनकारी।

यहाँ 'मनोरथ' का श्लेष-बल से 'मन का रथ' अर्थ व्यक्त करके कवि ने केवल 'हू' से बहुत बड़ी व्यंजना की है। 'हू' का अर्थ है कि "हे कृष्ण" जिस प्रकार आप ने अर्जुन का रथ वहन किया था उसी प्रकार मेरा मनोरथ भी वहन कीजिए, क्योंकि आप 'जनार्दन' ठहरे।" इन्होंने शब्द भी गढे हैं—जैसे, 'दिनदानी' के ढर्रे पर 'दिनदीन'।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि घनानंदजी व्रजभाषा के तो पूरे जानकार थे ही, भाषा की गति को भी भाव के अनुकूल मोड़ सकते थे। ये 'व्रजभाषा-प्रवीन' और 'भाषा-प्रवीन' दोनों ही थे।

इनके जीवनवृत्त पर भी थोडा विचार करना चाहिए। मेरी दृढ धारणा है कि 'घनानंद' और 'आनंदघन' दो पृथक् पृथक् कवि थे और 'आनंदघन' नाम के कम से कम दो कवि अवश्य थे। आरंभ में 'आनंद' और 'घनआनंद' एक ही मान लिए गए थे। पर अब यह भ्रांति दूर हो गई है। 'आनंद' नाम के कायस्थ 'घनआनंद' से पहले हो गए हैं, जिन्होंने 'कोकसार' और 'सामुद्रिक' ऐसे ग्रंथ रचे हैं। ऐसी पोथियों की रचना घनानंद की प्रवृत्ति और रुचि के प्रतिकूल थी। वस्तुतः हिंदी में 'घनआनंद' और 'आनंदघन' की रचनाओं का घालमेल हो जाने से बात उलझ गई है। 'घनआनंद' का वास्तविक नाम 'घनानंद' ही था। इसका पता एक तो प्रस्तुत प्राचीन संग्रह में प्रयुक्त छाप की बहुलता पर विचार करने से चलेगा, दूसरे संग्रहकर्ता 'व्रजनाथ' द्वारा प्रयुक्त

'घनजू' शब्द भी प्रमाण प्रस्तुत करेगा। पर्वतिया और राजस्थानी लोगों में 'घनानंद' नाम बहुत चलता है। इसलिए 'घनानंद' नाम कवि का वास्तविक नाम ही जान पडता है। हिंदी में 'छाप' या उपनाम के प्रयोग की प्रवृत्ति बाहर से आई है। संस्कृत में उपनाम रखना तो दूर, कवि अपने नाम का प्रयोग भी रचनाओं में क्वचित् करते थे। मुसलमानों के संपर्क के पहले छाप के प्रयोग का पता नहीं चलता। इसके अतिरिक्त हिंदी में जैसी प्रवृत्ति पाई जाती है उसके अनुसार नाम ही काव्यप्रयुक्त छाप का रूप धारण करता था; कहीं पूर्ण रूप में, कहीं संक्षिप्त रूप में और कहीं पर्याय-रूप में। कुछ मुसलमानों ने कवित्त-सवैया लिखते समय अपने पृथक् उपनाम रख लिए हैं। जायसी ने तो अपना नाम 'मुहम्मद' ही सर्वत्र रखा, अब्दुर्रहीम खानखाना 'रहीम' या 'रहिमन' तक ही रहे और 'मुबारक' ने भी अपना नाम व्रजभाषा में ढालकर 'ममारख' किया, पर सैयद गुलाम नबी ने अपनी पृथक् छाप 'रसलीन' रखी, 'रसखान' का भी पूरा नाम सैयद इब्राहीम था। सूरदास, तुलसीदास आदि सभी ने नाम का संक्षिप्त रूप प्रयुक्त किया है। इससे मुझे 'घनानंद' नाम को मूल नाम मानने में कोई बाधा नहीं दिखाई देती। कहीं कहीं 'आनंदघन', 'आनद के घन' आदि नाम केवल छंदानुरोध से रख दिए गए हैं, अधिकतर कवित्तों में। इसलिए सुजानप्रेमी कवि वस्तुतः 'घनआनद' अर्थात् 'घनानद' थे, 'आनदघन' नहीं।

'आनंदघन' नाम के एक जैन महात्मा हो गए हैं जो यशोविजय के समय में थे और यशोविजय ने जिनकी स्तुति में 'आनंदघन-अष्टपदी' लिखी थी। रचनाएँ ही स्वयं इनका जैन होना प्रमाणित करती हैं—बहत्तरीस्तवावली और चौबीसी। इनमें जैन तीर्थंकरों और महात्माओं की स्तुति है। कुछ पद 'बहत्तरी' में कबीर आदि निर्गुण-पंथी संतों के ढंग के भी मिलते हैं। इससे निश्चित है कि भारतीय सगुण भक्तिमार्ग से इनका संबंध नहीं था। इधर मुझे 'आनंदघन' की जो पदावली प्राप्त हुई है उससे सगुण भक्तिमार्गी 'आनंदघन' का पृथक् होना सिद्ध है। यह पदावली 'घनानंद' की इसलिए नहीं है कि इसमें घनानंद की विरोधवाली प्रवृत्ति नहीं मिलती, दूसरे घनानंद ने 'सुजान', 'जान', 'जानराय' आदि का प्रयोग करके जो अपनी प्रेयसी के नाम का स्थान स्थान पर संकेत किया

है—चाहे लौकिक पक्ष में चाहे अलौकिक अर्थात् श्रीकृष्ण के पक्ष में—उसका पता भी इसमें नहीं चलता। मात्रिक पदों के होने पर भी कवि का नाम 'आनंद-घन' ही आया है, 'घनआनंद' नहीं, यद्यपि 'घनआनंद' पद बड़े मजे में रखा जा सकता था—इसमें प्रेम की पीर का भी वैसा उल्लेख नहीं, लाक्षणिकता का भी वह संभार नहीं। अतः ये 'आनंदघन' निश्चय ही 'घनआनंद' से पृथक् हैं। इसकी पूरी संभावना है कि आनंदघन और घनआनंद का घालमेल हो जाने से दोनों के वृत्त एक में मिल गए हों। इसका संकेत इस बात से भी मिलता है कि पदावली में राधिका का वर्णन और उल्लेख बहुत है, अतः हो सकता है कि ये सखी-संप्रदाय के रहे हों। नागरीदास (सावंतसिंह) के 'नागरसमुच्चय' में जिस प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं वैसी ही इस पदावली में भी पाई जाती हैं। कृष्णगढ़ के राजकवि जयलाल ने छप्पनभोगचंद्रिका में नागरीदासजी के वृत्त के प्रसंग में हरिदास और आनंदघन का नाम कई जगह लिया है। इसलिए ये 'आनंदघन' मुझे नागरीदास की ही भाँति सखीभाव के उपासक जान पड़ते हैं—अब चाहे ये गौड़ीय माध्व संप्रदाय में दीक्षित रहे हों, चाहे निंबार्क-संप्रदाय में, चाहे टट्टी-संप्रदाय में। घनानंद ने 'कृपाकंदनिबंध' नाम की पुस्तक ही 'कृष्ण-कृपा' पर लिखी है, उसके अनुसार ये पुष्टिमार्ग के ही अनुयायी सिद्ध होते हैं। रघुराजसिंहजू देव ने अपनी 'रामरसिकावली' में जिन 'घनआनंद' को भक्तों की सूची में समाविष्ट किया है उन्हें स्पष्ट सखीभाव का उपासक कहा है—'राधा माधव के मवि रासा। सखीरूप छबि पीवन आसा।' इसलिए यह भी संभव प्रतीत होता है कि मथुरा पर नादिरशाह के सिपाहियों या अहमदशाह अब्दाली की चढ़ाई में ये ही मारे गए हों। सखी-संप्रदाय के भक्तों के एक संग्रह में इस 'अभियान' या उत्पात का उल्लेख मुझे मिला है।

'सुजानप्रेमी' घनानंद ने कुछ पद या गीत भी अवश्य लिखे हैं, पर उनकी अधिकांश रचना कवित्त-सवैयों में ही है; जिनके बीच दोहे, सोरठे और छप्पय भी यत्र तत्र मिलते हैं। 'कृपाकंदनिबंध' से इनका एक गीत नमूने के लिए उद्धृत किया जाता है—

जौ पै तो मुख नेकु निहारौं।
त्यौं ही तौ हिय के मझार की सब अभिलाष उघारौं।

बहुतै बहुत प्रान सर्वसु लै वारि सकौं तौ वारौं।
करि करि प्रान-रूप आसव सुधि बिसरि न संग सहारौं।
क्यौं कहि सकौं उचित अनुचित को कृपा-भरोसो धारौं।
घनआनँद प्रीतम सुजान हौ मौनहिं गहैं पुकारौं॥

इनके संबंध में यह प्रसिद्धि है कि ये मुहम्मदशाह (रँगीले) के मीर मुंशी थे। 'सुजान' वेश्या से इनका प्रेम था। सुजान कोई स्त्री थी, नाचनेवाली थी, इसका प्रमाण तो इस संग्रह के कई छंदों से मिलेगा। इन्होंने होली के प्रसंगों की नियोजना संयोग-पक्ष और वियोग-पक्ष में भी रूपक आदि के सहारे कई स्थानों पर की है, अतः यह होली में 'कन्हैया' बननेवाले 'सदारँगीले मुहम्मद शाह (सं० १७७६ से १८०५ तक) के दरबार से इनके संबध का अंतः-साक्ष्य हो सकता है। कहा जाता है कि उस वेश्या पर मुग्ध होते कुछ दरबारी इनसे चिढ़े रहते थे। उन्होंने इन्हें छेड़ने के विचार से मुहम्मदशाह से कह दिया कि मुंशीजी गाते बहुत अच्छा हैं। बादशाह के बहुत आग्रह करने पर भी इन्होंने नहीं गाया। लोगों के कहने पर 'सुजान' बुलवाई गई और उसकी ओर मुँह करके इन्होंने सचमुच गाया। सारी सभा मंत्रमुग्ध हो गई। बादशाह इनके गान पर जितना ही प्रसन्न हुआ उतना ही अदब का खयाल न रखने पर कुपित। अतः इन्हें दरबार से पृथक् होना पड़ा। ये 'सुजान' के यहाँ गए, पर वह साथ चलने को प्रस्तुत न हुई। अंत में ये संसार से विरक्त होकर कृष्णभक्त हो गए।

इनके ग्रंथों के नाम 'खोज' में इतने मिलते हैं—घनानंद-कवित्त, आनंदघन जू के कवित्त, कवित्त, कवित्त-संग्रह, सुजानविनोद, कृपाकंदनिबंध, सुजान-हित, वियोगबेलि, रसकेलिवल्ली, आनंदघन जू की पदावली, इश्कलता, प्रीति-पावस, जमुनाजस और वृंदावनसत। इनमें से 'कवित्त' नामवाली पुस्तकें एक ही हैं। 'सुजानविनोद' इनकी स्फुट रचनाओं का ही दूसरा संग्रह है, कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं। कृपाकंदनिबंध, सुजानहित और वियोग-बेलि (सभा द्वारा प्रकाशित 'विरहलीला') इनके ग्रंथ हैं। रसकेलि-वल्ली का सुनी-सुनाई बात के आधार उल्लेख मात्र हुआ है। पदावली,

इश्कलता, प्रीतिपावस और जमुनाजस 'आनंदघन' की रचनाएँ प्रतीत होती हैं। 'वृंदाबनसत' तो भूल से इनके नाम चढ़ गया है, वह हरिदास के शिष्य और माधवमुदित के पुत्र भगवतमुदित की रचना है। 'व्रजमाधुरीसार' में एक नया नाम 'कृपाकांड' मिलता है। यह वस्तुतः 'कृपाकंद' ही है, ऐसी अक्षरों की 'कृपा' से यह 'कांड' उपस्थित हो गया है। उसमें 'बानी' का उल्लेख उपर्युक्त 'पदावली' के ही लिए है। मिश्रबंधु-विनोद के अनुसार छतरपुर के राजपुस्तकालय में ५४२ पृष्ठों का एक बहुत बड़ा संग्रह है जिसके आरंभ में १८११ विविध छंद और अंत में १०४४ पद हैं। वर्णित विषयों की तालिका इस प्रकार है—प्रियाप्रसाद, व्रजव्यौहार, वियोगबेलि, कृपाकंदनिबंध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुलविनोद, व्रजप्रसाद, धाम-चमत्कार, कृष्णकौमुदी, नाममाधुरी, वृन्दाबनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, व्रजवर्णन, रसवसंत अनुभवचंद्रिका, रंगबधाई, परमहंसवंशावली और पद। मेरा अनुमान है कि परमहंस वंशावली और पद 'आनंदघन' की रचनाएँ होंगी।

प्रस्तुत संग्रह 'व्रजनाथ' नाम के कदाचित् इन्हीं के किसी शिष्य-प्रशिष्य का किया हुआ है। इसका नाम 'घनानंद-कवित्त' है, पर 'रत्नाकर' जी ने जब हरिप्रकाश यंत्रालय से यह संग्रह छपवाया तब इसका नाम 'सुजानसागर' रखा। इसका कारण यह था कि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने घनानंद के अपने संग्रह 'सुजानशतक' में 'सुजानसागर' का उल्लेख किया है। वस्तुतः 'सुजानहित' के स्थान पर हिंदी में 'सुजानसागर' एक नकली नाम चल पड़ा है। यह संग्रह है, और 'सुजानहित' तो इनकी स्वतंत्र पोथी है। इसी से मैंने 'व्रजनाथ' का ही नाम स्वीकृत किया है और उनकी पद्धति ज्यों की त्यों रहने दी है। इस संग्रह में घनानंद की सब पोथियों से छंदों का संग्रह किया गया है। 'व्रजनाथ' को 'अति कष्ट' से 'लाज, बड़ाई औ सुभाय कौं खोय कै' यह संग्रह करना पड़ा है। प्रस्तुत संस्करण स्वर्गीय श्रीनवनीतजी चतुर्वेदी की प्रति के आधार पर प्रस्तुत हुआ है। इसमें लिपिकाल नहीं दिया है, पर है यह प्राचीन। चतुर्वेदीजी की इसी पोथी से एक प्रतिलिपि और हुई थी, जिसके आधार पर रत्नाकरजी ने अपनी पुस्तक प्रकाशित की थी। पर वह प्रतिलिपि स्थान स्थान पर अशुद्ध है। दुर्भाग्य से नवनीतजी वाली प्रति में बीच के कुछ पत्र नहीं हैं इसलिए

१५० छंदों (२७४ से २५ तक) के लिए उसकी प्रतिलिपि का ही सहारा लेना पड़ा है। जहाँ कहीं प्रतिलिपिकार की भ्रांति जान पड़ी सुजानहित, कृपाकंदनिबंध आदि से मिलाकर ठीक कर दी गई है। पर मूल पाठ चतुर्वेदी जी की ही प्रति का सर्वत्र स्वीकृत किया गया है, क्योंकि वह बहुत ही शुद्ध, स्पष्ट और व्याकरणसंमत लिखी हुई है। इस प्रकार बहुत सूक्ष्मता से एक एक अक्षर पर ध्यान देकर चलने के कारण 'सुजानसागर' में लगे हुए प्रश्नचिह्न हट गए हैं। 'सुजानसागर' से इसमें ३१ छंद अधिक हैं, जिनमें ब्रजनाथकृत प्रशस्ति भी संमिलित है। कविता को समझाने के लिए टिप्पणियों की योजना कुछ विस्तार से की गई है, जिनमें घनानंद की गूढ़ रचना को खोलने का अल्प प्रयास मात्र है। मेरा विश्वास है कि घनानंद की रचना समझने में इस ग्रंथ से कुछ सहायता अवश्य मिलेगी। शीघ्रता में दृष्टिदोष से जो त्रुटियाँ रह गई हों उनके लिए संपादक क्षम्य समझा जाय, यही प्रार्थना है। अंत में मार्मिक मधुव्रतों को यह सूचना देते हर्ष होता है कि घनानंद-ग्रंथावली भी शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी।

ब्रह्मनाल, काशी।
मौनी अमावस्या, २००० वि० } विश्वनाथप्रसाद मिश्र

घनानंद-कवित्त

घनानंद-कवित्त

(उपक्रम—कवि-प्रशस्ति)

सवैया

नेही महा, व्रजभाषा-प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कौं जानै।
जोग-वियोग की रीति मैं कोविद, भावना-भेद-स्वरूप कौं ठानै।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरें-मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रवीन, सुछंद सदा रहै, सो घन जी के कवित्त बखानै॥ १॥

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनि कै सब के मन लालच दौरै, पै बौरै लखैं सब बुद्धि-चकी।
जग की कबिताई के धोखें रहै ह्याँ प्रबीनन की मति जाति जकी।
समुझै कविता घनआनँद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी॥ २॥

---

[१] घनानंद के काव्य की यह प्रशस्ति संग्रहकर्ता व्रजनाथ ने की है। भावना० = वृत्तियों के भेद का स्वरूप ठीक ठीक ग्रहण कर सके। चाह = प्रेम। बिछुरें = प्रिय के बिछुड़ने और (बिछुडने के अनंतर) मिलने पर जो शांत न रहे; उसके पाने और भेंटने के लिए विह्वल हो उठे। भाषा० = भाषा की सामान्य गति-विधि से पूर्ण परिचित। सुछंद = स्वच्छंद (व्यावहारिक बंधन से मुक्त)। कवित्त = कविता। बखानै = अर्थ का तत्त्व बतला सकता है।

[२] अति ऊँचो = उत्तम कोटि का। छकी = परिपूर्ण। लालच = लालसा। बौरै = अनभिज्ञ। बुद्धि-चकी = चकित बुद्धि से, आश्चर्यचकित होकर। जग की कबिताई = अन्य लोगों की (रीतिबद्ध) सामान्य कविता। जाति जकी = चकपकाती है। हिय-आँखिन = हृदय की आँखों से। तकी = देखी हो, अनुभव की हो।

(मूल ग्रंथ)

कवित्त

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी
लसति ललित लाल-चख-तिरछानि मैं।
छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन-दमक फैलि हियें मोती-माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं।
आनँद की निधि जगमगति छबीली बाल
अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि मैं॥ १॥

सवैया

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि-फूलन की बरषा, उर-ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अँग-अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै॥ २

---

[१] लपेटी = लिपटी हुई, युक्त। भेद-भाय = रहस्यपूर्ण भाव, गूढ़ भाव वदन = मुख। दसन० = दाँत की चमक फैलकर हृदय पर मोतीकी माला ज पड़ती है। लड़कि = लटक के साथ। निधि = समुद्र। बाल = बाला, प्रेमिका अनंग० = कामजन्य छटा से मिलकर। मुरि० = मुड़ने मैं, घूम जाने मैं।

[२] छके = (प्रेम के मद से) मस्त। काननि० = कानों को छूक कानों तक फैले हुए अर्थात् विशाल। कपोल = कपोल पर। कलोल० = हिल है। कल० = सुंदर गर्दन पर। जलजावलि० = मोतियों की दो लर की माल धर = धरा पर, पृथ्वी पर।

कवित्त

छवि को सदन, मोदमंडित बदन-चंद,
तृषित चखनि लाल! कब धौं दिखायहौ।
चटकीलो भेष करें, मटकीली भाँति सों ही
मुरली अधर धरे लटकत आयहौ।
लोचन ढुराय, कछू मृदु मुसक्याय, नेह-
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ।
बिरह-जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि! आनँद को घन बरसायहौ॥ ३॥

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन, औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन, हियरा ते न टरति है।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनँदनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की
सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करति है॥ ४॥

जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह,
कैसें करि जिय की जरनि सो जताइयै।

---

[३] मोद० = प्रसन्नतायुक्त, प्रफुल्लतापूर्ण। चटकीलो = भड़कीला। मटकीली० = चटक-मटक के ढंग से ही। लटकत = मस्ती से झूमते हुए, बल खाते हुए। ढुराय = हिलाते हुए, इधर-उधर मटकाते हुए। नेह० = प्रेमयुक्त। लड़काय = लटक के साथ। आनि = आकर।

[४] लड़कीली = लुभावनी मुद्रावाली। अरति० = अड़ती है, जम जाती है। गति लैन = (मस्ती से) चलना। बैन = वेणु, बाँसुरी। चिताई = चैतन्य की हुई, जगाई हुई। चाहिबे की = देखने की। छैलताई = रंगीलापन। सुधि = स्मृति। बेसुधि = बेहोशी, विस्मृति।

महा निरदई, दई कैसैं कै जिवाऊँ जीव,
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइयै।
दुख को बखान करिबे कौं रसना कै होति,
ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।
रैन-दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै, भाग
आपने ही ऐसे, दोस काहि धौं लगाइयै ॥ ५ ॥

सवैया

भोर तें साँझ लौं कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिवो तारनि सौं इकतार न टारति।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति।
मोहन-सोँहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति ॥६॥

कवित्त

भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल-सेलनि सो क्यौं हूँ न भुलाय है।

---

[५] निपट = अत्यंत। कैसैं० = किस प्रकार। जताइयै = बतलाऊँ। दई = हे दैव। बेदन = वेदना, पीड़ा। बढवारि = बढती, अधिकता। दुराइयै = छिपाऊँ। दुख० = दुःख को ठीक ठीक कहने के लिए यदि कहीं जीभ होती तो भी कोई बात थी (वेदना के आधिक्य से जिह्वा अपना कर्म करने में असमर्थ है)। कै = यदि कहीं। ऐपै = किंतु। भाग = भाग्य। काहि = किसे। धौं = न जाने।

[६] न हारति = थकती नहीं। तारनि० = तारों को देखना। तारनि सौं = पुतलियों से, आँखों से। इकतार = लगातार। ताकिवो न टारति = ताकना नहीं छोड़ती, ताकती ही रहती है। भावतो = भानेवाला, प्रिय। औसर = उस अवसर पर, उस समय। आँसुनि गारति = आँसू गिराती हैं, प्रेमाश्रु टपकाती हैं। सौंहन = सामने। जोहन = देखने की। आरति = (आर्ति) लालसा।

मीठे मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलैं तौ तब,
अब जिय जारत, कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं, यह प्रगट कहावति जू,
काहू कलपायहै सु कैसैं कल पायहै ॥ ७ ॥

सवैया

हीन भएँ जल मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि-समानै।
नीर-सनेही कौं लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समुझै जड़, मीत के पानैं परे कौं प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै ॥ ८ ॥

---

[७] मिटाय० = पहचान मिटा दी, भूल गए। जक = रटन। निपट = अत्यंत। सूल-सेलनि = वेदना की कसक, पीड़ा का अनुभव। क्यौं हूँ = किसी प्रकार भी। न भुलाय = भूलती नहीं। धौं = तो। कै = कि, या। प्रगट = प्रसिद्ध। काहू = किसी को। कलपायहै = तरसाएगा, कष्ट देगा। सु = सो, वह। कल = चैन, सुख।

[८] हीन० = जल से हीन होने पर, जल से वियुक्त होकर। मीन० = मछली अधीन या विवश हो जाती है, व्याकुल होती है। कहा = क्या। कछु = थोड़ा भी। हीन…समानै = जल से वियुक्त होने पर विवश हुआ मीन क्या मेरी व्याकुलता की समानता कर सकता है। नीर-सनेही = प्रिय जल को। लाय = लगाकर। निरास० = आशा का त्याग कर, भरोसा छोड़कर। कायर = डरपोक, प्रेम में उत्साह बनाए न रखनेवाला (मीन)। जड़ = अचेतन। मीत = मित्र, प्रिय। पानैं = हाथ में। प्रमानै = प्रमाणित करता है। जड़… प्रमानै = अपने प्रिय अचेतन जल के हाथ में पड़ने को प्रमाणित करता है, जड़ जल के वश में पड़ने से प्रेमी के प्रति उसकी उदासीनता के कारण तड़पता हुआ मर जाता है। जु = जो। जीव की जीवनि = प्राणों के लिए भी प्राण, अत्यंत प्रिय। जान = सुजान ; प्रिय। इस सवैये में कवि का लक्ष्य यह है कि मीन का प्रिय जड़ है और स्वतः मीन में विरह का कष्ट सहन करने का साहस नहीं है, इसलिए यदि मेरे प्रेम की तुलना उससे की जाय तो ठीक नहीं। मेरा प्रिय चेतन है और मैं साहसपूर्वक मर्मांतक क्लेश सह रहा हूँ। जड़ न सही

मीत सुजान अनीति करौ जिन, हा हा न हूजियै मोहि अमोही !
दीठि कौं और कहूँ नहिं ठौर, फिरी दृग रावरे रूप की दोही ।
एक बिसास की टेक गहें लगि आस रहे बसि प्रान-बटोही ।
हौ घनआनँद जीवनमूल दई ! कित प्यासनि मारत मोही ॥ ९ ॥

पहिलैं घनआनँद सींचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार-पगी ।
अब लाय बियोग की लाय, बलाय बढ़ाय, बिसास-दगानि दगी ।
अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी, न कहूँ लगैं, कौन घरी सु लगी ।
मति दौरि थकी, न लहै ठिक ठौर, अमोही के मोह-मिठास-ठगी ॥१०॥

क्यौं हँसि हेरि हस्यौ हियरा, अरु क्यौं हित कै चित चाह बढ़ाई ।
काहे कौं बोलि सुधासने बैननि, चैननि मैन-निसैन चढ़ाई ।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनँद सालति क्यौं हूँ कढ़ै न कढ़ाई ।
मीत सुजान अनीत की पाटी, इते पै न जानियै कौनै पढ़ाई ॥११॥

चेतन तो प्रभावित किया जा सकता है, विरही के कष्ट का वह तो अनुभव कर ही सकता है, फिर भी वह ऐसा नहीं करता यही विलक्षणता है ।

[९] जिन = मत । मोहि = मोहित करके । कौं = के लिए । दृग = (मेरे) नेत्रों में । रूप = छवि, शोभा । दोही = दुहाई । फिरी दृग० = मेरे नेत्रों में आपके रूप की दुहाई फिरी हुई है, मेरे नेत्रों में आपका रूप छाया है । एक = केवल । बिसास = विश्वास । टेक = सहारा, आसरा । लगि = आशा से लगकर, आशा लगाए हुए । रहे बसि = बसे हुए हैं । बटोही = पथिक, यात्री । घन-आनँद = आनंद के बादल, अत्यंत आनंददायक (प्रिय के लिए विशेषण) । जीवनमूल = जल के भांडार; प्राण के तत्त्व ।

[१०] घनआनँद = आनंद के बादल । लाय = लगाकर । लाय = आग । बलाय = बला, विपत्ति, कष्ट । बिसास = विश्वासघात । दगा = धोखा, कपट । दगी = (सकर्मक) दागी, जलाई । कुबानि = कुटेव । न कहूँ० = कहीं लगतीं नहीं, आँखों को कुछ देखना सुहाता नहीं । घरी सु लगी = (कैसी) घड़ी लगी है, कैसा समय आ पड़ा है । दौरि = दौड़कर, विचार करते करते । ठिक ठौर = ठीक ठिकाना । मोह-मिठास = मोह की मिठास द्वारा । ठगी = ठगी हुई ।

[११] हित = प्रेम । चाह = उत्कंठा, लालसा । काहे कौं = किस लिए ।

कवित्त

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान, कहौ
कैसे रहैं प्रान जौ अनखि अरसायहौ।
तुम तौ उदार दीन हीन आनि पर्यो द्वार,
सुनियै पुकार याहि कौ लौं तरसायहौ।
चातिक है रावरो, अनोखो मोह-आवरो
सुजान-रूप-बावरो, बदन दरसायहौ।
बिरह नसाय, दया हिय मैं बसाय, आय
हाय! कब आनँद को घन बरसायहौ॥ १२॥

सवैया

तब तौ छबि पीवत जीवत हे, अब सोचन लोचन जात जरे।
हित-पोष के तोष सु प्रान पले, बिललात महादुख-दोष-भरे।
घनआनँद मीत सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे॥१३॥

सुधासने = अर्थात् अत्यंत मीठे। चैननि = आनंदपूर्वक। मैन = (मदन) काम। निसैन = सीढी। मैन० = काम की सीढियों पर किस लिए आनंद-पूर्वक चढाया। काम क्यों उत्पन्न किया। सालति = कसकती, पीड़ा करती है। कढै० = निकालने से नहीं निकलती। पाटी पढाई = पाठ पढाया। इते पै = इतने पर। न जानियै = नहीं जान पड़ता। कौनैं = किसने।

[१२] हित = प्रेम। निधान = आधार, पात्र। अनखि = रूठकर। अर-सायहौ = (मिलने मैं) आलस्य करोगे। आनि = आकर। याहि = इस प्रेमी को। कौ लौं = कब तक। रावरो = आपका। मोह-आवरो = मोह से व्याकुल। रूप० = रूप पर पागल। बदन = मुँह। दरसायहौ = दिखाओगे। नसाय = नष्ट करके, दूर करके। दया बसाय = (हृदय में) दया बसाकर, दया करके।

[१३] छबि पीवत = शोभा पीते हुए, रूप निरखते हुए। जीवत हे = जीते थे। हित-पोष = (तब) प्रेम के पोष (पोषण)। तोष = छकने की तुष्टि, अघाने का संतोष। बिललात = (अब वे ही प्राण) व्याकुल होते हैं। दोष = कष्ट, क्लेश। साज = विधान। समाज = समूह। टरे = हट गए, दूर

पहिलैं अपनाय सुजान सनेह सौं, क्यौं फिरि तेह कै तौरियै जू।
निरधार अधार दै धार-मझार, दई! गहि बाँह न बोरियै जू।
घनआनँद आपने चातिक कौं, गुन-बाँधिलैं, मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय,बढ़ाय कै आस, बिसास मैं यौं बिस घोरियै जू॥१४॥

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहिं आनि तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वार्‌यौ, सुजान! सकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै, घनआनँद बावरी रीझ के हाथनि हारियै॥१५॥

कवित्त

आस ही अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढ़ाय दीनौ, कीनौ खेल सो यहै।
निपट कठोर ये हो ऐंचत न आप-ओर
लाड़िले सुजान सौं दुहेली दसा को कहै।

हो गए। हार = माला। हे = थे। अब आनि कै० = अब प्रिय के और मेरे बीच पहाड़ आकर पड़ गए हैं, प्रिय मुझसे बहुत दूर हो गया है।

[१४] तेह० = रोप करके। नेह तोड़ना = प्रेम करना छोड़ देना। निरधार = निराधार, निरवलंब। धार-मझार = धारा के बीच में (डूबते हुए को)। बोरियै = डुबाइए। गुन = गुण, विशेषता ; रस्सी। बाधिलैं = बँधे हुए को। मोह न० = प्यार का त्याग न कीजिए। रस = आनंद ; (अमृतवत्) मीठा पेय। प्याय = पिलाकर। बिसास = विश्वास। यौं = इस प्रकार (आप विष घोल रहे हैं)। बिसास मैं० = कहीं विश्वास में आपकी भाँति विष घोला जाता है? विश्वास का नाश किया जाता है? विष घोलना = नष्ट कर देना, अग्राह्य बना देना।

[१५] नयो नयो० = मिलाइए 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः'। अघानि = तृप्ति। आनि तिहारियै = आपकी शपथ है। हुतौ = था। सु = सो, वह। वार्‌यौ = निछावर कर दिया। सोच = चिंता। सहारियै = सहारा दीजिए, अपने ऊपर लीजिए, सम्हारिए। रोकी रहै न = मेरे रोके नहीं रुकती। बावरी० = पगली रीझ के हाथों हार माननी पड़ती है, अपनी इस रीझ के कारण ही तो विवश हूँ।

अचिरजमई मोहिँ भई घनआनँद यौँ
हाथ साथ लाग्यौ, पै समीप न कहूँ लहै।
बिरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह-
नीर भीज्यौ जीव, तऊ गुड़ी लौँ उड़्यौ रहै ॥१६॥

सवैया

घनआनँद जीवनमूल सुजान की कौँधन हूँ न कहूँ दरसैँ।
सु न जानियै धौँ कित छाय रहे दृग-चातिग-प्रान तपे तरसैँ।
बिन पावस तो, इन थ्यावस हो न, सु क्यौँ करि ये अब सो परसैं।
बदरा बरसै रितु मैँ घिरि कै नित ही अँखियाँ उघरी बरसैँ ॥१७॥

---

[१६] आस ही० = आशारूपी आकाश मैँ। अवधि० = अवधिरूपी डोर। चोप = चाव। कीनौ० = आपने तो यह गुड्डी का खेल सा कर रखा है। निपट = अत्यंत। ऐँचत न = खीँचते नहीँ। आप० = अपनी ओर। लाड़िले = प्रिय। दुहेली = दुःख की। हाथ० = हाथ से लगी रहने पर भी दूर रहती है (गुड्डी); आपके हाथ मैँ पड़ा रहने पर भी आपसे दूर रहता है (जीव)। बिरह०=बिरहरूपी वायु के झोँकोँ से अधीर होकर। नेह० = आँसू से भीँगा रहने पर। तऊ = तो भी। गुडी लौँ = गुड्डी की भाँति। इस कवित्त मैँ 'चित्त या जीव उड़ना' मुहावरे को लेकर रूपक बाँधा गया है। कई मुहावरे यहाँ से वहाँ तक फँसे पड़े हैँ— गुण (डोर) बढ़ाना, चोप चढाना, खेल करना, हाथ लगा होना, समीप (पास) न लहना (पाना)। इसी प्रकार कई स्पष्ट अलंकार भी उलझे हुए हैँ--'हाथ·· लहै'--विरोधाभास, 'नीर·· रहै'—तीसरी विभावना। पूरे छंद मैँ उपमामिश्रित सावयव रूपक है।

[१७] घनआनँद = आनंद के बादल ('सुजान' का विशेषण)। जीवन-मूल = जल धारण करनेवाले (बादल); प्राणोँ के मूल (सुजान)। कौँधा = बिजली की चमक; (प्रिय की) झलक। न जानियै० = न जाने कहाँ घिरे हुए हैँ (बादल); न जाने किसके यहाँ बसे हुए हैँ (प्रिय)। दृग० = नेत्र-रूपी चातक के प्राण। तपे = विरह से तपकर (नेत्र); प्यास से व्याकुल होकर (चातक)। पावस = (प्रावृप्) वर्षा। थ्यावस = स्थिरता, धैर्य, शांति। हो = था। सु क्यौँ करि० = उस वर्षा को ये अब किस प्रकार प्राप्त करैँ? बदरा =

कवित्त

जेतो घट सोधौं पै न पाऊँ कहाँ आहि सो धौं
 को धौं जीव जारै अटपटी गति दाह की।
धूम कौं न धरै, गात सीरो परै ज्यौं ज्यौं जरै
 ढरै नैन-नीर, वीर ! हरै मति आह की।
जतन बुझै हैं सब जाकी झर आगें, अब,
 कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की।
जब ते निहारे घनआनँद सुजान प्यारे
 तब तें अनोखी आगि लागि रही चाह की ॥१८॥

बादल। ऋतु = वर्षा। घिरि कै = छाकर। उघरी = खुली हुई। बिन पावस...... बरसैं = बिना वर्षा के इन नेत्ररूपी चातकों को शांति नहीं मिलती थी ('आनंदघन सुजान' के दूर छाए रहने से) उस वर्षा का पाना कठिन हो गया है। इसी लिए ये आँखें उनके मार्ग को देखती हुई खुली रहकर वर्षा किया करती हैं। बादल तो समय आने पर वर्षा में ही छाकर बरसते हैं (ये नित्य ही बरस रही हैं)। 'घिरि कै' और 'उघरी' में विरोधाभास और पूरे पद्य में श्लिष्ट रूपक है।

[१८] इस कवित्त में प्रेम की आग सामान्य आग से विलक्षण (अनोखी) बतलाई गई है। जेतो = जितना ही। घट = शरीर। सोधौं = खोजती हूँ। आहि = है। सो धौं = न जाने वह (कहाँ है)। को धौं = (जब उसका पता नहीं चलता तो फिर) मेरे प्राणों को कौन जला रहा है? अटपटी = विलक्षण, विचित्र। गति० = इस आग के जलने की दशा। धूम० = यह आग धुआँ नहीं धारण करती, इसमें धुआँ नहीं निकलता। सीरो = ठंढा। गात० = शरीर ज्यों ज्यों जलता है त्यों त्यों (गरम होने के बदले उलटे) ठंढा पड़ता है। ढरै = गिरता है, टपकता है। वीर = हे सखी। हरै० = 'आह' करने की बुद्धि को भी यह हर लेती है, आह करने की भी इच्छा नहीं रह जाती। जतन० = इसकी ज्वाला में तो इसे बुझाने के सब यत्न भी बुझ गए हैं, कोई उपाय नहीं चलता। झर = ज्वाला। आगें = सामने अर्थात् बीच, में। उमाह= उमंग। कबहूँ० = इसकी उमंग से भरी भभक कभी दबती ही नहीं, इसकी ज्वाला निरंतर प्रचंड होती जाती है। पूरे छंद में व्यतिरेक अलंकार द्वारा प्रेम

आँखैं जौ न देखैं, तौ कहा हैं कछु देखति ये
ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखियै।
प्रानन के प्यारे जान रूप-उजियारे, बिना
मिलन तिहारे इन्हैं कौन लेखैं लेखियै।
नीर-न्यारे मीन औ चकोर चंदहीन हूँ तै
अति ही अधीन दीन गति मति पेखियै।
हौ जू घनआनँद ढरारे रसभरे भारे
चातिक बिचारे सौं न चूकनि परेखियै॥१६॥

जहाँ तें पधारे मेरे नैननि ही पाँव धारे
वारे ये बिचारे प्रान पैंड़ पैंड़ पै मनौ।
आतुर न होहु हा हा नेकु फैंट छोरि बैठौ
मोहिँ वा बिसासी को है ब्यौरो बूझिबे घनौ।
हाय निरदई कौं हमारी सुधि कैसैं आई
कौन बिधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ।

की आग को सामान्य आग से बढी चढी कहा गया है। 'आनंदघन' को देखकर 'आग लगने' में विरोध है।

[१६] आँखैं० = यदि आँखें आप (प्रिय) को नहीं देखतीं तो फिर ये और देखती ही क्या हैं? आपको न देखकर इन आँखों को कोई दूसरा पदार्थ देखना नहीं रुचता। दुखहाइनि = दुखिया। जान = सुजान, प्रिय। रूप० = रूप के उजालेवाले, अत्यत रूपवान्। बिना मिलन० = बिना आपके मिलन के इन्हें किस गिनती में गिना जाय, आपके बिना ये आँखें किसी गिनती में नहीं, आँखें आँखें रह ही नहीं जातीं, उनका होना न होना एक सा है, आपको देखने से ही आँखें आँखें कहलाने योग्य हैं। नीर-न्यारे = जल से वियुक्त। अधीन = विवश। गति = दशा। मति = बुद्धि अर्थात् कार्य। पेखियै = देखाई देती है। ढरारे = ढलनेवाले, द्रवीभूत होनेवाले; बरसनेवाले। रस = प्रेम; जल। चूकनि = चूक में डालकर, भूलकर। न परेखियै = परीक्षा मत लीजिए [अथवा चातक०=चातक बेचारे की भूलों का बुरा मत मानिए। (परेखना = बुरा मानना)]।

झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित-कचाई पाक्यौ
ताके गुनगन घनआनँद कहा गनौ ॥ २० ॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित।
मरत पपीहा-नैन, दरसौ पै बरसौ नहीं ॥ २१ ॥
पहचानै हरि कौन, मो से अनपहचान कौं।
त्यौं पुकार मधि-मौन कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं ॥ २२ ॥

---

[२०] प्रिय के यहाँ से कोई पत्र लेकर आया है, उसी से प्रेमिका कह रही है। जहाँ तँ० = प्रिय जहाँ जहाँ से गए वहाँ वहाँ मेरे नेत्रों पर पैर रखकर ही गए। मेरे नेत्र निरंतर उनका जाना एकटक देखते रहे। वारे = निछावर हुए। पँड = डग, कदम। वारे ये० = मानों ये बेचारे मेरे प्राण कदम कदम पर निछावर हो गए, उनकी चाल पर ये लोटपोट होते रहे। आतुर० = हड़बड़ी मत करो। नेकु० = थोड़ा झँट छोड़कर आराम से बैठिए तो। बिसासी = विश्वास-घाती। ब्यौरो = हाल-चाल। मोहिं० = मुझे तो उस विश्वासघाती का बहुत सा हाल पूछना है। हाय० = उस निष्ठुर को मेरा स्मरण आया तो कैसे। दीन० = मुझे विरह से दुखी समझकर कहो। झूठ की० = वह तो झूठ की सचाई से छका (भरापूरा) है, यदि उसमें किसी बात की सचाई है तो झूठ की ही। त्यौं = इसी प्रकार। हित० = प्रेम के कच्चेपन से पका हुआ है, यदि किसी बात में पका है तो प्रेम की कचाई में ही। गुन = (विपरीत लक्षणा से) अवगुण। 'झूठ······पाक्यो' में विरोधाभास है।

[२१] रस = प्रेम ; जल। कौन हित=यह कैसा प्रेम है ? [अथवा किस लिए]। पपीहा० = नेत्ररूपी चातक। बरसना = जल बरसना ; प्रेम करना।

[२२] हरि = हे ईश्वर। अनपहचान = अपरिचित। पुकार० = मौन में ही पुकार है। कृपा-कान० = जैसे नेत्रों में कृपारूपी कान लगे हैं। त्यौं पुकार··· ज्यौं = जिस प्रकार आपके नेत्रों के बीच कृपारूपी कान छिपे पड़े हैं, आप देख-कर ही सुन लेते हैं, समझ लेते हैं, कृपा करते हैं उसी प्रकार मेरे मौन में ही पुकार छिपी हुई है। मेरी मौन चेष्टा में व्यक्त होनेवाली पुकार को आपकी कृपा के कान सुन लेते हैं, जो आपके नेत्रों में ही छिपे हैं। आप मेरी दशा

कवित्त

आसा-गुन बाँधि कै भरोसो-सिल धरि छाती
पूरे पन-सिंधु मैं न बूड़त सकायहौं।
दुख-दव हिय जारि, अंतर उदेग-आँच
रोम रोम त्रासनि निरंतर तचायहौं॥
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि
साहस सहारि सिर आरे लौं चलायहौं।
ऐसें घनआनँद गही है टेक मन माहिँ
एरे निरदई तोहि दया उपजायहौं॥ २३ ॥

सवैया

अंतर-आँच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस।
ज्यौं कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौंहूँ कहूँ सु धरै नहिँ थ्यावस।

(मौन पुकार) नेत्रोँ से देखकर ही समझ लेते और कृपा करते हैँ। 'त्यौँ... ज्यौँ' मैँ विरोधाभास है।

[२३] किसी अत्यंत निर्दय के हृदय मैँ भी दया उत्पन्न हो सकती है यदि उसका कोई, जिससे वह उदास है, उसकी आँखोँ के सामने ही डूब मरने का उपक्रम करे। आसा-गुन = आशारूपी रस्सी। आसा० = आशा की रस्सी मैँ अपने को बाँधकर, आशा लगाए रहकर। सिल = पत्थर। भरोसो० = भरोसा-रूपी पत्थर छाती पर रखकर, (हृदय कठोर करके) उसका भरोसा किए रह-कर। पूरे = पूर्ण। पन-सिंधु = प्रेम की प्रतिज्ञा के समुद्र मैँ। न सकायहौँ = शंकित न होऊँगी, डरूँगी नहीँ। दुख-दव = दुःख की दावाग्नि से। उदेग = उद्वेग, व्याकुलता। अंतर० = भीतर होनेवाले उद्वेग की आँच मैँ। रोम रोम = रोआँ रोआँ, सारा शरीर। त्रासनि = पीड़ाओँ से। निरंतर = लगातार। तचायहौँ = तपाऊँगी। भाँति = प्रकार। जानि = जानकर, जानते-बूझते हुए। साहस सहारि = साहसपूर्वक सँभलकर। सिर० = सिर पर आरे की भाँति (उन दशाओँ को) चलवाऊँगी। उन दुस्सह दशाओँ को अत्यंत कष्ट होते हुए भी सहूँगी। ऐसेँ = इस प्रकार (से)। इस कवित्त मैँ प्रेमी बतलाना चाहता है कि प्रेम मैँ शारीरिक अथवा मानसिक यंत्रणा का भय बिलकुल नहीँ रहता।

नैनउ धारि दियें बरसैं घनआनँद छाई अनोखियै पावस।
जीवनिमूरति जान को आनन है विन हेरैं सदाई अमावस ॥२४॥

जान के रूप लुभाय कै नैननि बेंचि करी अधबीच ही लौंड़ी।
फैलि गई घर-बाहिर बात सु नीकैं भई इन काज कनौंड़ी।
क्यौं करि थाह लहै घनआनँद चाह-नदी तट ही अति औंड़ी।
हाय दई! न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौंड़ी ॥२५॥

दोहा

जानराय! जानत सबै, अंतरगत की बात।
क्यौं अजान लौं करत फिरि, मो घायल पर घात ॥ २६ ॥

सवैया

लै ही रहे हौ सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे।
देख्यौ न है सपने हूँ कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे।

---

[२४] अंतर० = हृदय के भीतर की तपन से। उसास० = उच्छ्वास (तक) अत्यंत तप उठती है। उसीजै = उबल जाता है। उदेग० = उद्वेग (व्याकुलता) की औंस (भाप) से। ज्यौ = जी, जीव। कहलाय = (गरमी से) व्याकुल होता है, शिथिल पड़ जाता है। मसोसनि = मसोसने की उमस से। क्यौं हूँ = किसी प्रकार भी। कहूँ = कहीं भी। सु = सो, वह। थ्यावस = स्थिरता, शांति। धरै० = स्थिरता नहीं धारण करता, स्थिर या शांत नहीं होता। नैन० = नेत्र भी आँसू की धारा बरसते हैं। जीवनिमूरति = जीवन का दान देनेवाली मूर्ति। जान = सुजान; प्रिय। आनन = मुख (चंद्रवत्)। सदाई = सदा, सब तिथियों में, निरंतर। अमावस = अमावास्या, घोर अंधकार।

[२५] रूप=सौंदर्य; रूपा, द्रव्य। नैननि० = नेत्ररूपी दलालों ने। अधबीच ही = पूरा सौदा पटने के पहले ही। नीकैं = भली भाँति। इन काज = इन नेत्रों के कारण, इनके पीछे। कनौंड़ी = बदनाम। तट ही = किनारे पर ही। औंडी = गहरी। बिसासी = विश्वासघाती। डौंड़ी = डुग्गी। हाय दई० = मेरे प्रेम करने की डुग्गी तो सारे संसार में पिट रही है, पर वह विश्वासघाती फिर भी कुछ नहीं सुनता।

[२६] जानराय = सुजानों में श्रेष्ठ। अंतरगत की = हृदय की।

कैसो सँजोग बियोग धौं आहि! फिरौ घनआनँद ह्वै मतवारे।
मो गति बूझि परै तब ही जब होहु घरीक हू आप तैं न्यारे ॥२७॥
खोइ दई बुधि, सोइ गई सुधि, रोइ हँसै उनमाद जग्यौ है।
मौन गहै, चकि चाकि रहै, चलि बात कहै, तैं न* दाह दग्यौ है।
जानि परै नहिँ जान! तुम्हैं लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है।
सोचनि ही पचियै घनआनँद हेत पग्यौ किधौं प्रेत लग्यौ है ॥२८॥

कवित्त

घेर-घबरानी उबरानी ही रहति घन-
आनँद आरति-राती साधनि मरति हैं।
जीवनअधार जान-रूप के अधार बिन
ब्याकुल बिकार-भरी खरी सु जरति हैं।

---

[२७] और = अन्य, प्रेमी। त्यागे=छोड़े हुए। सुखारे = सुखी (हो)। कैसो०=संयोग और वियोग कैसा है (इसे आप क्या जानें)। धौं = न जाने। आहि = है (अवधो)। मो० = मेरी दशा तब कहीं समझ में आए। जब होहु० = यदि कहीं घड़ी भर के लिए भी आप अपने आपसे अलग हों, अपने को भूलें (तो)।

[२८] इसमें प्रेम होने और प्रेत लगने की दशा का एकीकरण दिखाया गया है। जो स्थिति प्रेमावेश में होती है वही भूतावेश में भी, अर्थात् इस पद्य में प्रेमोन्माद का वर्णन है। सोय० = स्मृति सो गई, स्मृति जाती रही। उनमाद जग्यो० = उन्माद छाया है। चकि = चकपका उठती है, चकित होकर इधर उधर देखती रहती है। चलि० = चलकर तेरे निकट अपनी बात सुनाती है। तैं न = उसकी जलन का भी तेरे ऊपर प्रभाव नहीं पड़ता। ताहि = उसे, प्रेमिका को। कहा कछु = क्या कुछ, न जाने क्या हो गया है। आहि = है। खगना = समाना, घुसना। कहा० = न जाने उसे क्या हो गया, क्या लग गया है। पचियै = परेशान होती हूँ। हेत = प्रेम। हेत पग्यो० = वह प्रेम (रस) में पगी हुई है, प्रेममग्न है अथवा उसे प्रेत लगा हुआ है।

*पाठांतर—तन।

अतन-जतन तैं अनखि अरसानी बीर !
प्यारी पीर-भीर क्यौं हूँ धीर न धरति हैं।
देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटनि की
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं ॥ २६ ॥

विकच नलिन लखें सकुचि मलिन होति,
ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है।
सौरभ समीर आएँ बहकि दहकि जाय,
राग-भरे हिय मैं बिराग-मुरझनि है।
जहाँ जान प्यारी रूप-गुन को न दीप लहै,
तहाँ मेरे ज्यौं परै बिषाद-गुरझनि है।

---

(२६) घेर = घिराव, रोग का आक्रमण। उबरानी ही = ऊबी हुई, उचटी हुई, आँसू बहाती हुई। आरति-राती = दुःख में रँगी हुई, दुःखित। साध = प्रबल इच्छा (देखने की साध)। रूप के अधार = रूप के अवलंब, अत्यंत रूपवान्। खरी = अत्यंत। अतन = काम। अतन-जतन तैं = कामोपचार से, [अथवा नेत्रोपचार से]। अनखि = चिढ़कर, रूठकर। अरसानी = उदास हो गई हैं, यत्नों से मुँह मोड़ लिया है। बीर = हे सखी। पीर-भीर = पीड़ा की भीड़, वेदना की राशि। असाध = असाध्य, जो (रोग) अच्छा किया ही न जा सके। निपेटनि = (नि + पेटनि) अत्यंत पेटू, अत्यधिक खानेवाली। भसमी बिथा = भस्म कर देनेवाली व्याकुलता ; भस्मक रोग की व्यथा। भस्मक रोग = 'भाव-प्रकाश' में इस रोग का लक्षण यह बतलाया गया है कि इसके उत्पन्न होने से भोजन शीघ्र पच जाता है। इसलिए भूख बराबर बनी रहती है, पेट भरता ही नहीं। देखियै दसा० = आँखें एक तो स्वभावतः पेटू हैं, अधिक खानेवाली हैं, थोड़े में उनकी तृप्ति नहीं होती, उस पर उन्हें भस्मक रोग हो गया है, जो खाती हैं वह भस्म होता जाता है। परंतु अब उन्हें नित्य लंघन करना पड़ रहा है। आँखों को प्रिय के दर्शन से तृप्ति नहीं, चाहे जितना देखें इनकी भूख बुझती ही नहीं और इस पर उनके दर्शन ही नहीं हो रहे हैं। ये जिएँ कैसे। 'भसमी बिथा···करति हैं' में विरोध है।

हाय अटपटी दसा निपट चटपटी सौं,
क्यौंहूँ घनआनँद न सूझै सुरझनि है ॥ ३० ॥

तब ह्वै सहाय हाय कैसैं धौं सुहाई ऐसी
सब सुख संग लै बिछोह-दुख दै चले।
सींचे रस-रंग अंग-अंगनि अनंग सौंपि
अंतर मैं विपम बिषाद-बेलि बै चले।
क्यौं धौं ये निगोड़े प्रान जान घनआनँद के
गौहन न लागे जब वे करि बिजै चले।
अति ही अधीर भई पीर-भीर घेरि लई
हेली मनभावन अकेली मोहिँ कै चले ॥ ३१ ॥

---

[३०] बिकच = खिला हुआ। नलिन = कमल। उरझनि० = उलझन पड़ गई, पेंचीली स्थिति हो गई है। सौरभ० = सुगंधित वायु। बहकि = बहककर सुध-बुध खोकर। दहकि जाय = जल उठती है। राग-भरे = प्रेमयुक्त। बिराग० = विराग के कारण हृदय मुरझा जाता है। कमल आदि को देखकर उनसे विराग होता है और हृदय में मुरझाहट आ जाती है (संयोग में 'कमल, सौरभ समीर' आदि प्रेम के उद्दीपक हैं, वियोग में इनसे क्लेश उद्दीप्त होता है)। रूप = सौंदर्य ; रूपा, चाँदी। गुन = गुण ; बत्ती। ज्यौ = जीव, मन (में)। गुरझनि = गाँठ। जहाँ० = जहाँ प्रिय के रूप-गुण का प्रकाश नहीं मिलता (जहाँ वह दिखाई नहीं पड़ता) वहाँ मेरे हृदय में दुख की गाँठ पड़ जाती है (दुख जम जाता है)। अटपटी = विलक्षण। निपट = अत्यंत। चटपटी० = अति प्रबल वेग से। सूझै० = सुलझाव का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता।

[३१] ह्वै = होकर, हुए। सहाय = सहायक, प्रेम में साथ देनेवाले। सुहाई = (अब) ऐसी बातें कैसे अच्छी लगीं ? सींचे० = अपने प्रेम के रंग से युक्त मेरे अंगों को काम के हवाले करके। अंतर = हृदय। बै = बोकर। निगोड़े = स्त्रियों की गाली ; (नि + गोड़) जिन्हें पैर न हो। गौहन = साथ। बिजै = हृदय पर विजय प्राप्त करके, हृदय को वश में करके। पीर-भीर = पीड़ा की भीड़,

रोम रोम रसना ह्वै लहै जो गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी ! निबैँ न मैन-आरतैँ ।
ऐसे दिनदीन पै दया न आई दई तोहि,
विष-भोयो बिपम वियोग-सर मारतैँ ।
दरस-सुरस-प्यास भाँवरे भरत रहौँ,
फेरियै निरास मोहिँ क्यौँ धौँ यौँऽब द्वार तैँ ।
जीवन-अधार घनआनँद उदार महा,
कैसैं अनसुनी करी चातिक-पुकार तैँ ॥ ३२ ॥
चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही कौं,
सूरे पन-पूरे जिन्हैँ बिष सम अमी है ।
प्रफुलित होत भान के उदोत कंज-पुंज,
ता बिन विचारनि ही जोति-जाल तमी है ।

वेदना की राशि । हेली = खेल करनेवाले, खिलाड़ी, क्रीड़ाशील [अथवा हे अली, हे सखी] । मनभावन = मन को भानेवाले, प्रिय ।

[३२] रोम रोम०=यदि प्रत्येक रोम जीभ होकर वाणी का गुण पा ले, रोएँ रोएँ मेँ बोलने की शक्ति आ जाय । तऊ = तो भी । निबैँ न = चुक नहीँ सकतीँ । मैन-आरतैँ = काम की लालसा । दिनदीन = दिनदिन दीन, सदा दीन (अव्ययवत् प्रयोग) । बिष-भोयो = विष मेँ भीँगा या बुझा हुआ । मारतैँ = मारते हुए । दरस० = दर्शनरूपी सुरस (मीठे जल) की प्यास के कारण, उसे बुझाने के विचार से । भाँवरे० = चक्कर काटता रहता हूँ । फेरियै० = इस प्रकार निराश करके मुझे अपने द्वार से क्यौँ लौटाते हैँ ? तैँ = तू ने । विशेष— 'दिनदानी' की पद्धति पर 'दिनदीन' बनाया गया है ।

[३३] चुहल = विनोदी । चहुँ ओर = सर्वत्र । सूरे० = प्रतिज्ञा पूर्ण करने मेँ जो पूरे वीर हैँ । अमी = अमृत । जिन्हैँ० = जिन्हेँ स्वाती का जल छोड़कर अमृत भी विप के समान है । भान० = भानु के उदित होने से । कंज = कमल । ता बिन = सूर्य के बिना । बिचारनि ही = उन बेचारोँ को । जोति-जाल = ज्योति का समूह । तमी = तमिस्रा, रात्रि । रमी = छाई हुई, बसी हुई । कहा० =

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,
प्रीति-रीति विषम सु रोम रोम रमी है।
मोहिँ तुम एक, तुम्हैं मो सम अनेक आहिँ,
कहा कछू चंदहिँ चकोरन की कमी है ॥ ३३ ॥

सवैया

जीवन हौ जिय की सब जानत जान! कहा कहि बात जतैयै।
जो कछु है सुख संपति सौंज सु नैसिक ही हँसि दैन मैं पैयै।
आनँद के घन! लागै अचंभो पपीहा-पुकार तें क्यौं अरसैयै।
प्रीतिपगी अँखियानि दिखाय कै हाय अनीत सु दीठि छिपैयै ॥३४॥

कवित्त

चोप चाह चावनि चकोर भयौ चाहत ही,
सुषमा-प्रकास मुख-सुधाधर पूरे को।
कहा कहौं कौन कौन विधि की बँधनि बँध्यौ,
सुकस्यौ न उकस्यौ बनाव लखि जूरे को।
जाही जाही अंग पर्यौ ताही गरि गरि सर्यौ,
हर्यौ बल बापुरे अनंग-दल-चूरे को।

चंद्रमा को चकोरों की क्या कमी? प्रिय के प्रेमी बहुत हैं, पर प्रेमियों के लिए प्रिय तो एक ही है।

[३४] जीवन० = प्राणों के लिए भी प्राण, अत्यंत प्रिय। जतैयै = बतलाऊँ। सौंज = सामग्री। नैसिक = थोड़ा, जरा। पैयै = पाती हूँ। अरसैयै = आलस्य करते हो। हाय अनीत = यह कितना अन्याय है। सु = सो, वह। दीठि० = अब आँखें चुराते हो।

[३५] चोप = लालसा। चाह = इच्छा। चाव = उमंग। चाहत ही = (मुखचंद्र को) देखते ही। सुषमा० = सौंदर्यरूपी प्रकाश। सुधाधर = चंद्र। पूरे = पूर्ण। बिधि = प्रकार की। बँधनि० = बंधान में बँधा। सुकस्यौ = भली भाँति कस गया। न उकस्यौ = उकस न सका, निकल न सका। पर्यौ = गिरा, देखने में लगा। गरि० = गल-गलकर चुक गया या गड़ा ही रह गया। बल हर्यौ = बल हर गया। बापुरे = बेचारे। अनंग० = काम की सेना से चूर चूर

अब बिन देखें जान प्यारे यौं अनंदघन,
मेरो मन भँवै भटू ! पात ह्वै वघूरे को ॥ ३५ ॥

दोहा

मोही मोह जनाय कै, अहे अमोही ! जोहि ।
सो ही मोही सों कठिन, क्यौं करि सोही तोहि ॥ ३६ ॥

कवित्त

विस लै बिसार्‌यौ तन, कै बिसासी आपचार्‌यौ,*
जान्यौ हुतौ मन ! तैं सनेह कछु खेल सो ।
अब ताकी ज्वाल मैं पजरिबो रे भली भाँति,
नीके आहि, असह-उदेग-दुख सेल सो ।

किए गए (मन) का । भँवै = घूमता है । भटू = हे सखी । पात = पत्ता । वघूरा = बवंडर । पात ह्वै० = बवंडर में पड़े हुए पत्ते की भाँति उड़ा ही रहता है, स्थिर नहीं हो पाता ।

[३६] मोही = मोहित किया । मोह = प्रेम । जनाय कै = प्रकट करके । अहे = हे । जोहि = (मेरी ओर प्रेमपूर्वक) देखकर । सो = वह (प्रेम प्रकट करनेवाला) । ही = हृदय । मोही० = मुझसे कठोर हो गया है । सोही = शोभा देती है । क्यौं करि० = यह (कठोरता) तुझे कैसे फबती है । इसमें यमक का चमत्कार दिखाया गया है—'मोही' और 'सोही' में ।

[३७] बिसार्‌यौ = भूल गए । बिष० = विरह का विष प्राप्त करके तन की सुध-बुध भूल गए । [अथवा बिसार्‌यौ = शरीर को विषाक्त कर दिया] । बिसासी = विश्वासघाती । कै = करके । आपचार्‌यौ = मनमानी, स्वेच्छाचार । हुतौ = था । जान्यौ० = हे मन, तुमने प्रेम को क्या कोई खेल समझ रखा था ? ताकी = उस (विरह की आग) की । पजरिबो = जलना । नीके आहि = अच्छा हुआ, अच्छा मिला (व्यंग्य) । उदेग = उद्वेग । सेल = बाधा । असह० = असह्य उद्वेग का दुख बरछे के समान कष्ट देनेवाला है । पखेरू = पक्षी । औचक = अचानक । डेल० = ढेले के समान (जिसकी चोट

* आपचार्‌यौ

गए उड़ि तुरत पखेरू लौं सकल सुख,
पर्‌यौ आय औचक वियोग बैरी डेल सो।
रुचि ही के राजा जान प्यारे यौं अनंदघन,
होत कहा हेरें रंक! मानि लीनौ मेल सो ॥ ३७ ॥

सूझै नहीं सुरझ उरझि नेह-गुरझनि,
मुरझि मुरझि निसिदिन डाँवाँडोल है।
आह की न थाह दैया कठिन भयौ निबाह,
चाह के प्रवाह घेर्‌यौ दारुन कलोल है।
वे तौ जान प्यारे निधरक हैं अनंदघन,
तिनकी धौं गूढ़ गति मूढ़मति को लहै।
आगें न विचार्‌यौ अब पाछैं पछिताएँ कहा,
मान मेरे जियरा बनी को कैसो मोल है ॥ ३८ ॥

खाकर सुखरूपी पक्षी उड़ गए)। रुचि = इच्छा। रुचि ही० = मनमानी करनेवालों के सम्राट् या शिरोमणि [अथवा रुचि = शोभा। रुचि ही = सौंदर्य के सम्राट्]। होत० = केवल उनके देखने से क्या होता है। रंक = दरिद्र। मेल = प्रेम। मानि० = तुम (उस देखने को ही) प्रेम करना समझ बैठे।

[३८] सुरझ = सुलझाव, सुलझने का उपाय। उरझि० = प्रेम की उलझन में पड़ जाने पर। गुरझनि = गाँठ। मुरझि = बेहोश होकर, शिथिल होकर। डाँवाँडोल = अस्थिर, चंचल। आह० = आह की गहराई की तो थाह ही नहीं मिलती, बहुत गहरी आहें भरनी पड़ती हैं। दैया = हे दैव। कठिन० = निर्वाह कर ले जाना कठिन जान पड़ता है [अथवा आह की = हियाव की, अपने मान की। आह की न० = प्रेम-नदी की थाह अपने मान की नहीं, उसे थहाना कठिन है, वह अथाह है। कठिन० = उसके पार जाना कठिन है]। चाह = प्रेम। कलोल = उछाल, तरंग। चाह के० = प्रेम के प्रवाह में उसके दारुण कल्लोल ने घेर लिया है, प्रेम की उत्ताल तरंगों में पड़ा हूँ। निधरक = निःशंक, बेखटके। गूढ गति = रहस्यभरी चाल, उनका भेद-भाव। मूढमति = मंदबुद्धि। तिनकी० = उनकी रहस्यमय गति का पता मुझ जैसे मंद या साधारण बुद्धिवाले को नहीं चल सकता। आगैं = पहले (प्रेम करने

अंतर उदेग-दाह, आँखिन प्रवाह-आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोइबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोइबो हू,
खोय खोय आप ही मैं चेटक-लहनि है।
जान प्यारे प्राननि बसत पै अनंदघन,
बिरह-विषम-दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौ आय,
हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है ॥ ३६ ॥

सवैया

नेहनिधान सुजान-समीप तौ सींचति ही हियरा सियराई।
सोई किधौं अब और भई, दई हेरत ही मति जाति हिराई।

के पूर्व)। मान = समझ। जियरा = जी, मन। बनी = वणिक या वणिज। मान मेरे० = हे मन, अब समझो कि (इस) वाणिज्य में कैसा मूल्य चुकाना पड़ा, सब कुछ देने पर भी सौदा नहीं मिला। (बनी को कैसो मोल है--मुहावरा)।

[३६] अंतर = हृदय में उद्वेग की जलन है। अटपटी = विलक्षण। भीजनि० = भीँगना और जलना दोनों। खोय० = अपने आप में खोकर, अपने आप में लीन होते चले जाकर। चेटक = जादू, भ्रम। लहनि = लाभ। चेटक० = जादू का सा लाभ है, जादू करनेवाले जैसे नकली रुपए-पैसे दिखाते हैं पर वह केवल दृष्टिभ्रम होता है वैसे ही मैं अपने आप में खोकर केवल भ्रम ही प्राप्त करता हूँ [अथवा चेटक = क्रीत दास। चेटक० = क्रीत दास का सा लाभ है, अपने को खोकर दासता का लाभ होता है, अपनी सुध-बुध भूलकर उनकी दासी होती जाती हूँ]। पै = फिर भी, इतने पर भी। जान० = ऐसी दशा होने पर भी प्रिय प्राणों में बसे हुए हैं। मूक० = गूँगे का सा कहना है, जैसे कहा वैसे न कहा अर्थात् विरह की विषम दशा पूर्णतया व्यक्त की ही नहीं जा सकती। जीवन० = इसमें प्राण के बिना ही जीना और मृत्यु के बिना ही मरण आ बना है। हाय० = न जाने प्रेमी के रहने का ढंग कैसा विलक्षण बनाया गया है (जिसमें बिना प्राण के जीना पड़ता है और बिना मृत्यु के मरना पड़ता है)।

है बिपरीति महा घनआनँद अंबर तैं धर कौं झर आई।
जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई ॥४०॥

कवित्त

नैनन मैं लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,
या बस ह्वै जीव धीर होत लोटपोट है।
रोम रोम पूरि पीर, ब्याकुल सरीर महा,
घूमै मति गति-आसैं, प्यास की न टोट है।

---

[४०] वियोग में संयोग-काल की उद्दीपक प्रकृति दुःखोद्बोधक हो जाती है। यहाँ चाँदनी से प्रेमी को जो व्यथा हो रही है वह उसी का वर्णन कर रहा है। नेहनिधान = प्रेम के आधार। सींचति ही = सींचती थी। हियरा० = हृदय शीतल करती थी। सींचति० = अपनी सीतलता से सींचकर हृदय ठंढा करती थी। सोई० = यह चाँदनी वही है या बदल गई है। दई० = हे दैव, इसे देखते ही बुद्धि खो जाती है। बिपरीति = उलटी बात। अंबर = आकाश। धर = पृथ्वी। झर = ज्वाला। है बिपरीति० = सब से विलक्षण बात तो यह है कि आकाश से पृथ्वी की ओर ज्वाला आ रही है (ज्वाला नीचे से ऊपर की ओर जाती है, पर यह ऊपर से नीचे की ओर फैलती है)। अनंग = काम की आँच से, कामवेदना से। जोन्ह = ज्योत्स्ना, चाँदनी। नई अगिलाई = नए प्रकार का अग्निदाह।

[४१] इसमें कटाक्ष-पात की बाण-निपात से विलक्षणता दिखाई गई है। नैनन० = कटाक्ष के बाण लगते तो हैं नेत्रों में पर जाकर कसकते हैं कलेजे में (असंगति)। या बस० = (बाणों का प्रहार तो धीर सह लेते हैं पर) कटाक्ष की चोट से धीर लोग भी लोटपोट हो जाते हैं (सामान्य व्यक्तियों की तो चर्चा ही व्यर्थ है)। रोम० = (बाणों से पीडा वहीं होती है जहाँ वे धँसते हैं, पर कटाक्ष की) पीड़ा रोएँ रोएँ में समा जाती है और सारा शरीर अत्यंत व्याकुल हो जाता है। घूमै० = बुद्धि गति (मार्ग पाने) की आशा में चक्कर खाने लगती है। टोट० = कमी। प्यास की० = (बाण की चोट में प्यास पानी पाकर कम पड़ जाती है) पर इसके प्रहार से तो प्यास की कमी होती ही नहीं।

चलत सजीवन-सुजान-दृग-हाथन तेँ,
प्यारी अनियारी रुचि रखवारी ओट है।
जब जब आवै तब तब अति मन भावै
अहा कहा विषम कटाछ-सर-चोट है॥ ४१॥

पाती-मधि छाती-छत लिखि न लिखाए जाहिँ,
काती लै विरह घाती कीने जैसे हाल हैं।
आँगुरी बहकि तहीँ पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल-माल हैं।
जान प्यारे जौऽब कहूँ दीजियै सँदेसो तौऽब
आँवा सम कीजियै जु कान तिहि काल हैं।

सजीवन = जिलानेवाले। दृग-हाथन० = नेत्ररूपी हाथोँ से। चलत० = ये सुजान प्रिय के दृगरूपी हाथोँ द्वारा छोड़े जाते हैँ। अनियारी = तीखी, चुभनेवाली। रुचि = कांति, शोभा। रखवारी० = रक्षा करनेवाली आड़, ढाल या कवच। कांति की ओट लेकर ये बाण चलाए जाते हैँ। जब जब० = (अन्य बाण अपनी ओर आते अच्छे नहीँ लगते पर ये) जब जब आते हैँ तब तब मन को अत्यंत प्रिय लगते हैँ। अहा = आश्चर्यव्यंजक शब्द। कहा = क्या ही। बिषम = विलक्षण। कटाछ० = कटाक्षरूपी बाणोँ का प्रहार।

[४२] पाती-मधि = पत्र मेँ। छाती-छत = छाती मेँ लगे हुए घाव। छत = (क्षत) घाव। लिखि० = न तो स्वयं लिखे जा सकते हैँ और न दूसरे से ही लिखाए जा सकते हैँ (असंख्य और अकथनीय हैँ)। काती = छुरी। बिरह घाती = इस घातक विरह ने। बहकि = लिखना छोड़कर। तहीँ = त्योँ ही। पाँगुरी = पंगु। किलकि = चिल्लाकर। आँगुरी० = यदि पत्र लिखने का उपक्रम किया जाता है तो (विरह-दशा के ताप से) उँगली लिखना छोड़कर कहीँ की कहीँ जा पड़ती है और चिल्लाकर लँगड़ी हो जाती है, चलती ही नहीँ। ताती = तप्त, गरम। राती = लाल; अनुरागमय। दसा = दशा, अवस्था (विरह की); बत्ती। ताती राती० = (क्योँकि) संतप्त विरह-दशा के समूह को ज्वाला का समूह ही समझना चाहिए (जो उँगलियोँ को जलाने लगता है)। जौऽब = जो + अब। तौऽब = तो + अब। जौऽब० = पत्र लिखने मेँ तो ऐसी दुर्दशा है।

नेह-भीजी बातें रसना पै उर-आँच लागें,
जागें घनआनँद ज्यौं पुंजनि-मसाल हैं ॥ ४२ ॥

सवैया

कंत रमैं उर-अंतर मैं सु लहै नहीं क्यौं सुख-रासि निरंतर।
दंत रहैं गहें आँगुरी, ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर।
जो दुख देखति हौं घनआनँद रैनि-दिना बिन जान सुतंतर।
जानें वेई दिन-राति, बखाने तें जाय परै दिन-राति को अंतर ॥४३॥

यदि यह कहो कि (पत्र मत लिखो) संदेश ही भेज दो, तो सुननेवाला संदेश सुनते समय यदि अपने कानों को आँवाँ की भाँति बना ले तब कहीं जाकर सुन सकता है। नेह = प्रेम; चिकना, तेल। बातैं = (वार्ता, संदेश की) वचन; वत्तियाँ। रसना = जीभ। उर-आँच = उर में छिपी हुई विरह की आँच। जागें = जल उठती हैं। नेह-भीजी० = (संदेश सुननेवाले की तो वह दशा है, अब सुनानेवाले की भी दशा सुनिए) स्नेह से भींगी हुई बातें (वचन और बत्तियाँ ज्यों ही जिह्वा पर लाई जाती हैं हृदय के भीतर से विरहाग्नि की ऐसी लपट उनमें लगती है कि वे (बातें) मसालोंकी भाँति जल उठती हैं (कहें भी तो कैसे कहें)।

[४३] कंत = कांत, प्रिय। कंत रमैं० = यदि यह कहा जाय कि प्रिय तो हृदय के भीतर ही बसा है फिर भी तू सतत सुख की राशि क्यों नहीं पाती (तो उसका उत्तर यह है कि)। दंत० = दाँतों तले उँगली दबाए रहते हैं। ते = वे (लोग)। जु = जो (लोग)। तेह = आँच। तचे = पके। परतंतर = परतंत्र (होकर)। दंत·· परतंतर = वे लोग भी जो प्रेम की वश्यता स्वीकार करके वियोग की आँच में पक चुके हैं (मेरी भीषण विरह-ज्वाला देखकर आश्चर्य के मारे) दाँतों तले उँगली दबाते हैं। रैनि-दिना = रात-दिन। सुतंतर = स्वतंत्र, स्वच्छंद मनोवृत्तिवाले ('जान' का विशेषण)। जानें० = जैसा दुःख मैं दिनरात सहती रहती हूँ उसे वे दिन और रात ही समझ सकते हैं (और कोई नहीं)। जाय परै = जा पड़ता है, हो जाता है। बखानें तें० = यदि उस दुःख को कहती हूँ तो दिन और रात का सा अंतर पड़ जाता है। उसके अनुभव की स्थिति और कथित स्थिति में बहुत अंतर पड़ जाता है। विरह-वेदना अनुभवगम्य ही है, वह कही नहीं जा सकती।

सवैया

चंद चकोर की चाह करै, घनआनँद स्वाति पपीहा कौं धावै।
त्यौं त्रसरैनि के ऐन बसै रवि, मीन पै दीन ह्वै सागर आवै।
मोसों तुम्हैं सुनौ जान कृपानिधि! नेह निवाहिबो यौं छबि पावै।
ज्यौं अपनी रुचि राचि कुबेर सु रंकहि लै निज अंक बसावै ॥४४॥

ज्यौं बुधि सौं सुघराई रचै कोऊ, सारदा कौं कबिताई सिखावै।
मूरतिवंत महालछमी-उर पोत-हरा रचि लै पहिरावै।
रागबधू-चित-चोरन के हित सोधि सुधारि कै तानहिँ गावै।
त्यौं ही सुजान तियै घनआनँद मो जिय-बौराई-रीति रिझावै ॥४५॥

---

[४४] चाह करै = प्रेम करे, प्रेम करने के लिए उसके पास आए। पपीहा कौं = पपीहे के लिए, पपीहे के पास दौड़े। त्रसरैनि = त्रसरेणु, छेद में से होकर आती धूप में चमकनेवाला कण (सब से छोटे को परमाणु कहते हैं। उससे बड़े को अणु। अणु से बड़े को त्रसरेणु कहते हैं। पुराणों में सूर्य की एक पत्नी का नाम त्रसरेणु भी कहा गया है)। ऐन = अयन, घर। मीन पै = मछली के पास। दीन ह्वै = विनम्र बनकर, प्रेम की कोमलता से युक्त होकर। नेह० = प्रेम का निबाहना, प्रेम करना। यौं छबि० = ऐसी शोभा पा सकता है, ऐसी ही विलक्षणता से उसकी उपमा दी जा सकती है। अपनी रुचि० = अपनी इच्छा से, अपने आप। रुचि० = अनुरक्त होकर। सु = वह (कुबेर)। रंक = दरिद्र। अंक बसावै = गोद में बिठा ले।

[४५] बुधि = बुद्धि से, बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी से। सुघराई = चतुरता। सुघराई रचै = चतुरता की बातें बघारे। सारदा = शारदा, सरस्वती। कबिताई = कविता करना। मूरतिवंत = मूर्तिमती। उर = अर्थात् गले में। पोत = काँच की गुरिया। हरा = हार, माला। रागबधू = रागिनी। हित = लिए। सोधि = शोध करके, विचारपूर्वक। सुधारि कै = ठीक करके, बनाकर, भली भाँति। तान = आलाप। तियै = स्त्री को, प्रेमिका को। मो जिय = मेरे-मन की। बौरई० = पागलपने की रीति। त्यौं ही० = उसी प्रकार सुजान को मेरे मन की पागलपने की रीति रिझा लेना चाहती है। मैं अपने पगलेपन से ऐसी सुजान (सज्ञान) को वश में करना चाहता हूँ।

कवित्त

हिये मैं जु आरति सु जारति उजारति है,
मारति मरोरैं जिय डारति कहा करौं।
रसना पुकारि कै बिचारी पचि हारि रहै,
कहै कैसें अकह, उदेग रुँधि कै मरौं।
हाय कौन बेदनि बिरंचि मेरे बाँट कीनी,
निघटि परौं न क्यौं हूँ, ऐसी बिधि हौं गरौं।
आनँद के घन हौ सजीवन सुजान देखौ,
सीरी परि सोचनि, अचंभे सौं जरौं भरौं ॥ ४६ ॥

सवैया

पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौं आन घरी मैं बिरंचि बनाई।
रूप की लोभनि रीझि भिजाय कै हाय इते पै सुजान मिलाई।
क्यौं घनआनँद धीर धरैं बिन पाँख निगोड़ी मरैं अकुलाई।
प्यास-भरी बरसैं तरसैं मुख देखन कौं अँखियाँ दुखहाई ॥४७॥

---

[४६] आरति = दुःख। जारति = जलाती है। उजारति = उजाड़े डालती है। मारति० = मरोड़कर जी को मारे डालती है। कहा = क्या। रसना = जीभ। पचि = परेशान होकर। हारि० = थक जाती है, हार मान बैठती है। कैसैं = किस प्रकार से। अकह = अकथ्य, न कही जा सकने योग्य। उदेग = उद्वेग, घबराहट। रुँधि कै० = (उद्वेग से) घिरकर भीतर ही भीतर मरी जाती हूँ। बेदनि = वेदना, पीड़ा। बिरंचि = ब्रह्मा। मेरे० = मेरे हिस्से मैं डाली। निघटि० = चुक क्यों नहीं जाती। ऐसी० = इस प्रकार (अत्यधिक) मैं गल रही हूँ। निघटि⋯गरौं = इस प्रकार (कष्ट सहकर) गलती जा रही हूँ, क्यों नहीं एकबारगी ही चुक जाती। सीरी = ठंढी। भरौं = दिन काट रही हूँ। सीरी⋯भरौं = सोच के मारे ठंढी पडकर। अचंभे० = आश्चर्य से जलती हूँ। भरौं० = इस प्रकार मैं दुःख की विषमता मैं पड़ी हुई दिन काट रही हूँ।

[४७] सकेलि = एकत्र करके। धौं = न जाने। आन = अन्य, विलक्षण, बुरी। घरी = घड़ी। बिरंचि = ब्रह्मा। रूप० = छवि का लोभ करनेवाली।

साधनि ही मरियै भरियै, अपराधनि बाधनि के गुन छावत।
देखैं कहा? सपनो हूँ न देखत, नैन यौं रैनि-दिना झर लावत।
जौ कहूँ जान लखैं घनआनँद तौ तन नेकु न औसर पावत।
कौन वियोग-भरे अँसुवा, जु सँजोग मैं आगेई देखन धावत ॥४८॥

कवित्त

उठि न सकत, ससकत नैन-बान-बिँधे,
इते हू पै बिषम बिषाद-जुर लू बरै।
सूरे पन-पूरे हेत-खेत तें हटैं न कहूँ,
प्रीत-बोझ बापुरे भए हैं दबि कूबरे।

रीझ० = प्रेम में भिंगोकर। इते पै = इतने पर, इसके अनंतर। सुजान० = सुजान की आँखों से जा मिलीं। पाँख = पक्ष, डैने। निगोड़ी = (गाली) दुष्ट, अभागी। प्यास० = प्यास से भरी हुई भी (आँसू) बरसती हैं (विरोध)। तरसैं = कलपती हैं। दुखहाई = दुःख की मारी।

[४८] साधनि ही० = देखने की उत्कट इच्छा से मरती ही रहती हूँ। भरियै = दिन काटती हूँ। बाधनि० = बाधाओं के। गुन = समान। अपराधनि० = अपराधों की सी बाधाओं का जाल फैलाते हुए अर्थात् सामने आने पर ये आँसू अपराध ही बनकर उनको देखने में बाधा डालते हैं। देखैं कहा = (उनके बिना) प्रत्यक्ष तो देखूँ ही क्या, उनका स्वप्न भी नहीं देखती, स्वप्न देखने में भी आँसू बाधा देते हैं। रैनि-दिना = रात दिन। झर = झड़ी (आँसू की)। तौ तन० = (यदि प्रिय कहीं जाते दिखाई पड़ते हैं) तो शरीर बेचारा उनसे भेंटने का थोड़ा भी अवसर नहीं पाता (आँसू ही पहले दौड़ पड़ते हैं)। वियोग = विरह का दुःख। कौन० = न जाने कितने अधिक वियोग के दुःख से ये आँसू भरे रहते हैं। सँजोग० = उनके संयोग में (मिलने पर) आँखों से भी पहले ही दौड़ पड़ते हैं (न इनके मारे दृष्टि से उन्हें देख पाती हूँ और न शरीर ही उन्हें भेंट पाता है, इस प्रकार संयोग में भी वियोग ही बना रहता है)।

[४९] ससकत = सिसकते हैं, वेदना से कराहते हैं। नैन० = नेत्ररूपी बाणों से विद्ध (प्रेमी)। जुर = ज्वर। इते हू० = इतने पर भी विषम विषाद का ज्वर लू की भाँति जलता रहता है। सूरे० = प्रतिज्ञा पूर्ण करने में वीर।

संकट-समूह मैं विचारे घिरे घुटैं सदा,
जानी न परत जान ! कैसैं प्रान ऊबरे।
नेही दुखियानि की यहै गति आनंदघन,
चिंता-मुरझानि सहैं न्याय रहैं दूबरे ॥ ४९ ॥

सुखनि समाज साज सजे तित सेवैं सदा,
जित नित नए हित-फंदनि गसत हौ।
दुख-तम-पुंजनि पठाय दै चकोरनि पै,
सुधाधर जान प्यारे ! भलैं ही लसत हौ।
जीव सोच सूखै गति सुमिरैं आनंदघन,
कितहू उघरि कहूँ घुरि कै रसत हौ।
उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,
सुवस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ ॥ ५० ॥

हेत-खेत = प्रेमरूपी क्षेत्र (रणक्षेत्र)। हटैं न = टलते नहीं। कहूँ =कभी। बापुरे = बेचारे। दबि = (प्रेम के बोझ से) दबकर। कूबरे = कुबड़े हो गए, कमर टूट गई है, अग-भंग हो गया है। घुटैं = दम घुटता रहता है। कैसैं = किस प्रकार। ऊबरे = बच जाते हैं। गति = दशा। न्याय० = (प्रेमियों का) दुबला रहना ठीक ही है।

[५०] तित = वहाँ। हित-फंदनि = प्रेम के फंदों में। गसत० = डालते हो। सुखनि० = जहाँ आप नित्य नए नए प्रेम के फदों में लोगों को फँसाते रहते हैं वहाँ तो आप अनेक प्रकार के सुखों का साज सजकर सदा आनंद ही आनंद मनाया करते हैं। दुख-तम० = दुःखरूपी अंधकार का समूह चकोरों के पास भेज दिया है। सुधाधर = चंद्रमा (के समान)। भलैं ही = भली भाँति, क्या ही अच्छे। जीव…घन = हे आनंदघन, आप की चाल का ध्यान करके हृदय सोच के मारे सूख जाता है। उघरि = उचटकर। घुरि कै = घुलकर। रसत० = रस बरसाते हो। कितहू० = कहीं तो (आप) उचटकर और कहीं घुल-घुलकर रस बरसाया करते हैं। उजरनि० = हमारी आँखों में तो उजड़न बसी हुई है (हमारी आँखें उदास, मलिन रहती हैं)। सुबस = भली भाँति बसा हुआ। भावते = (भानेवाले) प्रिय। सुबस…बसत हौ =

तपति उसास, औधि रूँधियै कहाँ लौं दैया,
बात बूझैं सैननि ही उतर उचारियै।
उड़ि चल्यौ रंग कैसें राखियै कलंकी मुख,
अनलेखें कहाँ लौं न घूँघट उघारियै।
जरि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसी बैसि,
चित-चढ़ी मूरति सुजान क्यौं उतारियै।
कठिन कुदायँ आय घिरी हौं अनंदघन,
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै ॥ ५१ ॥

सवैया

अकुलानि के पानि पर्यौ दिनराति सु ज्यौ छिनकौ न कहूँ बहरै।
फिरिबोई करै चित चेटक चाक लौं धीरज को ठिकु क्यौं ठहरै।

जहाँ आप जा बसे हैं वहाँ सुदेश (सुंदर बस्ती) भली भाँति बसा हुआ है। 'उजरनि बसी है' में विरोध है।

[५१] तपति० = साँसें (विरह-ताप) से तप्त हो रही हैं। औधि० = अवधि की आशा में कब तक प्राणों को घेरे रहूँ, कब तक धैर्य धारण करूँ। रूँधना = पेड़ों को रक्षा के लिए काँटेदार झाड़ी से घेरना। दैया = खेदव्यंजक अव्यय। बात० = (किसी के पूछने पर कि तुम्हारी यह क्या दशा है) में संकेतों से कब तक लोगों को उत्तर देती रहूँ। उचारियै = कहूँ। उड़ि० = रंग उड़ने लगा है, विवर्ण हो गई हूँ। कैसें = किस प्रकार से। राखियै = बचाऊँ, छिपाऊँ। अनलेखैं = बेहिसाब (बहुत दिनों तक)। अनलेखैं० = (अपना कलंकी मुख) कब तक इस प्रकार घूँघट में छिपाए रखूँ। छार = राख, भस्म। बैसि = वयस्, उम्र। जरि बरि० = चाहे यौवन की ऐसी उम्र जल-बलकर भस्म ही क्यों न हो जाय। चित-चढी० = चित्त में बसी हुई आप की मूर्ति कैसे हटाऊँ। कुदायँ = कुदाँव में, बुरे अवसर पर। रावरी० = यदि आप का वश चले तो। बसाय = मुझे एक बार बसाकर अब (इस प्रकार) उजाड़िए मत।

[५२] पानि० = हाथों में पड़ा हुआ। अकुलानि० = व्याकुलता के हाथों में पड़ा हुआ, व्याकुलता के कारण। ज्यौ = जी, मन। छिनकौ = क्षण भर के लिए भी। कहूँ = कहीं भी। न बहरै० = बहलता नहीं। फिरबोई० = फिरता

भए कागद-नाव उपाव सबै घनआनँद नेह-नदी-गहरै।
बिन जान सजीवन कौन हरै सजनी! बिरहा-विष की लहरै ॥५२॥

कवित्त

राति-द्यौस कटक सजे ही रहै दहै दुख,
कहा कहौं गति या बियोग बजमारे की।
लियौ घेरि औचक अकेलो कै बिचारो जीव,
कछु न बसाति यौं उपाय-बल-हारे की।
जान प्यारे लागौ न गुहार तौ जुहार करि
जूझिहै निकसि टेक गहैं पनधारे की।
हेत-खेत-धूरि चूर चूर ह्वै मिलैगो, तब
चलैगी कहानी घनआनँद तिहारे की ॥ ५३ ॥

ही रहता है, चंचल ही बना रहता है। चेटक = उपकार से दबा, कनौड़ा। चाक० = कुम्हार के चाक की तरह। धीरज को० = धैर्य की स्थिरता कैसे ठहरे, स्थिर होकर धैर्य कैसे टिके। ठिक ठहरना = ठिकाने लगना, स्थिर होना। भए० = प्रेम की गहरी नदी में पड़कर सारे उपाय कागज की नाव की तरह गल गए (उपाय व्यर्थ हुए)। सजीवन = जिलानेवाले। हरै० = दूर करे। बिरहा०= विरहरूपी विष की लहरें (घातक प्रभाव)।

[५३] द्यौस = दिवस, दिन। कटक = सेना। गति = दशा, चाल। बजमारा = (स्त्रियों की गाली) वज्र का मारा हुआ; नष्ट। राति···बजमारे की = इस वज्रमारे वियोग की गति क्या बतलाऊँ, यह तो रातदिन सेना सजाए हुए मुझे दु:ख में जलाता ही रहता है। औचक = अचानक। अकेलो० = अकेला करके। लियौ घेरि० = इसने बेचारे प्राण को सब से पृथक् करके अचानक आक्रमण द्वारा घेर लिया। न बसाति = वश नहीं चलता। यौं = इस प्रकार। उपाय० = उपाय और बल से हारे हुए (प्राण की), जिसका कोई उपाय और बल काम न आता हो। लागौ० = यदि आप इसकी गुहार न लगेंगे, इसकी पुकार सुनकर इसे बचाने को दौड़ न पड़ेंगे। जुहार० = सहायता के लिए चिल्ला-कर। जूझिहै = कट मरेगा। निकसि = निकलकर; मैदान में निकल आकर। टेक० = प्रतिज्ञा को पूर्ण करने की टेक का निर्वाह करते हुए। हेत० = (जब)

जान प्यारी ! हौं तौ अपराधनि सौं पूरन हौं,
कहा कहौं ऐसी गति, आवत गरौ रुक्यौ ।
साध मारै सुधा तो सुभाय के मिठासै, ताकी
आसा लै दहति, भै चरन-कंज सौं ढुक्यौ ।
इते पै जौ रोष कै रसीली हियो पोढ्यौ करौं,
तौ न कहूँ गैर* जी को, वे हू झगरो चुक्यौ ।
ऐसें सोच-आँचनि अनंदघन सुखनिधि,
लपट कढ़ै न नेकौ हा हा जात ज्यौ फुक्यौ ॥ ५४ ॥
सुधा तें स्रवत विष, फूल मैं जमत सूल,
तम उगिलत चंद, भई नई रीति है ।
जल जारै अंग, और राग करै सुरभंग,
संपति बिपति पारै, बड़ी विपरीति है ।

प्रेम के क्षेत्र की धूल में अपने को चूर चूर करके मिल जायगा। तिहारे की = आप के (किए) की।

[५४] पूरन हौं = पूर्ण हूँ। आवत० = कहते हुए गला भी रुक जाता है। सुभाय० = स्वाभाविक, सहज। साध० = आप की साध की स्वाभाविक मिठास-रूपी सुधा ही मारे डाल रही है। आशा० = यदि इस प्रकार मारने के संताप के भय से आप के चरण-कमलों में (शीतलता प्राप्त करने के लिए) जा छिपूँ तो उसकी आशा ही जलाए डालती है। रोष = जोश, हिम्मत। पोढ्यौ = दृढ। इते पै० = इतने पर भी यदि हिम्मत करके हृदय को कठोर करूँ (आप के चरणों की आशा छोड़ूँ)। तौ न० = तो हृदय के लिए कोई दूसरा आश्रय ही नहीं है। अतः आश्रय का झगड़ा भी मिटा। ऐसें० = इस प्रकार सोच की आँच में। लपट० = भीतर ही भीतर हृदय फुँका जा रहा है, बाहर लपट भी नहीं निकल पाती।

[५५] स्रवत = टपकता है। जमत = निकलते हैं। सूल = काँटे। तम० = अंधकार करता है। जल० = जल से अंग जलता है। सुरभंग = स्वर-भंग। राग० = राग गाने से गला बिगड़ता है। पारै = डालती है। गहै० =

* ठौर।

महागुन गहै दोषै, औषद हू रोग पोषै,
ऐसें जान! रस माहिँ बिरस अनीति है।
दिनन को फेर मोहिँ, तुम मन फेरि डार्‌यौ
अहो घनआनँद! न जानौं कैसी बीतिहै ॥ ५५ ॥
गरल गुमान की गरावनि दसा को पान
करि करि, द्यौस-रैनि प्रान घट घोटिबो।
हेत-खेत-धूरि चूरि चूरि साँस, पाँव राखि,
बिष-समुदेग-बान-आगें उर ओटिबो।
जान प्यारे जौ न मन आनैं तौ अनंदघन
भूलि तू न सुमिरि परेखैं चख चोटिबो।

दोष को ग्रहण करता है। पोषै० = पुष्ट करती, बढ़ाती है। ऐसैं = ठीक इसी प्रकार (से)। रस० = आप के रस में बिरसता की अनीति भी है, प्रेम से आप का उदासीन होना भी ऐसी ही उलटी बात है। दिननि० = मेरे तो दिनों का फेर है ही। तुम० = आप ने भी अपना मन मेरी ओर से फेर लिया है। न जानौं० = आप यह नहीं सोचते हैं कि इससे मुझपर क्या बीतेगी।

[५६] गुमान = अभिमान। गरावनि = गलानेवाली। गरल० = गुमान को गला देनेवाली दशा के विष को पी पीकर (विरह की दुःख-दशा वह विष है जो सारा गुमान गला देता है। ऐसे दुःख को भी सहता हूँ)। प्राण० = प्राण शरीर में ही घुटते रहते हैं, दम घुटता रहता है। हेत० = प्रेम के क्षेत्र की धूल में। चूरि० = अपनी साँसों को चूर चूर करके (और धूल में मिलाकर)। पाँव० = पैर जमाकर, डटकर। समुदेग = समुद्वेग, व्याकुलता। बिष = व्याकुलता के बिषैले बाण। आगें = सामने। ओटिबो = सहने के लिए आगे करना। उर० = छाती पर रोकना, सहना। न मन० = मन में नहीं ले आते। तेरी ओर नहीं झुकते। भूलि = भूलकर भी। न सुमिरि = स्मरण न कर। परेखैं = पछतावे को। चख चोटिबो = कटाक्ष से घायल होना। भूलि तू० = तू उनके कटाक्ष से घायल होने के पछतावे का स्मरण भूलकर भी मत कर। तिन्हैं० = उनकी छाती तो इस प्रकार (लोगों को अपने कटाक्ष से घायल करने में ही) ठंढी पड़ती है। ताती = तप्त, संताप देनेवाली। तोहि० = तुझे इससे संताप

तिन्हैं यौँ सिराति छाती तोहि वै लगति ताती,
तेरे बाँटै आयो है अँगारनि पै लोटिबो ॥ ५६ ॥

बिकल बिषाद-भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनि हूँ लहकि बहकि यौँ जस्यौ करै।
जीवन-अधार-पन-पूरित पुकारनि सौँ
आरत पपीहा निति कूकनि कस्यौ करै।
अथिर उदेग-गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिडस्यौ सो बन-बीथनि रस्यौ करै।
बूँदैं न परतिं मेरैं जान जान प्यारी! तेरे
बिरही कौं हेरि मेघ आँसुनि भस्यौ करै ॥ ५७ ॥

सवैया

सोएँ न सोयबो, जागें न जाग, अनोखियै लाग सु आँखिन लागी।
देखत फूल, पै भूल भरी यह सूल रहै नित ही चित जागी।

होता है। बाँटै = हिस्से में। टेरे० = तेरे हिस्से में अंगारों पर लोटना ही आया है। तुझे कष्ट सहना ही बदा है।

[५७] विरह-निवेदन। सखी या दूती का वचन नायिका से। बिकल० = विषाद में भरकर व्याकुल हुए उस विरही की ओर देखकर (उसके विषाद की ज्वाला से संतप्त होकर)। दामिनि = बिजली। लहकि = चमककर। बहकि = (व्याकुलता के कारण) इधर उधर होकर। दामिनि हूँ० = बिजली भी उस विरही के विषाद की ज्वाला से जलकर चमका करती है। जीवन० = प्रिय। जीवन-अधार० = प्रिय के लिए प्रेम की प्रतिज्ञा से पूर्ण उसकी पुकारों को ही (ग्रहण करके)। आरत = आर्त, दुखी (होकर)। कूक = पुकार, चिल्लाहट। अथिर = अस्थिर, चंचल। अथिर० = व्याकुलता से उसकी अस्थिर दशा देखकर ही। बिडस्यौ० = नष्ट होकर, दुःख का मारा होकर। बीथनि = गलियों में, मार्ग में। रस्यौ० = रटता रहता है, हू हू शब्द करता रहता है। बूँदैं० = ये बूँदें नहीं हैं। मेर जान = मेरे विचार से।

[५८] सोएँ न० = सोने पर न तो सोते बनता है और न जागने पर जागते ही। लाग = लगन (प्रेम)। फूल = प्रफुल्लता, प्रसन्नता। देखत० = प्रिय

चेटक जान-सजीवनि-मूरति रूप-अनूप महारस-पागी।
कौन बियोग-दसा घनआनँद, मो मति-संग रहै अति खागी ॥५८॥

मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीत-तज्यौ तरसै।
वह रूप-छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै।
घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुरें मिलें मीन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति कौं परसै ॥५९॥

को जब तक देखती रहती हूँ तब तक इन्हें आनंद मिलता है। सूल = काँटा, खिन्नता। पै भूल० = जब इन्हें (ये आँखें) नहीं देखतीं तो चित्त में नित्य ही भूल का विचार करके खिन्नता छाई रहती है। चेटक = जादू-भरी, मायाविनी। जान० = प्रिय की जीवनदायिनी मूर्ति। महा० = अत्यंत रस में पगी हुई, रसीली। कौन = कैसी, विलक्षण। खागी = खगी हुई, मिली हुई। मो मति० = कैसा विलक्षण वियोग है कि मेरी मति में वह (प्रिय की मूर्ति) मिली रहती है (बराबर उसी का ध्यान बना रहता है) फिर भी वियोग का दुःख सहना पड़ता है।

[५९] वियोगी मीन और पतंग से अपनी विरह-दशा को अधिक कष्ट-दायक दिखा रहा है। बिसराम = विश्राम, शांति (कष्टों का अंत)। वह = मीन। यह = मेरा मन। बापुरो = बेचारा। मीन० = प्रिय द्वारा त्यक्त, वियुक्त। तरसै = कलपता है। वह = पतंग। रूप० = (दीप के) सौंदर्य की शोभा। न सहारि० = सह नहीं सकता (मर जाता है)। यह = मेरा मन। तेज० = प्रिय की अंगदीप्ति से (उसे देखकर) तपता रहता है, टकटकी लगाकर देखता है और आँखों से आँसू भी बरसाता है ('तपना' और 'आँसू बरसाना'—विरोध)। आवरी = व्याकुल। बावरी = पगली। थरसै = त्रस्त होती है। बिछुरें = वियुक्त होने पर (मीन)। मिलें = मिलने पर (पतंग)। मो जिय० = मेरे मन की दशा को छू भी नहीं सकती (वियोग में मछली की और संयोग में पतंग की जो दशाएँ होती हैं वे मेरी दोनों दशाओं के लेशमात्र को भी नहीं पहुँचतीं)। इसमें यथासंख्य अलंकार है। मीन और पतंग के संबंध की बातें क्रम से रखी गई हैं।

कवित्त

तेरे देखिबे कौं सब ही त्यौं अनदेखी करी,
तू हू जौ न देखै तौ दिखाऊँ काहि गति रे।
सुनि निरमोही एक तोही सौं लगाव मोही,
सोही कहि कैसैं ऐसी निठुराई अति रे।
विष सी कथानि मानि सुधा पान करौं जान!
जीवन-निधान ह्वै बिसासी मारि मति रे।
जाहि जो भजै सो ताहि तजै घनआनँद क्यौं,
हति कै हितूनि, कहौ काहू पाई पति रे? ॥ ६० ॥
लगी है लगनि प्यारे पगी है सुरति तो सौं,
जगी है बिकलताई ठगी सी सदा रहौं।
जियरा उड्यौ सो डोलै हियरा धक्यौई करै,
पियराई छाई तन, सियराई दौ दहौं।

---

[६०] सब ही० = सब की ओर देखना त्याग दिया। गति = दशा। सुनि = सुनो। मोही = मुझमें अर्थात् मेरा। लगाव = मेरा प्रेम। सोही० = कहो यह निष्ठुरता कैसे शोभा देती है। विष सी० = विष की कथाओं (लोगों द्वारा लगाए हुए अपवादों) को अमृत समझकर पी लिया (उन्हें सहा)। जीवन-निधान = प्राणों के अवलंब। ह्वै बिसासी = विश्वासघाती होकर। मारि० = मुझे मार मत डालो। भजै = चाहे, प्रेम करे। हति कै० = प्रेमियों को मारकर। पति = प्रतिष्ठा। कहौ० = कहो क्या किसी ने प्रतिष्ठा प्राप्त की है? (नहीं)।

[६१] लगनि = प्रीति। सुरति = (स्मृति) ध्यान। पगी है० = तुम्हीं में स्मृति भी पगी है, तुम्हारा ही ध्यान करती हूँ। जगी० = व्याकुलता प्रचंड हो गई है। जियरा० = जी उडा उड़ा रहता है। हियरा० = छाती धड़कती रहती है। पियराई० = शरीर में (विरह से) पीलापन छाया है। सियराई० = ठंढी आग में जल रही हूँ, मंद मंद सुलगती हुई आग में जलती हूँ [मिलाइए—शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग-जल का—'प्रसाद']. ऊनो० = जीना व्यर्थ जान पड़ता है। दूनो० = जो दुःख सहती हूँ वह एक एक क्षण में

ऊनो भयौ जीबो अब सूनो सब जग दीसै,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं।
तेरे तौ न लेखो, मोहिं मारत परेखो महा,
जान घनआनँद पै खोइबो लहा लहौं॥ ६१ ॥
कौन की सरन जैयै आपु त्यौं न काहू पैयै,
सूनो सो चितैयै जग, दैया कित कूकियै।
सोचनि समैयै, मति हेरत हिरैयै, उर
आँसुनि भिजैयै, ताप तैयै तन सूकियै।
क्यौं करि बितैयै, कैसें कहाँ धौं रितैयै मन,
बिना जान प्यारे कब जीवन तें चूकियै।
बनी है कठिन महा, मोहिं घनआनँद यौं,
मीचौ मरि गई आसरो न जित ढूकियै॥ ६२ ॥

दूना होता जाता है। तेरे० = तेरे जी में तो (मेरी दशा का) कोई लेखा (विचार) ही नहीं है। परेखो = सोच, पछतावा। मोहिं० = मुझे यही भारी पछतावा (परेखा) मारे डाल रहा है। जान = सुजान। घनआनँद = घने आनंद-वाले। लहा = लाभ। लहौं = पाती हूँ। जान० = आनंददायक सुजान से मुझे खोने का ही लाभ मिलता है। उनके प्रेम में पड़कर सब कुछ खोती ही रहती हूँ।

[६२] सरन = शरण में जाऊँ। आपु त्यौं० = अपने समान किसी को पाती ही नहीं [अथवा मेरी दशा पर ध्यान देनेवाला कोई दिखाई ही नहीं देता]। सूनो० = सारा संसार सूना सा दिखाई देता है। दैया० = हाय कहाँ जाकर पुकार करूँ। सोचनि० = सोचों में गड़ी जा रही हूँ। मति० = बुद्धि के खोजने में मैं स्वयं खो जाती हूँ। ताप तैयै० = ताप से तपती रहती हूँ और शरीर सूखता जा रहा है। क्यौं करि० = कैसे दिन बिताऊँ। कैसें० = किस प्रकार और न जाने कहाँ जाकर अपने मन को हलका करूँ। बिना जान० = बिना प्रिय को देखे मरते भी नहीं बनता। बनी है० = बड़ी कठिन स्थिति आ गई है। मोहिं = मेरे ऊपर। ढूकियै = छिपाऊँ। मीचौ मरि० = मृत्यु भी मर गई है इसलिए अपने को छिपाने का आसरा-भरोसा भी जाता रहा। मृत्यु में मैं अपने को छिपा लेती, पर वह भी नहीं रही।

अधिक बधिक तें सुजान ! रीति रावरी है,
कपट-चुगो दै फिरि निपट करौ बुरी।
गुननि पकरि लै, निपाँख करि छोरि देहु,
मरहि न जियै, महा विषम दया-छुरी।
हौं न जानौं, कौन धौं ही या मैं सिद्धि स्वारथ की,
लखी क्यौं परति प्यारे अंतर-कथा दुरी।
कैसैं आसा-द्रुम पै बसेरो लहै प्रान-खग,
बनक निकाई घनआनँद नई जुरी ॥ ६३ ॥
मेरो जीव तोहि चाहै, तू न तनकौ उमाहै,
मीन-जल-कथा है कि या हू तें बिसेखियै।

---

[६३] अधिक = बढ़कर । बधिक = बहेलिया, चिड़ीमार । रावरी = आप की । चुगो = चारा । निपट = अत्यंत । फिरि० = इसके अनंतर अत्यंत बुरा (व्यवहार) करते हो । गुननि = गुणों से, रस्सी या जाल से । निपाँख = पंख-हीन ; पक्षरहित । गुननि० = अपने गुणरूपी जाल में पकड़कर फिर पक्ष से हीन करके छोड़ देते हो । बहेलिया या तो पकड़कर मार डालता है या पक्षहीन करके पास रख लेता है । आप न मारते ही हैं न पकड़कर पास ही रखते हैं । असहाय और बेकार करके छोड़ देते हैं । मरहि० = इसलिए (प्राणरूपी पक्षी न तो मरता ही है न जीता ही) । महा० = आप की दया की छुरी बड़ी ही विषम (भयंकर और विलक्षण) है । आप ने न मारकर जो दया दिखलाई वह मारने से भी अधिक कष्टकर है । हौं = मैं । कौन धौं = कौन सी । हौं न० = मुझे यही नहीं जान पड़ता कि इसमें आप के किस स्वार्थ की सिद्धि होती है ? लखी० = कैसे लक्षित हो सकती है । अंतर = हृदय में छिपी हुई गुप्त बात । आसा = आशारूपी वृक्ष पर प्राणरूपी पक्षी कैसे बसा रह सकता है । बनक = रूप की सजावट ; वन की वस्तु । बनक० = नई नई सुंदरता (पक्षियों के फँसाने का नया नया चारा) जुटाकर आप की फँसाने की आदत है (अतः यह आशा कैसे करूँ कि जिस दशा में पड़ी हूँ इसी में पड़ी रह सकूँगी) ।

[६४] तनकौ० = थोड़ी भी उमंग नहीं दिखाते । मीन० = मछली और जल की सी बात है (मछली जल के वियोग में मरती रहती है, पर जल

ता बिन सो मरै, छूटि परै, जड़ कहा ढरै,
भरौं हौं, न मरौं जान! हियें अवरेखियै।
पलकौ बिछोह-आगै, कलपौ अलप लागै,
विलपौं सदाई, नेकु तलफनि देखियै।
सूनो जग हेरौं रे अमोही! कहि काहि टेरौं,
आनँद के घन ऐसी कौन लेखैं लेखियै॥ ६४॥
मुरझाने सबै अंग, रह्यौ न तनक रंग,
वैरी सु अनंग पीर पारै जरि गयौ ना।
इते पै बसंत सो सहायक समीप याके,
महा मतवारो कहूँ काहू तें जु नयौ ना।

टस से मस भी नहीँ होता)। बिसेखियै = बढकर। ता = उस (जल)। सो = वह (मीन)। छूटि० = कष्टों से छूट जाता है। जड़० = वह जड़ जल उस (मीन) पर द्रवीभूत ही कब होता है। भरौं हौं = मैं दिन काटती हूँ। हियँ० = अपने हृदय में विचार कीजिए। पल० = आप के क्षणभर के वियोग के सामने एक कल्प भी छोटा जान पड़ता है। बिलपौं = मैं निरंतर विलाप किया करता हूँ। नेकु० = जरा मेरी तडपन तो देखिए। सूनो० = आप के बिना सारा संसार सूना दिखाई देता है। कहि० = कहो किसे पुकारूँ? ऐसी० = ऐसी रहन किस गिनती में गिनी जाय (ऐसा जीना व्यर्थ है)।

[६५] मुरझाने = शिथिल हो गए। रह्यौ० = शरीर की स्वाभाविक कांति कुछ भी नहीं रह गई। सु = सो, वह। पीर पारै = पीड़ा देता है। जरि० = अभी तक काम भस्म हुआ कहाँ (शिव ने उसे भस्म किया, पर वह भस्म हुआ नहीं, अब तक कष्ट दे रहा है)। इते० = इतने पर भी। कहूँ० = कहीं किसी के सामने झुका नहीं (भस्म होना तो दूर की बात है)। तीखे = चोखे। नए = नवीन। नीके = अच्छे (अच्छी मार करनेवाले)। जीके० = प्राणों के ग्राहक, प्राण ले लेनेवाले। सरनि० = बाण ले लेकर। बेधै० = यह कपूत (अपने पिता) मन को ही बेधा करता है (काम 'मनोज' कहलाता है, मन उसका पिता है)। पिता० = पिता की ममता भी इसमें नहीं। मोहमयौ = मोहयुक्त, ममता से

तीखे नए नीके जी के गाहक सरनि लै लै,
बेधै मन कों कपूत पिता-मोह-मयौ ना।
पवन-गवन-संग प्राननि पठायहौं तौ,
जान घनआनँद को आवन जौ भयौ ना ॥ ६५ ॥

सवैया

निस-द्यौस खरी उर-माँझ अरी, छवि रंग-भरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यौं चख ढोर रहे, ढरि गौ हिय ढोरनि वाहनि की।
चट दै कटि पै बढ़ि* प्रान गए गति सों मति मैं अवगाहनि की।
घनआनँद जान लखी जब तें जक लागियै मोहिं कराहनि की ॥६६॥

युक्त। पवन० = उनकी ओर जानेवाली वायु के साथ अपने प्राणों को भी भेज दूँगी ('प्राण' का अर्थ 'वायु' भी है)। जान० = यदि घना आनंद देनेवाले प्रिय (सुजान) नहीं आए।

[६६] निस० = रात-दिन, निरंतर। खरी = उत्तम ('छवि' का विशेषण)। उर० = हृदय में अड़ी हुई है। रंग-भरी = दीप्ति से युक्त। मुरि० = (जाते समय) मुड़कर देखने की छबि। निस-द्यौस० = उन्होंने जाते समय जो मुड़कर मेरी ओर देखा उस मुद्रा की आनंददायिनी और उत्तम छटा हृदय में निरंतर समाई रहती है। तकि० = देखकर मुड़ना। त्यौं = वैसे ही। चख = नेत्र। ढोर रहे = पीछे हो लिए, साथ लगे। ढरि गौ = ढल गया। ढोरनि = ढरें पर। वाहनि = (नाली के) प्रवाह के (ढंग से)। तकि····· बाहनि की = (जैसे उनके मुड़कर देखने की छटा हृदय में छाई है) वैसे ही देखकर जब वे मुड़े तो नेत्र उनके पीछे लगे (उन नेत्रों के रास्ते) हृदय उसी प्रकार (उनमें) ढलकर जा मिला जैसे नाली से पानी ढलकर निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच जाता है। चट = शीघ्रता। बढ़ि = प्रवाह में बढ़े, धारा में धँसे। दै० = कमर को शीघ्रता देकर, कमर को शीघ्रता से मोड़कर। गए = निकल गए। गति सों = मुद्रा से। मति = मति में डूबने की। गति सों० = मन में डूबने (कमर को फुरती से घुमाकर कूदने) की मुद्रा से प्राण निकल गए। जक = रट।

* वट।

किहि नेह विरोध बढ्यौ सब सों, उर आवत कौन के लाज गई।
जिहि के भरि भार पहार दबै, जग-माँझ भई तिन तैं हरई।
दृग काहि लगे जु कहूँ न लगैं, मन-मानिक ही अनखानि ठई।
घनआनँद जान अजौं नहिँ जानत, कैसे अनैसे हैँ हाय दई ॥६७॥

इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसैं उराहनो दीजियै जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू।
घनआनँद जीवन-प्रान सुजान ! तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ तुम्हैँ चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू॥६८॥

बधिकौ सुधि लेत,सुन्यौ,हति कै गति रावरी क्यौँ हूँ न बूझि परै।
मति आवरी बावरी ह्वै जकि जाय, उपाय कहूँ कि न सूझि परै।

घनआनँद० = घना आनंद देनेवाली नायिका को जब से इस मुद्रा में देखा है तभी से मैं कराह रहा हूँ।

[६७] किहि० = किसके प्रेम के कारण। उर० = हृदय में आने के कारण। जिहि० = जिसके भार (बोझ, गुरुत्व) से भरकर (युक्त होकर) पहाड भी दब जाते हैं। जिनकी महत्ता का विचार करके दुःखों या अपवादों (के पहाडों) को मैं कुछ नहीं गिनती। हरई = लघुता, हल्कापन। जग० = संसार में उन्हीं के कारण मैं हल्की हो गई। काहि = किससे। जु = जो, कि। मन० = मनरूपी माणिक। अनखानि० = (मन) रूठ गया, चिढाने की ठान ठान ली ; अन + खानि, (माणिक) खान से पृथक् या बाहर हो गया। अजौं = अब भी, इतने पर भी। नहिँ० = मेरी व्यथा नहीं समझते, मेरी ओर प्रवृत्त नहीं होते। अनैसे = अनिष्ट, बुरे, विलक्षण।

[६८] इत० = मेरे बाँटे तो आप की सुध पडी है। रावरे० = आप के हिस्से में मेरा भूलना पडा है। कैसैं० = उलाहना दूँ भी तो कैसे दूँ (जिसके बाँटे जो पड़ा वह उससे काम ले रहा है)। सीस० = (जो बाँटे पड़ा उसे) शिरोधार्य किया। मन० = जो मन में भाए, रुचे। तिहारियै० = मैं जीती हूँ तो बस आप की चर्चा करके ही जीती हूँ। चाड़ = प्रबल इच्छा, उत्कंठा। नित० = आप को तो मेरी उत्कंठा है नहीं, पर मैं आप की निरंतर मंगल-कामना करती हूँ।

घनआनँद यौं अपनाय तजी इन सोचनि ही मन मूझि परै।
दिन-रैन सुजान-बियोग के बान सहै जिय पापी न जूझि परै ॥६९॥

कवित्त

एरे बीर पौन! तेरो सबै ओर गौन, बीरी*
तो सो और कौन, मनैं ढरकौंहीं बानि दै।
जगत के प्रान, ओछे बड़े सों समान घन-
आनँद-निधान, सुखदान दुखियानि दै।
जान उजियारे गुन-भारे अंत मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहचानि दै।
बिरह-बिथाहि मूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायन की हाहा! नेकु आनि दै ॥७०॥

---

[६९] बधिकौ० = सुना है कि बधिक भी मारकर मरे की सुध लेता है. पर आप की चाल तो किसी प्रकार भी समझ में नहीं आती। आवरी = व्याकुल। मति० = बुद्धि व्याकुल और बावली होकर स्तब्ध हो जाती है, उसे किसी प्रकार भी कोई उपाय नहीं सूझता। मन० = मन मुरझा जाता है। यौं अपनाय० = आप ने जो इस प्रकार अपनाकर त्याग दिया, इसी सोच में मन शिथिल पडता जाता है। न जूझि० = जूझ नहीं पडता, मर नहीं जाता। दिन-रैन० = मेरा जी सुजान के वियोग-बाण सहता है, पर यह पापी मर नहीं मिटता।

[७०] बीर = भाई। गौन = गमन। बीरी = बीड़ा उठानेवाला, किसी कार्य को संपन्न करने में उत्साह दिखानेवाला। मनै० = अपने मन को ढलनेवाली टेव सिखा, मन दूसरों पर द्रवीभूत कर। जगत० = तू संसार का प्राण ही है। ओछे० = छोटे और बड़े सब के लिए तू समान है, तू सब पर समान दृष्टि रखता है। घन० = घने आनंद के पात्र। सुखदान० = दुखियों को सुख का दान दे, उन्हें सुखी कर। उजियारे = कांतिमान्। गुन-भारे = भारी गुणी। अंत = अन्यत्र। पीठि० = एक बार पहचानकर फिर पीठ दे बैठे हैं, परिचय करके विमुख हो गए हैं [अथवा मेरी पहचान को ही पीठ दे बैठे हैं, मेरे प्रेम

* बारी, बारि।

एकै आस एकै बिसवास प्रान गहैं बास,
और पहचानि इन्हैं रही काहू सौं न है।
चातिक लौं चाहै घनआनँद तिहारी ओर,
आठौ जाम नाम लै, बिसारि दीनी मौन है।
जीवन-अधार जान सुनियै पुकार नेकु,
अनाकानी दैबो दैया घाय कैसो लौन है।
नेह-निधि प्यारे गुन-भारे ह्वै न रूखे हूजै,
ऐसो तुम करौ तौ बिचारन कैं कौन है ॥ ७१ ॥

सवैया

रंग लियौ अबलानि के अंग तें,च्वाय कियौ चित चैन को चोवा।
और सबै सुख सौंधे सकेलि मचाय दियौ घनआनँद ढोवा।

को ही भुला बैठे हैं]। बिरह० = विरह की पीड़ा को दूर करनेवाली संजीवनी बूटी। आँखिन० = आँखों में लगाऊँ। नेकु० = थोड़ी सी लाकर मुझे दे।

[७१] गहैं० = स्थान पाते हैं, ठहरे रह सकते हैं। और० = और किसी से तो इनकी कोई पहचान रह ही नहीं गई। आठौ० = अर्थात् दिनरात, निरंतर। बिसारि० = मौन रहना छोड़ दिया है। अनाकानी = मेरी पुकार सुनने में आनाकानी करना। घाय० = घाव पर नमक की भाँति कष्टदायक है। नेह = प्रेम, तेल। निधि = समुद्र। गुन-भारे = भारी गुणी। रूखे = उदास; रूक्ष। चिकनाहट से रहित। बिचारन० = इन बेचारे चातकों के लिए और कौन सहारा रह गया है।

[७२] इसमें विरह को फाग बतलाया गया है। रंग० = अबलाओं के शरीर से रंग लिया (वे विरह में विवर्ण हो गईं)। च्वाय = चुलाकर, टपकाकर। चोवा = चंदनादि सुगंधित पदार्थों को गरम करके भभके की विधि द्वारा उनसे जो विशिष्ट सुगंध द्रव्य निकाला जाता है उसे चोआ कहते हैं। च्वाय = उनके चित्त के चैन को (विरह की गरमी द्वारा) टपकाकर चोआ बनाया। सुख० = सुखरूपी सुगंधित द्रव्य। सौंधे = सुगंधित पदार्थ। सकेलि = एकत्र करके। ढोवा = ढुलाई, ढोने की क्रिया। मचाय० = आनंद की ढुलाई मचा दी, आनंद का पूरा साज-सामान किया। आनंद की और भी सामग्री

प्रान-अबीरहि फेंट भरे अति छाक्यौ फिरै, मति की गति खोवा।
स्याम सुजान बिना सजनी! ब्रज यौं बिरहा भयौ फाग बिगोवा ॥७२॥

कवित्त

पीरी परि देह छीनी राजति सनेह-भीनी,
कीनी है अनंग अंग अंग रंग-बोरी सी।
नैन पिचकारी ज्यौं चल्यौई करैं दिन-रैन,
बगराए बारनि फिरति झकझोरी सी।
कहाँ लौं बखानौं घनआनँद दुहेली दसा,
फागमई भई जान प्यारे वह भोरी सी।
निहारे निहारे बिन प्रानन करति होरा,
बिरह-अँगार निमगारि हिय होरी सी ॥ ७२ ॥
कहाँ एतो पानिप बिचारी पिचकारी धरै,
आँसू-नदी नैननि उमगियै रहति है।

[illegible] की है। प्रान० = प्राणरूपी अबीर फेंट में भरे हुए, [illegible] के लिए लेकर। अति० = अत्यंत नशे में चूर होकर [illegible]) घूम रहा है। मति० = बुद्धि की गति खोकर, बुद्धि [illegible]। बिगोवा = [illegible], बुरा।

[७३] छीनी = क्षीण। सनेह० = प्रेम से युक्त। कीनी है० = काम ने [illegible] रंग से [illegible] की व्यवस्था की है। नैन० = नेत्र रातदिन [illegible] भाँति चलते ही रहते हैं। बगराए० = विरहिणी जो [illegible] होता है मानों होली में झकझोर [illegible]। दुहेली = दुःखपूर्ण। निहारे बिन = बिना [illegible], [illegible] में भुना हुआ अनाज का हरा पौधा। [illegible]। बिरह० = विरह के अंगारों से हृदय में [illegible]।

[७४] [illegible] = [illegible]। [illegible] = पीलेपन की रंगत। [illegible] = [illegible]। गात० = शरीर में छाई रहती है। [illegible]। [illegible] = वसंत के आने का [illegible]

कहाँ ऐसी राँचनि हरदि केसू केसरि मैं,
जैसी पियराई गात पगियै रहति है।
चाँचरि-चोपहू सु तौ औसर ही माचति, पै
चिंता की चहल चित्त लगियै रहति है।
तपति-बुझावनि अनंदघन जान बिन,
होरी सी हमारे हियेँ लगियै रहति है ॥ ७४ ॥

दसन-वसन ओली भरियै रहै गुलाल,
हँसनि-लसनि त्यौँ कपूर सरस्यौ करै।
साँसनि सुगंध सोँधे कोरिक समोय धरे,
अंग अंग रूप रंग-रस बरस्यौ करै।
जान प्यारी ! तो तन अनंदघन-हित नित,
अमित सुहाग-राग, फाग दरस्यौ करै।
इते पै नवेली लाज अरस्यौ करै जु, प्यारो
मन फगुवा दै, गारी हू कौँ तरस्यौ करै ॥ ७५ ॥

भी होली के अवसर पर ही होता है। चिंता = किंतु चिंता की चहल-पहल चित्त मेँ सदा होती रहती है। तपति० = विरह की तपन बुझानेवाली।

[७५] दसन० = दाँत के वस्त्र, रदच्छद, होँठ। ओली = झोली (मेँ)। भरियै० = गुलाल भरा ही रहता है, ललाई छाई रहती है। हँसनि० = हँसने की छटा। सरस्यौ० = छाया रहता है, सुगंध फैलाता रहता है। साँसनि = (सुगंधित) साँसोँ द्वारा। सोँधे = सुगंधित द्रव्य। कोरिक = करोड़ोँ। समोय० = सुबासित कर रखे हैँ। साँसनि······धरे = साँसोँ की सुगंध से करोड़ोँ द्रव्योँ को सुवासित करके सुगंधित बना रखा है। अंग० = प्रत्येक अंग के सौंदर्य से रंग का रस बरसता है। प्रत्येक अंग के रंग (वर्ण) से होली का रंग बरसता रहता है। तो तन = तेरे शरीर मेँ। हित = निमित्त। राग = ललाई ; गाना। फाग = होली के गाने। अमित० = अत्यंत सौभाग्य ही फाग के राग की भाँति दिखाई पड़ता है [या अत्यंत सौभाग्य (मंगल-बिंदु) फाग की ललाई की भाँति छाया जान पड़ता है]। अरस्यौ० = आलस्य करती है, बाधा डालती है, खुलकर मिलने नहीँ देती। फगुवा = होली के त्योहार का उपहार। इते पै० = इतने पर भी

सवैया

घर ही घर चौचँद-चाँचरि दै, वहु भाँतिन रंग रचाय रह्यौ।
भरि नैन हियैं हरि सूझि सम्हार सबै करि नाक नचाय रह्यौ।
घनआनँद पै व्रज-गोरिनि कौं नख त सिख लौं चरचाय रह्यौ।
लखि सूनो सकै कित, रावरो ह्वै, विरहा नित फाग मचाय रह्यौ ॥७६॥

फागुन महीना की कही ना परैं वातैं दिन-
रातैं जैसें वीतत सुनें तें डफ-घोर कौं।
कोऊ उठै तान गाय, प्रान वान पैठि जाय
हाय चित-वीच, पै न पाऊँ चितचोर कौं।
मची है चुहल चहूँ दिसि चोप-चाँचरि सौं,
कासौं कहौं सहौं हौं वियोग-झकझोर कौं।
मेरो मन आली वा विसाली वनमाली विन,
वावरे लौं दौरि दौरि परै सव ओर कौं ॥ ७७ ॥

तेरी लज्जा ऐसी बाधा डालती है कि प्रिय अपना मन होली के उपहार में देकर भी गाली तक के लिए लालायित रहता है, तेरी लज्जा—उससे और बातें करना तो दूर—होली की गाली भी नहीं देने देती। उसने तो मन दे डाला और तू दो गालियाँ भी नहीं देती।

[७६] चौचँद = बदनामी। चाँचरि = होली का राग। रंग = विनोद-तमाशे; रंग (लाल, पीला आदि)। भरि० = नेत्र और हृदय को भरकर, नेत्र को आँसू से हृदय को व्यथा से। हरि० = सूझ (नेत्रों से) और सम्हाल या होश (हृदय से) हटकर। सबै० = सब को नाक के बल नचा रहा है। चरचाय० = (रंग या कीचड़) से सिर से पैर तक भर दिया है। लखि० = आप का होकर विरह सूना नहीं देख सकता, कुछ न कुछ-खेल-तमाशे किया ही करता है।

[७७] कही० = कही नहीं जा सकतीं। सुने तें० = डफ का गंभीर शब्द सुनकर। प्रान० = (तब) प्राणों में बाण से चुभने लगते हैं, तान से हृदय में पीड़ा होती है। चित० = (प्रिय) है तो चित्त ही में, पर उसे पाती नहीं। चुहल = विनोद। चोप० = चाँचर का उत्साह। बनमाली = श्रीकृष्ण; प्रिय।

सवैया

सौंधे की बास उसासहि रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को।
नैननि बैरी सो है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही को।
राग विराग धमार त्यौं धारि सी, लौटि पर्यौ ढँग यौं सब ही को।
रंग-रचावन जान बिना घनआनँद लागत फागुन फीको ॥७८॥

सुनि री सजनी! रजनी की कथा इन नैन-चकोरन ज्यौं बितई।
मुख-चंद सुजान सजीवन को लखि पाएँ भई कछु रीति नई।
अभिलाषनि आतुरताई-घटा तब ही घनआनँद आनि छई।
सु बिहात न जानि परी भ्रम सी कब ह्वै बिसवासिनि बीति गई ॥७९॥

मन जैसें कछु तुम्हें चाहत है सु बखानियै कैसें सुजान ही हौ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगियै नित लौ।

---

[७८] सौंधे० = सुगंधित पदार्थों की गंध। उसास = (उच्छ्वास) साँस। सौंधे की० = सुगंध से तो साँस ही रुक जाती है। गाहक = ग्राहक, लेनेवाला। नैननि० = गुलाल नेत्रों के लिए बैरी है, गुलाल देखकर नेत्रों को कष्ट होता है। अबीर० = अबीर का उड़ना देखकर हृदय का धैर्य जाता रहता है। राग० = (चर्चरी के) गान विराग (उदासी) उत्पन्न करनेवाले हो रहे हैं। धमार = होली के गीत। धार = तलवार की धार सा दुःखद। लौटि० = सब का रंग-ढंग पलट गया है। रंग = आनंद ; रंग। रंग० = रंग से रँगनेवाले।

[७९] बितई = (रात्रि) बिताई। लखि० = देख पड़ने पर। नई = विलक्षण। अभिलाषनि = अभिलाषों के कारण, उत्कंठा से। आतुरताई० = व्याकुलता, हड़बड़ी की। बिहात = बीतती हुई। बिसवासिनि = (रात के लिए विशेषण) विश्वासघातिनी। भ्रम सी० = रात्रि की प्रतीति नहीं हुई, उसका भ्रम सा हुआ। कब ह्वै = कितने समय में, किस क्षण।

[८०] बखानियै० = उसका किस प्रकार वर्णन करूँ। सुजान० = (क्योंकि) आप स्वतः चतुर हैं (इसे समझ सकते हैं)। गति० = आप ही इन प्राणों के लिए शरण हैं। लौ = लगन, प्रेम। अंतर = मन। बुद्धि० = बुद्धि, स्मृति, नेत्र और वचनों में क्रमपूर्वक निवास करता हुआ मन अब चला गया है (पहले आप के प्रेम की बात बुद्धि से सोची, फिर स्मरण की, तदनंतर

बुधि औ सुधि नैननि वैननि मैं करि वास निरंतर अंतर गौ।
उघरौ जग छाय रहे घनआनँद चातिक त्यौं तकियै अब तौ ॥८०॥
लगियै रहै लालसा देखन की किहि भाँति भटू निस-द्यौस कटै।
करि भीर भरी यह पीर महा बिरहा तनकौ हिय तें न हटै।
घनआनँद जान-सँजोग-समै, बिसमै बुधि एकहि बेर बटै।
सपनो सो टरै, फिरि सौ गुनो चेटक बाढ़त डाढ़त घोटि घटै ॥८१॥
अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥८२॥

नेत्रों में आप को बसाया, वाणी से आप का गुण गाती रही) पर अब बेमन हो गई हूँ। उघरौ० = संसार हट गया। छाय० = हे आनंद के घन, केवल आप ही छाए हुए हैं। त्यौं = समान। चातकि० = अब तो चातक की भाँति आप का ही आसरा-भरोसा रह गया है। उघरौ...अब तौ = मन में आप के समा जाने से मेरी सारी वृत्तियाँ संसार से हट गईं। अतः अब जगत् मेरे सामने रह ही नहीं गया, केवल आप ही आप रह गए हैं (विरोध)। यह छंद ब्रह्म और जीव के पक्ष का भी आभास दे रहा है।

[८१] भटू = हे सखी। कटै = बीते। भीर = संकट। करि० = इस विरह-वेदना ने अनेक संकटों में डाल दिया है। तनकौ = थोड़ा भी। समै = समय। बिसमै = विस्मय में, आश्चर्य में; विषम ही। एक ही बेर = एकबारगी। बटै = उलझ जाती है। बिसमै० = बुद्धि एकबारगी आश्चर्य में लीन हो जाती है, अचरज में पड जाती है। सपनो० = जैसे स्वप्न आते और तुरंत निकल जाते हैं। चेटक = जादू, माया। डाढत = जलाता है। घटै = शरीर को। घोटि० = शरीर को घोंट डालता है। सपनो० = उनके संयोग का समय इतनी शीघ्रता से बीत जाता है, जैसे स्वप्न। फिर सौगुनी (अत्यधिक) माया बढती है, जो जलाने लगती है और शरीर को घोंट डालती है।

[८२] सूधो = सीधा, सरल, ऋजु। सयानप = चतुराई। बाँक = वक्र, टेढ़ा। जहाँ = इसमें टेढी चतुराई थोड़ी भी नहीं है, इसमें कुटिलता का नाम

कवित्त

करुवो मधुर लागै वाको विष अंग भएँ,
याहि देखें रस हू मैं कटुता वसति है।
वाकें एक मुख ही तें वाढ़त विकार तन,
यह सरवंग आनि प्राननि गसति है।
सुंदर सुजान जू सजीवन तिहारो ध्यान,
तासौं कोटि गुनी ह्वै लहरि सरसति है।
पापिनि डरारी भारी साँपिनि निसा विसारी,
वैरिनि अनोखी मोहिँ डाहनि डसति है॥ ८३॥

भी नहीँ। साँचे = सच्चे लोग। आपनपौ = अपनत्व। झझकैं = हिचकते हैं। निसाँक = निःशंक। एक तें० = एक रेखा जो पहले खिंच गई उसके अतिरिक्त दूसरी रेखा खिंच नहीँ सकती। प्रेम की जो टेक पकडी सो पकडी। पाटी = पट्टी। तुम० = आप ने न जाने कैसी पट्टी पढी है, न जाने कैसी शिक्षा पाई है। मन = हृदय; ४० सेर। छटाँक = थोडा; सेर का सोलहवाँ भाग। छटाँक को उलटकर पढने से 'कटाछ' (कटाक्ष) भी होता है [या छटा + अंक = शोभा की झलक]। इसमेँ परिवृत्ति अलंकार है।

[८३] इसमेँ रात्रि नागिन से वढकर बताई गई है। वाको = नागिन का। अंग० = शरीर में प्रविष्ट होने से। याहि = रात्रि को। रस हू = रसीले पदार्थों मेँ, सुखद वस्तुओँ मेँ भी। कटुता० = कड़वे लगते हैँ, बुरे या दुःखद प्रतीत होते हैँ। करुवो० = साँप काटनेवाले का कड़वी वस्तुएँ मीठी लगती हैँ। वाके = नागिन के। विकार = दोष (विष का)। यह = रात्रि। सरवंग = सर्वांग से, सब अंगोँ से। आनि = आकर। गसति० = गँस लेती है, भली भाँति पकड लेती है, धँस जाती है। सजीवन० = यद्यपि आप का ध्यान सजीवन है (जिलानेवाला है फिर भी)। लहरि = विष का दौरा। सरसति० = वढती है। डरारी = डरावनी, भयंकर। विसारी = विषैली। डाहनि = दूसरोँ की ईर्ष्या से, होड़ लगाकर। डसति० = काटती है। डाहनि० = रात्रि नागिन से वढ जाना चाहती है, इसलिए उसकी होड़ लगाकर मुझे भली भाँति डसती है।

कारी कूर कोकिला! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।
पैंड़े परे पापी ये कलापी निसद्यौस ज्यौं ही,
चातक! घातक त्यौं ही तूहू कान फोरि लै।
आनँद के घन प्रान-जीवन सुजान विना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।
जौ लौं करैं आवन बिनोद-बरसावन वे,
तौ लौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै॥ ८४॥

सवैया

वैरी वियोग की हूकनि जारत, कूकि उठै अचकाँ अधरातक।
बेधत प्रान, विना ही कमान सु बान से बोल सों, कान ह्वै घातक।
सोचनि ही पचियै बचियै कित, डोलत मो तन लाएँ महा तक।
वे घनआनँद जाय छए उत, पैंड़े पर्यौ इत पातकी चातक॥८५॥

कवित्त

अंतर मै वासी पै प्रवासी को सो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहै।

---

[८४] बैर काढ़ना = शत्रुता का बदला लेना। किन० = खोद खोदकर निकाल क्यों न ले। पैंड़े० = पीछे पड़े हैं। कलापी = मोर। घेरौ = घेरनेवाला। दल = सेना। विनोद० = अर्थात् सुख देनेवाले। डरारे = डरावने, भयंकर। बजमारे = वज्र मारनेवाला; वज्र का मारा हुआ, जो वज्र मारने पर भी न मरे (स्त्रियों की गाली), दुष्ट। घोरि० = गरज ले।

[८५] वैरी = यह वैरी चातक। कूकि० = जब बोल उठता है। हूकनि = पीड़ा से। अचकाँ = अचानक। अधरातक = आधी रात के समय। कमान = धनुष। से = समान। कान ह्वै = कान की ओर से (कान को अपनी वाणी सुनाकर)। पचियै = हैरान होती हूँ। बचियै० = बचूँ भी तो कैसे बचूँ। मो तन = मेरी ओर। तक = टक, टकटकी। लाएँ० = एकदम टकटकी लगाए हुए। पैंड़े० = पीछे पड़ गया है।

लोचननि तारे ह्वै सुझावौ सब सूझौ नाहिं,
बूझी न परति, ऐसें सोचनि कहा दहौ।
हौ तौ जानराय, जाने जाहु न अजान यातें,
आनँद के घन छाय छाय उघरे रहौ।
मूरति मया की हाहा सूरति दिखैयै नेकु,
हमैं खोय या बिधि हो कौन धौं लहा लहौ ॥ ८६ ॥

सवैया

कित को ढरि गौ वह ढार अहो जिहि मो तन आँखिन ढोरत हे।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सों आनि निहोरत हे।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ तब यों सब भाँतिन भोरत हे।
मन माहिं जौ तोरन ही, तौ कहौ बिसवासी सनेह क्यों जोरत हे ॥८७॥

---

[८६] अंतर = मन। प्रवासी = परदेश में बसा हुआ। अंतर = दूरी, फासला। आपनीयौ = अपनी भी। लोचननि० = नेत्रों को पुतलियाँ द्वारा सब कुछ दिखाया, पर आप नहीं दिखाई पड़े। बूझी० = समझ में नहीं आता। ऐसें० = इस प्रकार चिंता से क्यों जलाते हो। जानराय = सुजान ; ज्ञात। अजान = ज्ञानहीन ; अज्ञात। छाया० = छाया करके, कृपा करके ; संसार का मायाजाल फैलाकर। उघरे० = खुले रहते हो; पृथक् रहते हैं। मया = प्रेम। हमैं० = हमें खोकर, हमारा जीवन नष्ट करके ; अपनी खोज में भटकाकर। लहा = लाभ, प्राप्ति। यह छंद जीव और ब्रह्म के पक्ष में भी लगता है।

[८७] ढार = ढलना, ढलाव। कित को० = आप का वह ढलना (झुकाव) कहाँ जा ढला। जिहि० = जिसके कारण मेरी ओर अपनी आँखें ढुलकाते थे, मुझ पर कृपादृष्टि करते थे। अरसानि = आलस्य। अरसानि० = आप की उस बान (स्वभाव) ने आलस्य क्यों ग्रहण कर लिया, आप उस प्रकार मेरी ओर क्यों नहीं झुकते। सरसानि० = सरसतापूर्वक। आनि = आकर। निहोरत हे = अनुरोध करते थे। सरसानि० = जिससे (बान के कारण) आप सरसता के साथ आकर मेरी विनती किया करते थे। भोरत हे = ठगते थे, भुलावा देते थे। तोरन ही = (प्रेम) तोड़ने की ही ठान ठान ली थी। बिसवासी = विश्वासघाती। सनेह० = तो तब प्रेम का संबंध क्यों जोड़ रहे थे।

घनआनँद प्यारे सुजान! सुनौ जिहि भाँतिन हौं दुख-सूल सहौं।
नहिं आवनि-औधि, न रावरी आस, इते पर एक सा वाट चहौं।
यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ ऊतर कौन कहौं।
जिय नेकु विचारि कै देहु बताय हहा पिय! दूरि तें पाय गहौं ॥८८॥

विरहा-रबि सों घट-व्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवैं इकली* छतियाँ।
हिय-सागर तें दृग-मेघ भरे उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ॥
घनआनँद जान अनोखी दसा, न लखौं दई कैसें लिखौं पतियाँ।
नित सावन डीठि सु बैठक मैं टपकैं बरुनी तिहि ओलतियाँ ॥८९॥

इत भायनि भाँवरे भौंर भरैं, उत चायनि चाहि चकोर चकैं।
निसिवासर फूलनि, भूलनि मैं अति, रूप की बात न ब्यौरि सकैं।

---

[८८] नहिं० = न तो आने की अवधि ही निश्चित है और न आप से ऐसी आशा है कि आ ही जायँगे। इते० = इतने पर भी एकतार आप का रास्ता-देखती रहती हूँ। अकारन० = बिना कारण जो मैं आप का मार्ग देखती रहती हूँ। उसे देखकर यदि कोई पूछे कि तू क्यों उनकी प्रतीक्षा कर रही है तो मैं क्या उत्तर दूँ (आप यही बता दें)। दूरि तें = इतनी दूर से। आप निकट नहीं आते इसलिए दूर ही से प्रणाम कर रही हूँ।

[८९] बिरहा० = विरहरूपी सूर्य से शरीररूपी आकाश तप गया है। खिवैं = चमकती हैं। इकली = अकेली [अथवा इक लौं = एक ही ढंग से, लगातार, निरंतर]। हिय० = हृदयरूपी समुद्र से नेत्ररूपी बादल (पानी-रूपी आँसू) भरकर। उघरे = खुले, खुलकर। न लखौं = कुछ सूझता ही नहीं। नित० = मेरे लिए नित ही सावन है। दीठि० = दृष्टिरूपी (प्रिय की) बैठक में। टपकैं० = बरौनियाँ ओलती की भाँति टपकती रहती हैं।

[९०] इत = एक ओर तो (मुख को कमल जानकर)। भायनि = भावों से भरकर। भाँवरे० = भौंरों की भाँति (भौंरे होकर) चक्कर काटते हैं। उत = दूसरी ओर (उसे चंद्रमा समझकर)। चायनि = चाव के साथ। चाहि = देखकर। चकोर = चकोरों की भाँति (चकोर बनकर) चकित होते हैं।

* इक लौं।

घनआनँद घूँघट-ओट भए तब बावरे लौं चहुँ ओर तकैं।
पिय के मुख कौतुक देखि सखी ! निज नैन विसेष सुजान छकैं ॥९०॥

कवित्त

मोहन अनूप रूप सुंदर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह की।
अनोखी हिलग दैया ! बिछुरै तौ मिल्यौ चाहै,
मिले हू मैं मारै जारै, खरक बिछोह की।
कैसें धरौं धीर वीर ! अति ही असाधि पीर,
जतन ही रोग याहि नीकें करि टोह की।
देखैं अनदेखै तहाँ अटक्यौ अनंदघन,
ऐसी गति कहौ कहा चुंबक औ लोह की ॥ ९१ ॥

निसि० = रात मैं फूलना और दिन में प्रभापूर्ण रहना, कमल तो दिन मैं ही फूलता है, पर प्रिय का मुखकमल रात मैं भी फूला रहता है, चंद्रमा रात मैं ही प्रभापूर्ण रहता है, पर प्रिय का मुखचंद्र दिन मैं भी प्रभापूर्ण रहता है। भूलनि = छटा पर मुग्ध होना। रूप = सौंदर्य। ब्यौरि सकैं = निर्णय नहीं कर पाते (कि आप के मुख को कमल मानैं या चंद्र)। घूँघट-ओट० = (जब तक घूँघट के बाहर रहते हैं तब तक तो संशय मैं पड़े रहते हैं और जब) घूँघट मैं छिप जाते हैं तो नेत्र पागलों की भाँति चारो ओर देखने लगते हैं (कि प्रिय का मुख कहाँ गया)। कौतुक = खेल। सुजान = सावधान। प्रिय० = प्रिय के मुख मैं यह कौतुक देखकर हे सखी ! मेरे अत्यंत सावधान नेत्र भी चक्कर मैं पड़ जाते हैं।

[९१] ताहि = उस रूप को। चाहि = देखकर। मन० = मन महा मोह की दशा से मोहित होता है, मन को महा मोह की दशा प्राप्त होती है। हिलग = लगन, चाह, परचना। बिछुरै० = वियोग मैं मिलने की उत्कंठा रहती है। मिले हू = संयोग होने पर भी। खरक = खटका, आशंका। खरक० = संयोग मैं वियोग होने की आशंका बनी रहती है। वीर = हे सखी। असाधि = असाध्य। जतन० = इसके लिए यत्न ही रोग हो रहे हैं, यत्नों से रोग बढ़ता है। टोह = खोज, विचार। याहि० = इसकी खोज भली भाँति कर ली है। देखैं = देखने पर भो। कहा = कहाँ दिखाई देती है।

सवैया

क्यौँ हूँ न चैन परै, दिनरैन सु पैँड़े पर्यौ बिरहा बजमारो।
ज्यौ बहरै न कहूँ छिन एक हू, चाहै सुजान सजीवन प्यारो॥
ऐसी बढ़ी घनआनँद बेदनि दैया उपाय तें आवै तँवारो।
हौँ ही भरौँ अकली, कहौँ कौन सोँ, जा बिध होत है साँझ सबारो॥९२॥

कवित्त

जोई रात प्यारे-संग बातन न जात जानी,
सोई अब कहाँ तें बढ़नि लियें आई है।
जोई दिन कंत-साथ जीवन को फल लाग्यो,
सोई बिन अंत देत अंतक दुहाई है।
इनकी तौ रहौ, मेरे अंग अंग औरै भए,
सूखी सुख-लता झालरति मुरझाई है।
आली ! घनआनँद सुजान सौँ बिछुरि परें,
आपौ न मिलत महा बिपरीति छाई है॥ ९३॥

सवैया

जिन आँखिन रूप-चिन्हारि भई तिनकी नित नीँद ही जागनि है।
हित-पीर सोँ पूरित जो हियरा, फिरि ताहि कहौ कहा लागनि है।

---

[९२] क्यौँ हूँ = किसी प्रकार भी। पैँड़े पर्यौ० = पीछे पड़ गया है। ज्यौ = जी, मन। बहरै न = बहलता नहीँ। बेदनि = वेदना। उपाय० = (उसे दूर करने का उपाय) करने से। तँवारो = मूर्छा। हौँ ही० = मैँ ही अकेले दिन काट रही हूँ। सबारो = सबेरा।

[९३] न जात० = जिसकी लंबाई का पता नहीँ चलता था। बढनि = बाढ। जीवन० = जीवन के फल सा जान पड़ता था। बिन० = समाप्त न होकर। अंतक = यम। देत० = यमराज की दुहाई दे रहा है, मारे डाल रहा है। इनकी० = दिन और रात की बात तो एक ओर रहे। झालरति = झलराते ही, लहलही होते ही। आपौ = अपनापन ; आप (जल)।

[९४] रूप० = रूप का परिचय मिला। नीँद० = जगना भी सोना ही है। उन आँखोँ को बंद ही किए रहना पड़ता है। हित-पीर = प्रेम की पीड़ा।

घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ जियराहि सदा दुख-दागनि है।
सुखमै मुखचंद बिना निरखें नख तें सिख लौं बिष-पागनि है ॥९४॥

कवित्त

घर बन बीथिन मैं जित तित तुम्हैं देखौं,
इते हू पै जान! भई नई बिरहामई।
बिषम उदेग-आगि लपटें अँतर लागे,
कैसे कहौं जैसें कछू तचनि महा तई।
फूटि फटि टूक टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियो,
बचिबो अचंभो, मीचौ निदर करै गई।
आनँद के घन लखे अनलखें दुहूँ ओर,
दईमारी हारी हम आप हौ निरदई ॥ ९५ ॥

सवैया

बिरच्यौ किहि दोष न जानि सकौं, जु गयौ मन मो तजि रोषन तैं।
जिय ता बिन यौं अब आतुर क्यौं, तब तौ तनकौ बिरमायौ न तैं।
घनआनँद जान अमोही महा अपनाय इते पर त्यागि हतैं।
अधबीच पर्यौ दुख-ज्वाल जरै सठ! को सुख कौं हठि द्वार दतैं ॥९६॥

लागनि = लगना, ठहरना। दागनि = जलना। सुखमै = सुखमय। बिष० = विष में लिपट जाना।

[९५] बीथी = गली। उदेग = (उद्वेग) घबराहट। अँतर = हृदय। तचनि = ताप। तई = तपी। टूक = टुकडा। मीचौ = मृत्यु भी। निदर० = निरादर करके चली गई, मृत्यु ने भी त्याग दिया (बच जाना अचरज की बात थी, पर मृत्यु भी छोड़कर चली गई, मरने से भी बढकर कष्ट है)। दुहूँ० = दोनों प्रकार से। दईमारी = दैव की मारी, हतभाग्य। हारी = हैरान हूँ। निर-दई = निर्दय, दयाहीन ; निर + दई, दैव के शासन से परे।

[९६] बिरच्यौ = (तन से) विरक्त या उदास हो गया। किहि० = किस दोष (अपराध) के कारण। रोषन० = क्रुद्ध होकर। ता बिन = प्रिय के बिना। आतुर = व्याकुल। तनकौ = थोड़ा भी। बिरमायौ० = उसे रोका नहीं। त्यागि = त्यागकर मारे डालते हैं। सठ = ऐ दुष्ट मन। को सुख० = किस सुख

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
ताही के चारु चरित्र बिचित्रनि यौँ पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ।
ऐसो हियो-हित-पत्र पवित्र जु आन-कथा न कहूँ अवरेख्यौ।
सो घनआनँद जान, अजान लौँ टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ ॥९७॥
जीव की बात जनाइयै क्यौँ करि जान कहाय अजाननि आगौ।
तीरनि मारि कै पीर न पावत एक सो मानत रोइबो रागौ।
ऐसी बनी घनआनँद आनि जु आन न सूझत, सो किन त्यागौ।
प्रान मरैँगे, भरैँगे बिथा, पै अमोही सोँ काहू को मोह न लागौ ॥९८॥
तोहि तौ खेल, पै मो हिय सेल सो, एरे अमोही बिछोह महा दुख।
जाहि जु लागै सु ताहि सहैगो, पै क्यौँ न पर्यौ लहि तू तौ सदा सुख।
एक ही टेक, न दूसरी जानति, जीवन-प्रान सुजान लियेँ रुख।
ऐसी सुहाय तौ मेरो कहा बस, देखिहौँ पीठि, दुरायहौ जौ मुख ॥९९॥

के लिए। हठि० = हठपूर्वक उनके द्वार में (किस सुख के लिए) चिपके रहें।

[९७] पन = प्रतिज्ञा। जा मधि = जिस हृदयरूपी पत्र में। सोधि = शुद्ध करके। सुधारि = भली भाँति। लेख्यौ = लिखा है। पचि कै = हैरान होकर, बड़ा कष्ट सहकर। ताहि० = उसी प्रिय के सुंदर और विचित्र चरित्रों द्वारा बड़े परिश्रम से यह बनाया गया है। हियो० = हृदयरूपी प्रेमपत्र। आन = अन्य। न अवरेख्यौ = नहीं अंकित की। आन-कथा = किसी दूसरे की बात इसमें कहीं भी अंकित नहीं है।

[९८] जीव = मन। जान = सुजान; ज्ञानवान्। आगौ = आगे, अग्रगण्य, बढ़कर। जीव की० = मन की बात उससे कैसे कही जाय जो सुजान होते हुए भी अजानों से बढ़कर होता जा रहा हो। तीरनि = बाणों से। पीर० = पीड़ा का अनुभव नहीं करता, दया नहीं करता। एक सो = समान। रागौ = गाना। ऐसी० = ऐसी अवस्था हो गई है। जु = जो, कि। आन० = दूसरा सूझता ही नहीं, किसी दूसरे की ओर झुकाव होता ही नहीं। सो० = वह चाहे छोड़ ही क्यों न दे। भरैँगे० = व्यथा में दिन काटेंगे। न लागौ = न लगे, न हो।

[९९] सेल = बरछा। तोहि० = तुझे तो खेल जान पड़ता है पर मेरे लिए वही बरछे की भाँति कष्टदायक है। जाहि० = जिस पर जो पड़ेगी उसे वह

छप्पय

महौ-दूध सम गनै, हंस-चक-भेद न जानै।
कोकिल-काक न ज्ञान, काँच-मनि एक प्रमानै।
चंदन-ढाक समान, राँग-रूपौ सम तोलै।
बिन बिवेक गुन-दोष, मूढ़-कबि ब्यौरि न बोलै।
प्रेम-नेम, हित-चतुरई, जे न बिचारत नेकु मन।
सपने हूँ न बिलंबियै, छिन तिन ढिग आनंदघन ॥१००॥

कहियै काहि जताय हाय जो मो मधि बीतै।
जरनि बुझौं, दुख-जाल धकौं, निसिबासर ही तै।
दुसह सुजान-बियोग बसौं ताही सँजोग नित।
बहरि परै नहिं समै, गमै जियरा जित को तित।
अहो दई-रचना निरखि, रीझि खीझि मुरझौ सु मन।
ऐसी बिरचि बिरंचि को कहा सरयौ आनंदघन ॥ १०१ ॥

सहैगा। पै क्यौं० = तू पड़ा हुआ नित्य सुख क्यों नहीं प्राप्त करता। लियें० = प्रिय की ओर प्रवृत्त होकर। दुरायहौ = छिपा लोगे।

[१००] महौ = मट्ठा। चक = बगुला। एक = एक सा, समान। प्रमानै = समझे। ढाक = पलाश (निर्गंध)। राँग = राँगा। रूपौ = चाँदी। बिन० = बिना विचार किए। कबि = पंडित। ब्यौरि = निर्णय करके। नेम = नियम। हित = अनुराग। चतुरई = चतुरता। नेकु = थोड़ा भी। न बिलंबियै = ठहरना न चाहिए। ढिग = पास।

[१०१] काहि = किसको। मो० = मेरे मन में। जरनि० = जलन से बुझती हूँ, ज्यों ज्यों ज्वाला बढती है शिथिल पड़ती जाती हूँ। धकौं = प्रज्वलित होती हूँ, तपती हूँ। दुसह० = असह्य सुजान के वियोग के ही संयोग में सदा रहती हूँ। बहरि० = समय किसी प्रकार कटता नहीं, समय निकलता नहीं। गमै० = चित इधर उधर भटकता ही रहता है। रीझि = संयोग में प्रिय के रूप पर मुग्ध होकर। खीझि = वियोग में विरह-दुख से व्याकुल होकर। मुरझौ० = शिथिल पड़ गया। बिरंचि = ब्रह्मा, ईश्वर। सरयौ० = काम निकला, क्या लाभ हुआ।

सवैया

प्यार को सो सपनो हँसि हेरनि ऐसी चितौनि कहौ कहाँ पाई।
वंक महा विप-भोवन प्रान सुधाई-सनी मुसक्यानि-सुधाई।
यौँ घनआनँद चेटक मूरति लै जब अंतर-ज्वाल वसाई।
कैसे दुराइहौँ जान अमोही, मिलाप मैँ एतियौ ऊखिलताई ॥१०२॥

कवित्त

मिलत न क्यौँ हूँ भरे रावरी अमिलताई,
हिये मैँ किये बिसाल जे बिछोह-छत हैं।
प्रीतम अनेरे मेरे घूमत घनेरे प्रान,
बिष-भोए बिषम-बिसास-बान-हत हैं।
प्यार मैँ परम पूरो, सुन्यौ हू न हो सु देख्यौ,
जान परी जान! ये अमोहिन के मत हैं।
पौन को प्रवेस हो न जहाँ घनआनँद पै,
तहाँ लै कहाँ तैँ बीच पारे परवत हैं ॥१०३॥

---

[१०२] प्यार० = प्रेम के स्वप्न की भाँति, जिसमेँ प्रेम का लेश भी नहीँ। वंक = वक्र, टेढ़ी। बिप० = (प्राणोँ मेँ) विष मिला देनेवाली। सुधाई० = अमृत से ही सनी हुई। सुधाई = भोलापन। चेटक = मायाविनी। अंतर = हृदय। चेटक० = उनकी मायाविनी मूर्ति का ध्यान क्या किया हृदय मेँ ज्वाला समा गई। दुराइहौँ = छिपा रखेँगे। मिलाप = मेल, सयोग। ऊखिलताई = अमेल, अमिलाप ('ऊखिल' व्रज का खास शब्द है, जिसका अर्थ 'अजनवी' होता है)। कैसँ० = मिलाप मेँ अमिलाप को (अजनबीपना) कब तक बनाए रहेँगे। जब मैँ निरंतर उनका ध्यान करती हूँ और उनके विरह-ताप मेँ तपती हूँ तो उन्हेँ अपनी उदासीनता हटानी ही पड़ेगी।

[१०३] मिलत० = मिलते नहीँ, नहीँ पूजते, नहीँ भरते। अमिलताई० = फटे रहने की बान से युक्त; खटाई (अम्ल) अर्थात् कपट से भरे हुए। छत = (क्षत) घाव। मिलत० = विरह ने जो बडे बड़े घाव छाती मेँ कर रखे हैँ वे आप की अनमेल वान से युक्त होकर भरते हाँ नहीँ। अनेरे = दूर। घूमत = गहरे चक्कर मेँ पड़े हैँ। विप-भोए = विप से बुझे हुए। बिसास० = विश्वासघात के

आनाकानी-आरसी निहारिबो करौगे कौ लौं,
कहा मो चकित दसा-त्यौं न दीठि डोलिहै।
मौन हू सों देखिहौं, कितक पन पालिहौ जू,
कूक-भरी मूकता बुलाय आप बोलिहै।
जान घनआनँद! यौं मोहिं तुम्हैं पैज परी,
जानियैगी टेक टरें कौन धौं मलोलिहै।
रुई दियें रहौगे कहा लौं बहरायबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै ॥१०४॥

सवैया

घनआनँद जान! सुनौ चित दै हित-रीति दई तुम तौ तजि कै।
इत साहस सों घन संकट कोटिक आए समाजन कौं सजि कै।

बाणों के प्रहार से घायल होकर। प्यार० = प्यार में तो आप खूब प्रवीण हैं (व्यंग्य)। जान परी = समझ में आ गया। जान = सुजान, प्रिय। मत = रंग-ढग। हो = था। पारे = डाल दिए। पौन० = जहाँ (हम दोनों के बीच) वायु का भी प्रवेश नहीं हो सकता था वहाँ आप ने पर्वत डाल दिए (दूर जा बसे हैं)।

[१०४] आरसी = (आदर्श) दर्पण। आनाकानी० = आनाकानी का दर्पण आप कब तक देखते रहेंगे (सुनी अनसुनी करते रहेंगे)। कहा = क्या। चकित = चकित कर देनेवाली। त्यौं = ओर। न दीठि० = क्या दृष्टि घूमेगी ही नहीं। मौन हू० = मौन रहकर देखूँगी। कितेक० = कब तक प्रतिज्ञा का पालन करते रहेंगे (आप ने मुझसे विमुख रहने की जो प्रतिज्ञा कर ली है, देखूँ वह कब तक निभती है)। कूक० = पुकार। मूकता = मौन। आप = स्वयं, खुद। कूक० = मौन से युक्त मेरी कूक (मौन की पुकार) आप को बुलाकर तब कहीं स्वयं बोलेगी (मौन की मेरी पुकार से आप को प्रतिज्ञा तोडनी पडेगी)। पैज = प्रतिज्ञा अर्थात् होड़। जानियैगी = अर्थात् देखना है। टेक = प्रतिज्ञा। मलोलिहै = पछताएगा। बहराइबे की = बहलाने की; बधिर बने रहने की। मेरियै = मेरी ही।

मन के पन पूरन पूरि रह्यौ सु भजै कित या बिधि सौं भजि कै।
यह देखि सनेह-बिदेह-दसा अति हीन ह्वै दीन गए लजि कै ॥१०५॥

कवित्त

रूप-उजियारे जान! प्रानन के प्यारे, कब
　　करौगे जुन्हैया दैया बिरह-महा-तमैं।
सुखद सुधा तैं हँसि हेरनि पिवाय पिय,
　　जियहि जिवाय, मारिहौ उदेग से जमैं।
सुंदर सुदेस आँखैं बहुरयौ बसाय, आय,
　　बसिहौ छबीले जैसें हुलसि हियें रमैं।
ह्वैहै सोऊ घरी भाग-उघरी अनंदघन,
　　सुरस बरसि लाल देखिहौ हरी हमैं ॥१०६॥

---

[१०५] हित० = प्रीति की रीति आप ने त्याग ही दी। साहस सौं० = साहसपूर्वक। समाजन कौं० = समाज (सेना) सजाकर आए। मन के० = मन भी अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने में डटा रहा। सु भगै० = वह (मन) इस प्रकार से आप की प्रीति करके भला भागे भी तो कैसे भागे! वह तो अपनी प्रतिज्ञा से परिपूर्ण है, उसे त्याग नहीं सकता। सनेह० = प्रेम से मन की विदेह-दशा देखकर वे बेचारे (संकट) हारकर और लज्जित होकर लौट गए। अति० = अर्थात् हार मानकर। दीन = बेचारे। तात्पर्य यह कि प्रेम के कारण अपने को ही भूले रहने से मन संकट का भी अनुभव नहीं करता।

[१०६] रूप० = छवि का प्रकाश करनेवाले। जुन्हैया = चाँदनी; प्रकाश। बिरह० = विरहरूपी घोर अंधकार में। हेरनि = चितवन। उदेग० = उद्वेग ऐसे यम को। सुखद० = अमृत से भी बढ़कर अपनी चितवन से मेरा जी जिलाएँगे और उद्वेग को दूर करेंगे। सुदेस = अच्छी बस्ती। आँखैं = आँखों में। सुंदर० = (इन उजड़ी हुई) आँखों में फिर सुंदर बस्ती बसाकर। आय० = इन आँखों में आप आ बसेंगे, दर्शन देंगे। जैसें० = जिस प्रकार आप उमंगपूर्वक इस रमे हुए हृदय में बसे हुए हैं। भाग० = भाग्य द्वारा उद्घाटित, भाग्य से भरी हुई। सुरस = आनंद; जल। हरी = हरी-भरी; प्रसन्न।

सवैया

किंसुक-पुंज से फूलि रहे सु लगी उर दौ जु वियोग तिहारे।
मातो फिरै, न घिरै अबलानि पै, जान मनोज यौं डारत मारे।
है अभिलाषनि-पात-निपात कढ़े हिय-सूल उसासनि-डारे।
है पतझार बसंत दुहूँ घनआनँद एक ही बार हमारे॥१०७॥

जीवनि-मूरति जान सुनौ गति, जौं जिय रावरो प्यार न पावतौ।
संगम-रंग अनंग उमंगनि झूमि न आनँद-अंबुद छावतौ।
लाड़िलो जोबन त्यौं अधरासव चोपनि लोभी मनै नहिं भावतौ।
तौ उर-दाहक प्राननि गाहक रूखे भए को परेखो न आवतौ॥१०८॥

कवित्त

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
थाके ये बिकल नैना ताहि नपि नपि रे।
हिये में उदेग-आगि लागि रही रातद्योस,
तोहि कौं अराधौं जोग साधौं तपि तपि रे।

---

[१०७] किंसुक = पलाश। दौ = आग। किंसुक० = आप के वियोग से हृदय में जो आग लग गई है वही पलाश के फूल फूले हुए हैं। मातो = मतवाला। न घिरै = घिरता नहीं, पकड़ा नहीं जाता (वश में नहीं होता)। मनोज = काम (रूपी हाथी)। अभिलाषनि० = अभिलाषरूपी पत्ते झड़ गए। सूल = वेदना; काँटा। उसासनि० = उच्छ्वासरूपी डाल में। कढे० = उच्छ्वास निकलने पर हृदय की वेदना व्यक्त हो जाती है। पतझार = अर्थात् शिशिर। एक ही बार = एक साथ।

[१०८] सुनौ० = मेरी दशा सुनो। संगम० = संयोग के रंग में। लाड़िलो = प्यारा, मनोहर। अधरासव = होंठ का आसव (शराब)। चोप = चाव। मनै = मन को। तौ० = तो हृदय जलानेवाले और प्राण लेनेवाले के रूखे होने का पछतावा न होता। परेखो = पछतावा।

[१०९] हेरत = देखते हुए। हिराने = खो गए। पिराने = दुखने लगे। पल = पलकें। थाके = थक गए। ताहि० = उस मार्ग को नापते नापते। अराधौं = आराधना करती हूँ। दुहेली = दुःख की। जीबे तें = जीने से।

जान घनआनँद यौं दुसह दुहेली दसा-
बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे।
जीवे तें भई उदास तऊ है मिलन-आस,
जीवहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे ॥१०९॥

तोहि सब गावैं एक तोही कौं बतावैं वेद,
पावैं फल ध्यावैं जैसी भावनानि भरि रे।
जल-थल-व्यापी सदा अंतरजामी उदार,
जगत मैं नावँ जानराय रह्यौ परि रे।
एते गुन पाय हाय छाय घनआनँद यौं,
कैधौं मोहिँ दीस्यौ निरगुन ही उघरि रे।
जरौं बिरहागिनि मैं करौं हौं पुकार कासौं,
दई गयौ तू हू निरदई ओर ढरि रे ॥११०॥

चंदहि चकोर करै, सोऊ ससि-देह धरै,
मनसा हू ररै, एक देखिबे कौं रहै द्वै※।
ज्ञान हूँ तें आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं भोगी भोगलात ग्वै।

---

[११०] जैसी० = कोई जैसी भावना से ध्यान करता है वैसा ही फल पाता है। जानराय = सुजानों में श्रेष्ठ। छाय = एक बार आनंद के बादलों की छाया करके। उघरि = हटकर, खुलकर। निरगुन = (१) निर्गुण (ब्रह्म); (२) गुणों से हीन; (३) आकाश। कैधौं० = सब कुछ हटकर क्या मुझे निर्गुण ही दिखाई पड़ना था ? दई = दैव, ईश्वर। निरदई = निर्दय प्रिय ; निर + दई, दई का उलटा। निरदई० = तू भी निर्दय (प्रिय) से ही जा मिला।

[१११] सोऊ = वह चकोर भी। ररै = रटता है। एक = केवल। चंदहि० = प्रेम की चरमावस्था में पहुँचकर चंद्रमा चकोर और चकोर चंद्रमा हो जाता है। (चंद्रमा चकोर बनकर) मन से अपने प्रिय को देखने की रट लगाता है। एक० = केवल देखने के लिए प्रेमी और प्रिय दो होते हैं, हैं वे एक ही।

※ र्‍वै।

जान घनआनँद अनोखो यह प्रेम-पंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै ।
बुरो जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
रसना के छाले परैं प्यारे नेह-नावँ छ्वै ॥ १११ ॥

सवैया

घनआनँद जीवन-रूप सुजान ह्वै पावत क्यौं दृगप्यास नहीं ।
अरु फूलि रहे कुसुमाकर से सु कहूँ पहचान की वास नहीं ।
रसिकाई भरे अपने मन पै सपने रस आस हू पास नहीं ।
पचि कौने विरंचि रचे हौ कहौ जु हितूनि हतौ हिय त्रास नहीं ॥ ११२ ॥

प्रेम की चरमावस्था में प्रिय और प्रेमी वैसे ही एक हो जाते हैं जैसे ज्ञाता और ज्ञेय ज्ञान की चरमस्थिति में । आगैं = बढ़कर । जाकी = जिस प्रेम की । भोग-लाना = (अकर्मक) आकृष्ट होकर वश मे हो जाना । ग्वै = डूबकर । रस० = ऐसा आनंद उत्पन्न होता है कि उसमें लीन होकर अपने सांसारिक रूप को भूल जाते हैं अर्थात् भोगियों के सारे भोग तिरोहित हो जाते हैं । भूले = अपने को भूले हुए, जो तन मन की सुध खो बैठे हैं । सुधि के = सतर्क होकर चलनेवाले, जिनको अपनी सुधि बनी रहती है । रहैं थकित ह्वै = रुक जाते हैं (इस मार्ग में चल नहीं सकते) । जिन = मत । रसना० = प्रेम में इतना ताप होता है कि उसके नाम को छूने (लेने) से जीभ में छाले पड़ जाते हैं (जो इतना ताप सहने का साहस करे वह इस मार्ग पर पैर रखे) ।

[११२] जीवन = जल ; प्राण । पावत० = मेरे नेत्रों की प्यास का अनुभव क्यों नहीं करते ('पीर पाना' की भाँति 'प्यास पाना' प्रयोग कवि ने गढ़ा है) । कुसुमाकर = उद्यान, फुलवाड़ी । वास = गंध । पहचान० = पहचान को गंध भी नहीं है, पहचानते ही नहीं । रसिकाई० = स्वयं तो रसिकता (सुंदरता) से भरे हुए हैं पर मन में आस पास स्वप्न में भी रस नहीं दिखाई देता । पचि० = न जाने किस ब्रह्मा ने आप को परेशान होकर बनाया है (ब्रह्मा भी आप को बनाने में परेशान हुआ होगा) । जु = जो, कि । हितूनि० = प्रेमियों को मारते हुए हृदय में भय भी नहीं होता ।

सूने परे दृग-भौन सुजान जे ते बहुस्यौ कव आय बसायहौ।
सोचनि ही मुरझ्यो पिय जो हिय सो सुख साँचि* उदेग नसायहौ।
हाय दई घनआनँद ह्वै करि कौ लौं वियोग के ताप तपायहौ।
एहो हँसी जिन जानै हहा, हमैं ख्वाय कहौ अब काहि हँसायहौ ॥११३

नित ही अपूरव सुधाधर-बदन आछो,
मित्र-अंक आएँ जोति-जालनि जगत है।
अमित कलानि ऐन, रैनद्यौस एकरस,
केस - तम - संग रंग - राँचनि पगत है।
सुनि जान प्यारी! घनआनँद तें दूनौ दिपै,
लोचन-चकोरनि सौं चोपनि खगत है।
नीठि दीठि परै खरकत सो किरकिरी लौं,
तेरे आगें चंद्रमा कलंकी सो लगत है ॥११४॥

---

[११३] बहुस्यौ = फिर। सुख० = सुख से भरकर। उदेग = उद्वेग। जिन = मत।

[११४] नित ही = नित्य ही। अपूरव = अपूर्व, अद्वितीय; अ + पूरब, जो पूर्व दिशा से निकलनेवाला नहीं है, विलक्षण। सुधाधर = चंद्रमा; सुधा को धारण करनेवाला (सुधा + अधर = अमृत से परिपूर्ण होंठोंवाला)। वदन = मुख। मित्र = सूर्य; सखा, प्रेमी। अंक = गोद। जालनि = समूह। मित्र० = आकाश का चंद्रमा मित्र (सूर्य) के निकट पहुँचकर श्रीहीन हो जाता है, पर यह मुखचंद्र और भी देदीप्यमान होता है। ऐन = घर। अमित = उस चंद्र में १६ ही कलाएँ हैं, इसमें असंख्य। रैन० = वह चंद्र दिनरात एक सा नहीं रहता पर यह दिनरात एक सा रहता है। संग = साथ। रंग = रंग की रँगाई खिल उठती है, मेल खाती है अर्थात् छजता है। केश-रूपी अंधकार के साथ यह छजता है। (वह) चंद्र अंधकार से नहीं दिखता। घन० = आनंद के घन (बादल; घने आनंद वाले प्रिय) से मिलकर दूना प्रकाश देता है। दिपै = प्रकाश देता है; प्रसन्न होता है। चोपनि = उत्साहपूर्वक। खगत० =

* सींचि।

उघरि नचे हैं, लोक-लाज तैं बचे हैं, पूरी
चोपनि रचे हैं, सुदरस-लोभी रावरे।
जके है थके हैं मोह-मादिक छके है अन-
बोले पै बके हैं दसा, चीतैं चित चाव रे।
औसर न सोचैं घनआनँद बिमोचैं जल,
लोचैं वही मूरति अरबरानि आवरे।
देखि देखि फूलैं ओट भ्रमन ही भूलैं, देखौ
बिन देखैं भए ये वियोगी दृग बावरे ॥ ११५ ॥

सवैया

कित लोग कथा सु वृथा ही करौ, यह तौ तब ही अनुमानि लई।
अपनेई सनेह ठगी, भ्रम दै प्रतिबिंबहि मूरति मानि लई।

हिलमिल जाता है। नीठि = कठिनाई से, किसी प्रकार। सो = वह चंद्रमा। नीठि० = एक तो वह चंद्रमा (आकाशवाला) देखा नहीं जाता, यदि कठिनाई से उसे देखें भी तो नेत्रों में वह किरकिरी की भाँति खटकता है। इसलिए आप के मुखचंद्र के सामने वह चंद्रमा कलंकी ही दिखाई देता है। (आप का मुख निष्कलंक है, पर उसमें कलंक है)।

[११५] उघरि० = खुलकर नाच रहे हैं (खुल्लमखुल्ला प्रिय को देखा करते हैं, किसी की चिंता नहीं करते)। लोक० = लोकलज्जा से बचे (अर्थात् दूर ही) रहते हैं, लोकलज्जा भी त्याग दी है। पूरी० = पूरे चाव के रंग में रँगे हुए हैं। सुदरस० = आप के दर्शनों के लोभी हैं। जके० = चकपकाए रहते हैं। थके० = शिथिल हो रहे हैं। मोह० = प्रेम की मदिरा पीकर छक गए हैं, प्रेम के नशे में चूर रहते हैं। अनबोले० = बोलते तो नहीं, पर इनकी दशा बकनेवालों की सी है। चीतै० = चित्त में निरंतर उत्साह ही लाया करते हैं। औसर० = समय का विचार नहीं करते। बिमोचैं = आँसू गिराते रहते हैं। लोचैं० = आप की उस मूर्ति की कामना किया करते हैं। अरबरानि = लड़खड़ाहट। आवरे = शिथिल, दीन। अरबरानि० = व्याकुलता से दीन होकर। फूलैं = प्रसन्न होते हैं। देखि० = प्रिय को मानों देख से रहे हैं और इसी से प्रसन्न

घनआनँद वे हू सुजान हुते, किहि गौं हठ कै सठ-हानि लई।
ब्रज देखत होत सुमारनि कौं तजि भाजि बचे हम जानि लई ॥११६॥

चूर भयौ चित पूरि परेखनि एहो कठोर! अजौं दुख पीसत।
साँस हियैं न समाय सकोचनि, हाय इते पर बान कसीसत।
ओटनि चोट करौ घनआनँद नीके रहौ निसद्यौस असीसत।
प्राननि बीच बसे हौ सुजान पै आँखिन दोष कहा जु न दीसत ॥११७॥

ज्यौ बहरै न कहूँ ठहरै मन, देह सो आहि विदेह को लेखौ।
देखति जो दुखिया अखियाँ निति वैरियौ की सुपनै सु न देखौ।

होते रहते हैं। ओट० = प्रिय के कहीं ओट में छिपे होने के भ्रम में ही मग्न रहते हैं, समझते हैं कि प्रिय कहीं छिपा है, अब निकला तब निकला।

[११६] गोपियों का वचन उद्धव के प्रति। कित = क्यों। कथा० = बकवाद। कित० = लोग व्यर्थ ही बकवाद क्यों करते हैं? भ्रम दे० = भ्रम में पड़ जाने के कारण। प्रतिबिंब = छाया। अपनेई० = अपने प्रेम से धोखा खाकर छाया को ही मूर्ति मान बैठा (प्रिय में प्रेम की छायामात्र है)। सुजान० = चतुर थे। किहि० = किस चालाकी से, किस घात से। हठ कै = जान बूझकर, बरबस। सठ-हानि = पूँजी की हानि। सठ-हानि लई = यहाँ से जाकर उन्होंने जो हानि उठाई। सुमार = अच्छी मार, कड़े कड़े आक्षेप। ब्रज० = उन्होंने देखा कि ब्रज में मेरे ऊपर कड़े कड़े आक्षेप होते हैं, इसी लिए यहाँ से टल गए।

[११७] परेखनि = पछतावों से। कठोर = निर्दय प्रिय। अजौं० = अब भी, इतने पर भी (पिस जाने पर भी पीस रहे हो)। साँस० = संकोच के कारण साँस नहीं समाती, मारे संकोच के कुछ कह नहीं सकती। बान = विरह का बाण। कसीसत = (फारसी कशिश) खींचते हो, मारते हो। ओटनि = ओट से, छिपकर। नीके० = हम तो रातदिन यही आशीर्वाद देती (मंगल-कामना करती) हैं कि आप सुख से रहें। आँखिन = मेरी इन आँखों का क्या दोष, यदि दिखाई नहीं पड़ते।

[११८] ज्यौ = जी, चित्त। बहरै न = बहलता नहीं, लगता नहीं। ज्यौ बहरै० = न तो चित्त ही कहीं बहलता है, न मन ही कहीं टिकता है। देह० = शरीर तो विदेह दशा को प्राप्त हो रहा है, शरीर की सुध ही नहीं रहती।

हौं तौ सुजान महा घनआनँद पै पहचानि की राखौ न रेखौ।
हाय दई यह कौन भई गति प्रीति मिटे हू मिटै न परेखौ ॥११८॥

कवित्त

ह्वैहै कौन घरी भाग-भरी पुन्य-पुंज-फरी,
खरी अभिलाषनि सुजान पिय भेटिहौं।
अमी-ऐन आनन कौं पान, प्यासे नैननि सौं
चैननि ही करिकै, वियोग-ताप मेटिहौं।
गाढ़े भुजदंडन के बीच उर मंडन कौं
धारि घनआनँद यौं सुखनि समेटिहौं।
मथत मनोज सदा मो मन, पै हौं हूँ कब
प्रानपति पास पाय ताप-मद फेटिहौं ॥ ११९ ॥

सोए बहुतेरो. मेरो सोच हू निबेरौ हेरौ,
हौं न जानौं कब धौं उनींदे भाग ! जगौगे।
पीर-भरे लोचन ! अधीर हौ, पै जानत जू
कौन घरी रूप के रसोत जगमगौगे ?।

वैरियौ की = शत्रु की आँखें भी। देखति० = मेरी आँखें जो कुछ देख रही हैं (जो कष्ट भोग रही हैं) वह शत्रु की भी आँखें स्वप्न में भी न देखें। पहचानि० = पहचान की रेखा भी नहीं रखते, लेशमात्र भी पहचान नहीं रखते। परेखौ = पछतावा। प्रीति० = प्रिय के द्वारा प्रीति के छूट जाने पर भी पछतावा नहीं छूटता।

[११९] भाग-भरी = भाग्य से भरी हुई, भाग्यशालिनी। पुन्य० = पुण्यों से फली हुई, पुण्य के परिणाम-स्वरूप मिली हुई, सुखद। खरी = तीव्र। अमी = अमृत। ऐन = (अयन) घर। आनन = मुख। अमी० = अर्थात् मुखचंद्र। चैननि० = सुखपूर्वक। उर-मंडन० = हृदय को शोभित करनेवाले प्रिय को। समेटिहौं = एकत्र करूँगी, लूटूँगी। मनोज = काम। ताप-मद = संताप का गर्व। फेटिहौं = फेंट डालूँगी, (मद) मर्दन कर दूँगी।

[१२०] बहुतेरो = बहुत। निबेरौ = दूर करो। हेरौ = मेरी ओर देखो। उनींदे = नींद में अलसाए हुए। रसोत = एक औषध जो दारुहल्दी से बनती

अंग अंग ! तुम्हैं कौ लौं दहैगो अनंग कहूँ
रंग-भरी-देह जान प्यारे संग खगौगे।
चलौ प्रान ! पलौ, परे दूरि यौं कलमलौ क्यौं,
विना घनआनँद कितेक दुख दगौगे ॥ १२० ॥

सवैया

दृग-नीर सों दीठिहि देहुँ वहाय पै वा मुख कों अभिलाखि रही।
रसना विष बोरि गिराहि गसौं, वह नाम सुधानिधि भाखि रही।
घनआनँद जान-सुबैननि त्यों रचि कान बचे रुचि साखि रही।
निज जीवन पाय पलै कवहूँ पिय-कारन यौं जिय राखि रही ॥१२१॥

कवित्त

तुम दीनी पीठि, दीठि कीनी सनमुख याने,
तुम पैंड़े परे, राखि रह्यौ यह प्रान कों।
तुम बसौ न्यारे, यह नेक हू न हातो होय,
तुम दुखदाई यह करै सुख-दान कों।

है और आँख के रोग और घाव में काम आती है ; रसवत् , रसमयता, आनंद-दायकता। अनंग = काम ; अंगहीन। कहूँ = कभी। रंगभरी० = रंगभरी देह-वाले प्रिय। खगौगे = मिलोगे। पलौ = पलते रहो। परे० = प्रिय से दूर पड़कर। कलमलौ० = व्याकुलता से छटपटाते क्यों हो। दगौगे = जलोगे, सहोगे।

[१२१] दृग० = आँसू बहाकर (उसी के साथ) दृष्टि को बहा दूँ। अभिलाखि० = अभिलाष करके, उस मुख को देखने की आशा में। रही = रुक गई, दृष्टि को बचा रखा। गिरा = वाणी। गसौं = ग्रस्त कर दूँ, स्तब्ध कर दूँ। बैन = वचन। त्यों = ओर। रचि = अनुरक्त होकर। रुचि० = मेरी रुचि ही साक्षी है, बचने का प्रमाण मेरी रुचि ही देगी, मेरी रुचि ही कानों को बचाने का कारण है। पलै = पलेगा। राखि रही = रखती हूँ, बचाए हुए हूँ।

[१२२] दीनी० = विमुख हो गए। दीठि० = इस (ध्यान) ने आप की ओर दृष्टि की, संमुख हुआ (ध्यान आपके विमुख हो जाने पर बढ़ गया है)। पैंड़े० = आप (प्राणों के) पीछे पड़े हैं। राखि = यह (ध्यान) प्राणों को

सुनौ घनआनँद सुजान हौ अमोही तुम,
याको महा मोह मो विना न जानै आन कौं।
और सबै सहौं कछू कहौं न कहा है बस,
तुम्हे वदौं तौ पै जौ बरजि राखौ ध्यान कौं ॥१२२॥

विरह तपत आछे आँसुन सौं च्वाय चोवा,
पायनि पखारि सीस धारि छिन छूजियै।
चूमि चूमि चोपनि लगाय लालसानि भाल,
मंजन कपोलनि कै प्राननि लै पूजियै।
पहो घनआनँद सुजान रावरे जू सुनौ,
रावरी सौं और हियें मनसा न दूजियै।
निरमोही महा हौ पै मया हू विचारि वारी*,
हाहा नेकु नैननि अतीत किन हूजियै ॥ १२३ ॥

चोख्यौ चित चोपनि, चितौनि मैं चिन्हारी करि,
चाह सी जनाय हाय मोहि कै मनौ लियौ।
भोरी भोरी बातनि सुनाय जान! भोरे प्रान,
फाँसी ते सरस हाँसी-फंद छंद सौं दियौ।

बचा रहा है। न्यारे = अलग, दूर। न हातौ० = दूर नहीं होता। आन कौं = किसी दूसरे को। बदौं = समझूँ। तौ पै = तब तो। बरजि० = रोक लो।

[१२३] विरह० = विरह से तपते हुए। च्वाय = चुलाकर। पखारि = धोकर। धारि = रखकर। छिन = कुछ देर तक। छूजियै = छूऊँगी। चोपनि = चाव से। लालसानि = लालसा से। मंजन = माँजना। मंजन० = प्राणों को कपोलों पर माँजकर (रगड़कर) पूजा करूँगी। मनसा = इच्छा। दूजियै = दूसरी। विचारि = विचार करके। वारी = निछावर होती हूँ। अतीत = अतिथि।

[१२४] चिन्हारि = पहचान। चाह० = प्रेम का आभास मात्र देकर। मनौ० = चित्त भी (मोहित कर लिया)। सरस = बढ़कर। हाँसी० = हँसी का फंदा। छंद सौं = धोखे से। दियौ = गले मैं डाल दिया। उघरे = हट गए।

*धारि।

छलनि छबीले आय छाय घनआनँद यौं,
उघरे बिसासी अंत, निरदै महा हियौ।
वारी मति, हारी गति कहाँ जाहिँ नाहिँ ठौर,
मारत* परेखो देखौ हितू ह्वै कहा कियौ॥१२४॥

सवैया

अँसुवानि तिहारे वियोग ही सों वरपा-रितु वेलि सी वाल भई।
हिय-खोपनि† चोपनि-कोंपनि झालरि लाज के ऊपर छाय गई।
घनआनँद जान सदा हित झूमनि-घूमनि देखियै नित्त नई।
बलि नेकु मया करि हेरौ हहा अबला किधौं फूलि रही तुरई॥१२५॥
घनआनँद मीत सुजान हहा सुनियै विनती कर जोरि करैं।
अरसाहु न नेकु रिसाहु अहो धरि ध्यानहिँ दूरि ते पाय परैं।
मन भायौ बियोग मैं जारिवो जौ तौ तिहारी सौं नीकें जरैंऽरु भरैं।
पै तुम्हैं मति कोऊ कहौ हित-हीन, सु या दुख वीच अमीच मरैं॥१२६॥

बिसासी = विश्वासघाती। अंत = अंत में। निरदै = निर्दय। वारी० = बुद्धि निछावर हो गई। हारी० = शक्ति क्षीण हो गई। मारत० = पछतावा मारे डालता है, पछता रही हूँ। कहा० = कैसा व्यवहार किया।

[१२५] अँसुवानि = आप के विरह के आँसू वर्षा ऋतु के जल की भाँति हैं। बेलि = लता। बाल = बाला, नायिका, प्रेमिका। खोपा = छप्पर का कोना। हिय० = हृदयरूपी छप्पर के ऊपर उमंगों की कोंपलों के निकलने से। झालरि = झलराकर, फैलकर, हरीभरी होकर। लाज० = लज्जा को भी ढक लिया, लोकलज्जा का भी त्याग कर दिया। हित० = प्रेम से मस्त होकर झूमना ही लता का घूमना (घिराव) है। तुरई = तरोई (पीले फूलवाली)। फूलि रही० = नायिका विरह से इतनी पीली हो गई है जैसे तरोई के पीले फूल फूले हों।

[१२६] बिनती = हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ। अरसाहु न = आलस्य न करो। न नेकु० = और न मेरी धृष्टता (बारबार विनती करने) पर रोष ही करो। दूरि० = आप से इतनी दूर रहकर यहीं से (आप का ध्यान करके

* मानतु। † पोषनि।

हम एक तिहारियै टेक धरैं तुम छैल! अनेकन सौं सरसौ।
हम नाम-अधार जिवावत ज्यौ तुम दै बिसवास-बिषै बरसौ।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ तब गौं गहि क्यौं अब यौं अरसौ।
तकि नेकु दई त्यौं दया ढिग ह्वै सु कहूँ किन दूर हू तें दरसौ ॥१२७॥
परकाजहि देह कौं धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ।
घनआनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियें परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानहिँ लै बरसौ ॥१२८॥
मानस को बन है जग पै बिन मानस के बन सो दरसै सो।
जे बनमानस ते सरसे तिन सौं मिलि मानस क्यौं सरसै हो।

पैरों पड़ती हूँ)। मन० = मनमाने, जैसा आप के मन को रुचे। सौं = शपथ। नीकें = भली भाँति, इच्छापूर्वक। जरें ऽरु० = जले जाऊँ और दिन काटूँ। हित-हीन = प्रेमहीन। अमीच० = बिना मौत के मर रही हूँ।

[१२७] सरसौ = प्रेम करते हो। नाम० = आप के अमृतमय नाम से। ज्यौ = जी को। दै बिसवास० = विश्वास देकर विष बरसाते हो। गौं गहि = घात लगाकर, अवसर निकालकर। अरसौ = आप प्रेम मैं आलस्य करते हैं [या अ + रसौ = रसहीन होते जाते हैं]। तकि० = जरा दैव की ओर देखकर, दैव को डरकर। दया० = दया के पास से होकर, दया करके। किन० = दूर ही से क्यों नहीँ दर्शन देते।

[१२८] परकाजहि = दूसरे का उपकार करने के हेतु। परजन्य = (पर्जन्य) बादल ; पर + जन्य, दूसरों के उपकार के लिए जो हो। जथारथ० = सच्चे होकर दिखाई दो (अपना नाम सार्थक करो)। निधि० = समुद्र का खारा पानी। सुधा० = अमृत के समान (मीठा) कर देते हो। सरसौ = फैलाते हो, करते हो। जीवन = जल ; प्राण। हियैं परसौ = मन मैं अनुभव करो। बिसासी = विश्वासघाती। अँसुवानहिँ० = मेरे (खारे) आँसुओं को लेकर (और उन्हैं मीठा बनाकर) बरसो।

[१२९] मानस० = संसार मनुष्यों का समूह है। मानस के० = यदि उनमैं हृदय न हो तो यह संसार फिर जंगल ही है। बनमानस = बनमानुस; वन के

हाय दई ! ढरि नेकु इतै सु कितै परसै जिहि ज्यौं तरसै मो।
चातिक-प्रान जिवाय दै जान हहा ! घनआनँद कौं बरसै जो ॥१२९॥
बात सुजानन की घनआनँद डारति आहि अचेत किये चित।
कानति बेधति पैठि कै प्राननि, दीसै नहीं* अकुलानि यहै† नित।
क्यौं भरियै, करियै सु कहा, हमैं आनि बनी इन लोगन सौं इत।
भीर मैं हाय अकेले अधीर हैं रीझहि लै रिझवार गए कित ॥१३०॥

कवित्त

महा अनमिलन-मिलेई मिलौ जब मिलौ,
ऐसे अनमिल कै मिलाए हौ हमैं दई।

बड़े बड़े तालाब। सरसे = फैले हुए हैं; सर से, तलैया के से। मानस = मन; मानसरोवर में रहनेवाला हंस (चातक)। सरसै = आनंदित हो। जे बन० = संसार में बनमानुसों (असहृदयों) की वृद्धि हो रही है इसलिए रसिक मन कैसे आनंद पाए; वन में जो बड़े बड़े तालाब हैं वे भी इस मानस (हंस = चातक) के लिए तुच्छ तलैया की भाँति हैं, उनसे यह प्रसन्न नहीं हो सकता। ढरि० = कृपा कर। इतै = मुझपर। सु कितै० = जिसके लिए मेरा जी तरस रहा है उसे कैसे पाए। चातिक० = हे सुजान ! यदि आप घने आनद की वर्षा करें तो यह (मरता हुआ) चातक जी उठे।

[१३०] बात० = (चतुरों की बात से अचेत रहनेवाले भी सचेत होते हैं, पर विलक्षणता यह है कि) सुजानों की बात (सचेत) चित्त को भी अचेत कर डालती है। वर्तमान० = वह बात कानों को छेदती हुई प्राणों में धँस जाती है। दीसै० = फिर भी वह दिखाई नहीं पड़ता, यही व्याकुलता नित्य होती रहती है। भरियै = दिन काटे जायँ। हमैं = हमें इन लोगों से (प्रिय के अतिरिक्त बात न समझनेवाले लोगों से) पाला पड़ा है। भीर० = इस भीड़ में हमारे प्राण अकेले हैं, इसी से अधीर हो रहे हैं, रिझवार (प्रिय) न जाने मेरी रीझ को लिए दिए कहाँ चले गए कि आकर इनकी रक्षा नहीं करते।

* नई। † नितै।

हमैं तौ मिलौ, जौ कहूँ आप हू सों मिले होहु,
मिलौ तौ कहा जू ये मिलाप-रीति है नई।
इते पै सुजान घनआनँद मिलौ न हाय,
कौन सी अमिलता की लागी जिय मैं जई।
तुम हूँ तें अधिक अमिल मन हमैं मिल्यौ,
तऊ मिल्यौ चाहै, दाहै जऊ जरियौ गई॥ १३१॥

सवैया

सावन-आगम* हेरि सखी! मनभावन-आवन-चोप विसेखी।
छाए कहूँ घनआनँद जान सम्हारि की ठौर ल भूलनि लेखी।

---

[१३१] अनमिलन० = बेमेल लोगों के साथ अर्थात् दूसरों से अपना मन मिलाए हुए [अथवा बेमेलपने से युक्त होकर अर्थात् ऊपरी मन से मिलते हो, सच्चे मन से नहीं]। ऐसे० = ईश्वर ने आप को मुझसे मिलाया भी तो अनमिल अर्थात् अमोही बनाकर। आप हू० = यदि आप अपने आपे में हों तब न मिलें। हमैं० = हम से आप मिले भी कहाँ, यदि अपने आप से आप मिले हों, अपने आपे में हों तब न मिलें (आप तो दूसरों से मिले रहते हैं)। मिलौ तौ० = मिलें भी तो आप कैसे मिलें, आप के मिलने का ढंग ही विलक्षण (नया) है, ऐसे ढंग से मिलना न मिलना समान ही है। जई = जवारा, अंकुर। इते पै० = इतने पर अर्थात् इतना प्रयास करने पर भी आप नहीं मिलते। न जाने आप के जी में कैसा विचित्र बेमेलपने का अंकुर लग गया है। तुम हूँ० = आप को ही क्या दोष दूँ, आप से भी बढ़कर तो मेरा बेमेल मन है। वह तो मुझसे दूर ही दूर रहता है। उसकी विलक्षणता यह है कि इस प्रकार आप के विरह में मैं जल-भुनकर समाप्त भी हो गई तब भी वह आप से मिलने का उपाय सोचा ही करता है। तात्पर्य यह कि एक ओर आप ऐसे अमोही और दूसरी ओर मेरे मन जैसा अमोही, इस विषमता में मैं पिस रही हूँ।

[१३२] चोप = उमंग। बिसेखी = बढ़ गई। सम्हारि० = (ब्रह्मा ने मेरे भाग्य में) प्रिय द्वारा सँभाल के स्थान पर भूल लिख दी है, जिस समय मेरी सँभाल

* आवन।

बूँदैं लगैं सब अंग दगैं उलटी गति आपने पापनि पेखी।
पौन सो जागति आगि सुनी ही पै पानी तें लागति आँखिन देखी॥१३२॥
हम सौं हित कै कित कौं हित ही चित-बीच बियोगहिं बोय चले।
सु अखैबट-बीज लौं फैलि पर्‌यौ बनमाली कहाँ धौं समोय चले।
घनआनँद छाय बितान तन्यौ हम ताप के आतप खोय चले।
कबहूँ तिहिं मूल तौ बैठिये आय सुजान ज्यौ ख़्वाय* कै रोय चले॥१३३॥
कान्ह! परे बहुतायत मैं अकलैन की वेदन जानौ कहा तुम।
हौ मनमोहन मोहे कहूँ न बिथा बिमनैन की मानौ कहा तुम।

होनी चाहिए प्रिय उसी समय मुझे भूल गया [अथवा मुझे अपने तन-बदन की सँभाल नहीं रहती, मैं इसे भूली ही रहती हूँ]। लगैं = लगने पर। सुनी ही = सुनी थी। पौन० = हवा से आग का प्रचंड होना तो केवल सुना था (देखा नहीं था) पानी से आग लगना तो आँखों देख लिया।

[१३३] हित कै = प्रेम करके। कित कौं = किसकी ओर, किधर। हित ही = चाव से। बियोग = वियोग का दुःख, विरह। बोय = बोकर, उत्पन्न करके। सु = वह वियोग का बीज। अखैबट० = अक्षयवट, प्रलयांत में भी नष्ट न होनेवाला वटवृक्ष। फैलि० = अंकुरित होकर हरेभरे वृक्ष में परिणत हो गया है। समोय = अनुरक्त होकर। चले = चल पड़े। छाय = भली भाँति फैलकर, झलराकर। बितान = चँदोवा, शामियाना। आतप = धूप, गरमी। छाय० = वह वटवृक्ष चँदोवे की भाँति छा गया है (उसके नीचे धूप नहीं आती और शीतलता मिलती है किंतु) हम तो ताप की गरमी से ही नष्ट हुए जा रहे हैं, मर रहे हैं। खोय चले = नष्ट हुए जा रहे हैं, मर रहे हैं। तिहिं० = उस वटवृक्ष की जड़ पर, उसके नीचे (बैठकर अपनी सुरीली बाँसुरी ही आ बजाते)। ज्यौ = प्राण। ज्यौ हाय कै० = मेरे प्राण तो (अपनी असाधारण वेदना से करुणाप्लुत करके) अब दूसरों को रुलाकर और स्वयं भी रोकर निकले जा रहे हैं, यह गरमी सही नहीं जाती। मैं असह्य विरह-ताप से जली जा रही हूँ।

* हाय।

बौरे बियोगिन आप सुजान ह्वै हाय कछू उर आनौ कहा तुम ।
आरतिवंत पपीहन कों घनआनँद जू पहचानौ कहा तुम ॥१३४॥

यह नेह तिहारो अनोखो लग्यौ. जु पस्यौ चित रूखो सबै तन ही ।
बिसरै छिन जो सु करै सुधि तो, गुन-माल बिसाल गुनै गनही ।
हित-चातिक-प्रान, सजीवन जान ! रचे बिधि आनँद के घन ही ।
दरसौ परसौ बरसौ सरसौ मन लै हू गए पै बसौ मन ही ॥१३५॥

---

[१३४] बहुनायन० = बहुतों के फेर में । अकलैन० = मुझ अकेले की, अनन्य प्रेमी की । बेदन = वेदना, पीड़ा । हौ मनमोहन० = आप तो दूसरों का मन मोहनेवाले है, स्वयं आप का मन तो किसी पर मोहा ही नहीं, किसी के द्वारा आप मोहे नहीं गए । बिमनैन की = किसी पर मोहित होकर विमनस्क (बेमन) हो जानेवालों की । मानौ = समझो । बिथा० = इसलिए विमनस्कों की व्यथा आप समझें भी तो कैसे समझें । बौरे = पागल । बौरे० = आप सुजान होकर विरह में पागल होनेवाले वियोगियों को हृदय में स्थान कैसे दे सकते हैं (सुजान की चतुराई तो इसी में है कि वह पागलों के फेर में न फँसे) । आरतिवंत = दुखी ।

[१३५] नेह = (स्नेह) तेल (चिकना) ; प्रेम । रूखो = रूखा ; उदास । सबै० = सब की ओर से । तो = तव, आप की । बिसरै० = जिस क्षण मैं ऐसा जान पड़ता है कि मैं आप को भूली हुई हूँ वह क्षण भी आप के स्मरण में ही लगा रहता है । जब मैं आपे से बाहर रहती हूँ तब भी आप ही का ध्यान बना रहता है । गुनै = विचारता है । गनही = गिनता है । गुन० = (वह भूला हुआ क्षण) आप के विशाल गुणों की माला फेरता रहता है, आप के गुणों पर विचार करता और उन्हें गिनता रहता है । हित० = चातक के प्राणों के लिए । सजीवन० = हे सुजान ! ब्रह्मा ने चातक के प्राणों के लिए सजीवन (बूटी की भाँति) आप जैसे आनंदघन को ही बनाया है । दरसौ = दिखाई पड़ते हो । परसौ = स्पर्श करते हो । सरसौ = रसमय होते हो । मन० = मेरा मन चुराकर ले भी गए, मेरा मन उजाड़कर चले भी गए, फिर भी मुझे रुचते हो, मेरे मन में ही बसते हो ।

चितवै जिहि भाँति, सकौं सहि क्यौं, रहि क्यौं हूँ परै न हितात हियौ।
सु न जानति जीवति कौन सी आस, बिसास मैं प्रेम को नेम लियौ।
घनआनँद कैसे सुजान हौ जू उहि सूखनि सींचि न छाँह छियौ।
करी बावरी रावरी बोलनि है कहि प्यारी बनाय कै प्यार कियौ॥१३६॥

कवित्त

जाहि जीव चाहै सो तहीं पै ताहि दाहै,
वाहि ढूँढ़त ही मेरी गति मति गई खोय है।
करौं कित दौर, और रहौं तौ लहौं न ठौर,
घर कौं उजारि कै बसत वन जोय है।

---

[१३६] दूती का विरह-निवेदन। चितवै = देखती है। क्यौं हूँ = किसी प्रकार भी। न = देहरी दीपवत् 'परै' और 'हितात' दोनों ओर लगता है। हिताना = अच्छा लगना, यहाँ पर 'सँभलना' अर्थ है। सु = सो, वह। जीवनि० = न जाने किस आशा पर जी रही हूँ। बिसास = विश्वासघात। बिसास० = आप के विश्वासघात करने पर भी प्रेम का व्रत पालती हूँ (प्रेम का निर्वाह करती हूँ)। छियौ = छूई। घनआनँद० = हे सुजान, आप कैसे आनंद के घन हैं कि आरंभ की सूखती स्थिति मैं सींचकर भी अपनी छाया से भी उसे छूआ नहीं, अपनी छाया उस पर करते ही नहीं। करी = की। करी० = आप की वाणी ने उसे पगली बना दिया है। कहि० = (जब) आप ने उसे 'प्यारी' कहकर पुकारा। बनाय कै० = पर आप ने प्यार किया बनावटी।

[१३७] तहीं पै = वहीं पर, मन के भीतर ही भीतर। करौं० = दौड़कर जाऊँ तो कहाँ? और० = यदि जहाँ की तहाँ पड़ी रहूँ तो यहाँ रहने का स्थान नहीं (चारों ओर वेदना ही वेदना छाई है)। जोय = देख-भालकर। घर कौं० = अब (जी) घर को उजाडकर वन मैं कोई स्थान खोजकर जा बसना चाहता है। इस जलते शरीर मे रहा नहीं जाता। अनैसी = (अनिष्ट) बुरी, बेढब। जीवौ = जीव भी। जान० = प्रिय सुजान के बिना, उसके वियोग मैं। जागैं० = जागता हुआ भी सो गया है (जीव होते हुए भी बेकाम है, निर्जीव सी हो रही हूँ)। जगत = संसार; जागता हुआ। जगत० = (इस प्रकार जागते हुए भी सोते मेरे जी की दशा देखकर) जगत् (जागता हुआ संसार) मुझ पर

बनी आनि ऐसी 'घनआनँद' अनैसी दसा,
जीवौ जान प्यारे बिन, जाग गयौ सोय है।
जगत हँसत यों जियत मोहिं ताते नैन !
मेरो दुख देखि रोवौ फिरि कौन रोयहै ॥ १३७॥

सवैया

घनआनँद जीवन-रूप सुजान हौ प्रान पपीहा-पनैइ पढ़े।
दिसि चाहि दुहूँ पै अचंभो महा, करियै कहा, सोच-प्रवाह बढ़े।
न कहूँ दरसौ, बरसौ बिष-बारि सु ये अपराध-गढ़े न कढ़े।
कित कौं नित ही इत याहि दहौ जु रहौ चित ऊपर चोप-चढ़े॥१३८॥
जिनकौं नित नीकें निहारति हीं तिनकौं अँखियाँ अब रोवति हैं।
पल-पाँवड़ पायनि चायनि सौं अँसुवन के धारनि धोवति हैं।

हँसता है। मेरी व्यथा का अनुभव करनेवाला और मेरे मर जाने पर मेरे लिए रोनेवाला इसी से कोई नहीं है, सब हँसनेवाले ही हैं। अतः हे मेरे नेत्र ! तुम्हीं मेरा दुःख देखकर रोओ, फिर तो कोई रोएगा ही नहीं।

[१३८] जीवन = प्राण; जल। रूप = मय। पपीहापन = चातकता, चातकपन। घन० = हे सुजान, यदि आप जीवन-रूप ही हैं तो मेरे प्राणों ने भी पपीहापन ही पढ़ा है। दुहूँ दिसि = दोनों ओर (अपनी और आपकी)। चाहि = देखकर। करियै० = क्या करूँ। सोच० = सोच के प्रवाह बढते ही जाते हैं, सोच बढता ही जाता है। न कहूँ० = आप दिखाई तो कहीं नहीं पड़ते पर बिष का जल (निरंतर) बरस रहे हैं। अपराध-गढे = अपराधों से ही बने हुए, अपराध की मूर्ति, अत्यंत अपराधी। सु ये० = (इतने पर भी) ये मेरे भारी अपराधी प्राण निकले नहीं। कित कौं = क्यों, किसलिए। याहि = इसे। कित कौं० = यदि आप चित्त पर चाव के साथ चढे रहते हैं (मेघ होकर छाए रहते हैं) तो इसे जलाते क्यों हैं ?

[१३९] नीकें = भली भाँति। निहारति० = देखा करती थीं। तिनकौं = उनके लिए। पल० = पलकरूपी पाँवड़ों को। पायनि० = प्रिय के चरणों के दर्शन की लालसा से आँसुओं की धारा से धो रही हैं। सपने० = स्वप्न में प्रिय के दर्शन पाती हैं, उन्हें नहीं प्राप्त करतीं, पर स्वप्न में उनके चले जाने से, वैसी

घनआनँद जान सजीवनि कौं सपने बिन पाएँई खोवति हैं।
न खुली मुँदी जानि परैं कछु ये दुखहाई जगे पर सोवति हैं ॥१३९॥

पहिलैं पहचानि जु मानि लई अब तौ सु भई दुखमूल महा।
इत के हित बैर लियौ उत ह्वै,करि ज्यौहरि-ब्यौहरि लोभ लहा।
घनआनँद गीत सुनौ अरु ऊतर दूर तें देहु न देहु हहा।
तुम्हैं पाय अजू हम खोयौ सबै हमैं खोय कहौ तुम पायौ कहा ॥१४०॥

सुधि होती सुजान! सनेह की जौ, तौ कहा सुधि यौं बिसरावते जू।
छिन जाते न बाहिर, जौ छल छूटि कहूँ हिय भीतर आवते जू।
घनआनँद जान न दोष तुम्हैं गुन भावते जौ गुन गावते जू।
कहियै सु कहा अब मौन भला नहीँ खोवते जौ हमैं पावते जू ॥१४१॥

ही वेदना उत्पन्न होती है जैसी प्रत्यक्ष में। मुँदी = ढकी। दुखहाई = दुःख की मारी। जगे० = जागने पर भी सोती हैं (खुली तो हैं पर किसी पदार्थ को देखती नहीं हैं, अतः सोई हुई हैं)। उत्तरार्द्ध में विरोधाभास है।

[१४०] मानि० = अंगीकार की। इत० = इधर के प्रेम का। उत० = उधर जाकर बैर निकाला। ज्यौहरि-ब्यौहरि = जी हरण करने के व्यापार में लाभ का लोभ करके [अथवा ज्यौहरिब्यौ० = जी हरण करना। हरि० = हे हरि]। ऊत्तर० = आप दूर रहकर भले ही उत्तर दें या न दें। हहा = हाय। अजू = अजी। तुम्हैं० = आप को पाकर तो मैंने सब कुछ खो दिया। खोय = मिटाकर, नष्ट करके। हमैं० = पर मुझे मिटाने से आप का क्या लाभ हुआ।

[१४१] सुधि = ध्यान, विचार। सुधि होती० = यदि आप को प्रेम का ध्यान होता तो आप मेरी सुध इस प्रकार भूल न जाते। जौ = जो, यदि। छूटि = छोड़कर। छिन० = आप क्षण भर के लिए भी बाहर न होते (मेरे ही अनुकूल आचरण करते), यदि कहीँ छल छोड़कर मेरे हृदय में आए होते। दोष = स्नेह को तोड़ना। गुन = गुण की भाँति। जौ = यदि। गुन = हमारे प्रेम के गुण। न दोष० = यदि आप प्रेम के गुण गाते होते तो आप को दोष गुण की भाँति अच्छे न लगते। कहियै० = क्या कहूँ। नहीँ० = हमैं इस प्रकार मिटाते न। जो हमैं० = यदि आप मेरे हृदय के प्रेम को जान पाते।

कवित्त

छाया छिये लागति सु जागति दृगनि आय,
तू सदा अलग जाकी छाँहौ न दिखाति है।
रोम रोम रही भोय रोय परौं साँस भरौं,
चौंकत चकत मुरझानि अधिकाति है।
जान प्यारी दूरि ही तें चेटक चरित कोटि,
मति उपचारनि* की हेरत हिराति है।
तेरी गति† चौगुनी कैं सौगुनी चुरैल हू सों,
लगी अलगी सी कछू बरनी न जाति है॥ १४२॥

सवैया

किहि टान ठनौ हौ सुजान मनौं गति जानि सकै सु अजान कस्यौ।
दहि सोच समाय, उदेगनि माय बिछोह-तरंगनि पूरि भस्यौ।

[१४१] छिये = छूने पर। सु = वह। जागति = छाती है। छाया० = चुड़ैल तो अपनी छाया के छू जाने पर किसी को लगती है और नेत्रों पर आकर छाती है। सदा० = पर तू सदा दूर ही दूर रहती है, तेरी छाया भी नहीं दिखाई पड़ती, फिर भी लग जाती है। भोय रही० = भिनी रहती है, छाई रहती है। रोम० = चुड़ैल तो नेत्रों में जगती है, पर तू रोम रोम में छाई है। चौंकत० = चौंकते और चकपकाते रहने के कारण। मुरझानि = मूर्छा, बेहोशी। अधिकाति० = बढ़ती ही जाती है। मुरझानि० = चुड़ैल लगने पर जितनी बेहोशी होती है उसकी सीमा होती है, पर तेरे कारण हुई बेहोशी बढ़ती ही जाती है, उसकी कोई सीमा नहीं। चेटक० = जादू। चरित = खेल। दूरि ही० = चुड़ैल पास आकर कष्ट देती है, पर तू दूर से ही जादू के से करोड़ों खेल किया करती है। उपचारनि = उपचार करने की। हेरत = देखते ही। हिराति० = खो जाती है। मति० = उपचार करने की बुद्धि भी देखते ही खो जाती है। चुड़ैल का उपचार करनेवालों (ओझों) की बुद्धि देखते ही बेठिकाने नहीं होती। गति = स्थिति, ढंग। अलगी = न लगी हुई। लगी० = तू जब लगती है तब तो कष्ट देती ही है, न लगने (ध्यान में आने) पर भी कष्ट देती है। चुड़ैल लगने पर ही कष्ट देती है।

* उपचारिन। † चाह।

सु सुनौ मनमोहन ताकी दसा सुधि-साँचनि आँचनि बीच रस्यौ।
तुम तौ निहकाम, सकाम हमैं घनआनँद काम सों काम पस्यौ ॥१४३॥

कवित्त

गतिनि तिहारी* देखि थकनि मैं चली जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जो परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति है।

---

[१४३] किहि० = कैसी ठान ठानते हो, क्या करने का इरादा कर रहे हो। मनौ = मन भी। सु = सो, वह। मनो० = गति को जान सकनेवाला एक मन था उसे भी अनजान बना लिया है (सुजान होकर)। समाय = घुसकर, डूबकर। इहि० = इस सोच में डूबकर। माय = भरकर। उदेगनि० = घबराहट से भरकर। बिछोह० = वियोग की लहरों से भर दिया है, वियोग के समुद्र में मग्न कर दिया है। ताकी = उस मन की। सुधि० = सच्ची बातों की स्मृति की आँच में पड़कर चिल्लाना रहा। निहकाम = (निष्काम) काम (कामना) रहित। सकाम = कामनायुक्त। काम सों = कामदेव से। काम० = काम पड़ा, पाला पड़ा है। तुम तौ० = आप तो निष्काम हैं (जैसे कोई इच्छा ही न हो) पर मैं सकाम (तुम्हें पाने की कामना करनेवाली) हूँ। मेरा तो कामदेव से पाला पड़ा है (काम मुझे सता रहा है)।

[१४४] गति = दशा; चाल। थकनि = रुकना। देखि० = रुकने में भी चली जा रही हूँ। थिर = स्थिर (गतिशून्य)। चर = चल, अस्थिर (गतियुक्त)। ढकी० = ढकी हुई उघड़ती है, छिपी हुई खुलती है। थिर० = कैसी स्थिर और अस्थिर दशा है कि न तो चलना ही जान पड़ता है और न रुकना ही। दोनों अवस्थाएँ स्पष्ट नहीं हैं। कल न० = यदि कहीं कल पड़ती भी हो, तो मुझे तो नहीं पड़ती, मैं जानती ही नहीं कि चैन पड़ना किसे कहते हैं, अत्यंत व्याकुल हूँ। परनि = पड़न, स्थिति। परति० = जो मुझ पर सुख या दुःख पड़ता है। परनि० = मैं ऐसी स्थिति में पड़ गई हूँ कि जो कुछ सुख या दुःख मुझपर

* गति सुनि हारी।

हाय यह पीर प्यारे ! कौन सुनै, कासों कहौं,
सहौं घनआनँद क्यौं अंतर अरति है।
भूलनि चिन्हारि दोऊ हैं न हो हमारे ताते
बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरति है ॥१४४॥

सवैया

मो अबला तकि जान ! तुम्हैं बिन, यौं बल कै बलकै जु बलाहक।
त्यौं दुख देखि हँसै चपला, अरु पौन हूँ दूनो बिदेह तें दाहक।
चंदमुखी सुनि मंद महा तम राहु भयौ यह आनि अनाहक।
प्रान हरौहर* है घनआनँद लेहु न तौ अब लेहिंगे गाहक ॥१४५॥

पड रहा है मैं उसका अनुभव ही नहीं कर पाती। क्यौं = किस प्रकार। अंतर = हृदय में। अरति० = अड़ती है, कसकती है (पीडा)। भूलनि = भूल जाना, विस्मरण। चिन्हारि = पहचान, स्मृति। भूलनि० = न तो विस्मृति का पता है न स्मृति का ही। हो = ए हो (प्रिय)। हमारें = हमारे पास, हमारे मन में। बिसरनि = भूलना। बिसरनि० = आप का भूलना मुझे लिए दिए भूलता है, आप के भूलने में मैं अपनी सत्ता भी भूल जाती हूँ। इस कवित्त में विलक्षण लाक्षणिक प्रयोग किए गए हैं। इसमें कवि ने अपने ढंग के प्रयोग भी रखे हैं, जैसे 'परनि परी हौं'। पूरे पद में विरोधाभास का चमत्कार है।

[१४५] अबला = स्त्री ; बलहीन। बल कै = बल करके, बलपूर्वक। बलकै = बकता है, शेखी हाँकता है, गरजता है। बलाहक = बादल; बलशाली। हँसै = हँसती है, चमकती है। चपला = बिजली ; चंचल स्त्री। बिदेह = देह-रहित, अनंग, कामदेव। पौन हूँ० = काम से दूना तो पवन जला रहा है। चंदमुखी० = मुझे चंद्रमुखी सुनकर। मंद = दुष्ट, नीच। महा तम = वर्षा की रात का घोर अंधकार। आनि = आकर। अनाहक = (नाहक) व्यर्थ। चंदमुखी सुनि० = मुझे चंद्रमुखी सुनकर घोर अंधकार व्यर्थ ही राहु बन बैठा है, मुझे ग्रस लेना चाहता है। हरौहर = लूटालूट। प्रान० = (मेरे) प्राणों की लूटालूट मची है।

* धरोहर।

कवित्त

सूरति सिँगार की उजारी छवि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौँ।
रति-रसना-सवाद-पाँवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलनि सोँ माँजिहौँ।
जान प्यारे प्रान अंग-अंग-रुचि-रंगनि मैँ,
बोरि सब अंगनि अनंग-दुख भाँजिहौँ।
कब घनआनँद ढरौँहीँ बानि देखैँ सुधा-
हेत मन-घट-दरकनि सुठि राँजिहौँ॥१४६॥

---

[१४६] सिँगार = शृंगार, इसका रंग कवि-संप्रदाय मैँ श्याम है, अतः इसे 'अंजन' कहना बहुत ही उपयुक्त है। उजारी छबि = उजली शोभा [अथवा छवि को भी शोभित करनेवाली]। आछी = अच्छी, भली। दीठि० = देखने की लालसा से भरे हुए लोचनोँ मैँ। आँजिहौँ = अंजन की भाँति लगाऊँगी। सूरति० = वह समय कब आएगा जब मैँ तुम्हारी शृंगार-मूर्ति की छिटकी छटा को देखने की लालसा से भरे हुए अपने नेत्रोँ मैँ अंजन की तरह लगाऊँगी, तुम्हारी छटा मेरे नेत्रोँ मैँ निरंतर बसी रहेगी। रति० = प्रेमभरी रसना के स्वाद-रूप। पाँवड़े = पैर के नीचे का बिछौना। पुनीतकारी = पवित्र करनेवाले। पाय = पैर। रति = जिस प्रेमभरी रसना के लिए तुम्हारे पैरोँ का चूमना ही स्वाद का प्राप्त कर लेना है उसको स्वाद-रूप वे चरण कब मिलेँगे, जो पावडोँ को पवित्र करनेवाले हैँ, और उन्हेँ पाकर यह रसना कब चूमेगी (यद्यपि चूमने की क्रिया ओठोँ द्वारा होती है, पर उसके स्वाद का अनुभव जिह्वा का ही गुण होने से कवि ने चूमने का संबंध उसी से रखा है)। कपोलनि० = कपोलोँ से उन्हेँ माँजूँगी, उन पर कपोलोँ को रगड़ूँगी (धूल लगे चरणोँ का माँजना ठीक ही है), कपोल से रगड़कर उनकी धूल साफ करूँगी। प्रान = प्राणप्रिय। अंग-अंग० = प्रिय के प्रत्येक अंग की रुचि (शोभा) के रंग मैँ। बोरि० = अपने सब अंगोँ को (केवल नेत्र और रसना को ही नहीँ) डुबाकर अर्थात् रँगकर। अनंग० = कामदेव से मिलनेवाला सारा कष्ट नष्ट कर दूँगी। ढरौँहीँ = ढलनेवाली। बानि = आदत। ढरौँहीँ० = मेरी ओर ढलनेवाली

सवैया

मो बिन जौ तुम्है और रुची तौ रुचै न तुम्हें बिन मोहिँ जियौ जू।
आँखिन मे ढरिआई रहै सु दहै दुखिया गहि आस हियौ जू।
सूल भयौ गुन जो तिहि अंग को दीप सों वारि वियोग दियौ जू।
हाय सुजान! सनेही कहाय क्यौं मोह जनाय कै द्रोह कियौ जू॥१४७॥
हाय सनेही! सनेह सों रूखे, रुखाई सों ह्वै चिकने अति, सोहौ।
आपुनपो अरु आप हु ते करि हाते हतौ घनआनँद को हौ।

मुझ पर अनुकूल होनेवाली प्रिय की टेव को देखकर, उस सुधा (अमृत) को रखने के लिए। हेत = लिए। मन० = मनरूपी घड़ा। दरकनि = फटन, टूटा-फूटा अंश। सुठि = सुंदरतापूर्वक। राँजिहौं = मरम्मत करूँगी, टाँका लगाऊँगी। ढरौंहौं० = आप की अनुकूलता को देखकर जो अमृत-वृष्टि होगी उसे रखने के लिए वियोग मैं फूट गए अपने मनरूपी घड़े को ठीक ठीक मरम्मत करा लूँगी अर्थात् उस दृश्य को देखकर मेरा फटा मन जुड़ जायगा, सुखी हो जायगा।

[१४७] बिन = सिवाय। और = अपर, अन्य। जियौ = जी। मो० = यदि आप को मेरे अतिरिक्त दूसरे की प्रीति अच्छी लगती है तो मुझे तो आप के बिना (वियोग मैं) अपना जी भी नहीं अच्छा लगता। ढरिआई = ढलना, आँसू बहना। सु = वह (हृदय)। दुखिया = दुखी, बेचारा। गहि आस = आशा की डोर मैं बँधकर। आँखिन० = आँखों से तो निरंतर आँसू गिरते रहते हैं और वह बेचारा (मेरा जी) आशा मैं बँधा हुआ जलता रहता है। गुन = गुण; वत्ती। सूल० = उस अंग (हृदय का) गुण अब केवल पीड़ा देना रह गया है, हृदय मैं केवल पीडा पहुँचाने की विशेषता रह गई है, हृदय के इस गुण (वत्ती) को वियोग की ज्वाला ने दीपक की भाँति जला दिया है। वियोग के कारण हृदय और भी पीड़ा पहुँचाने लगा है। सनेही = प्रेमी।

[१४८] सनेह = प्रेम; तेल। रूखे = उदासीन; चिकनाहट से रहित। रुखाई = उदासीनता; रूखापन। चिकने = भिनकर; चिकनाहट युक्त होकर। ह्वै चिकने = परिपूर्ण। होकर सोहौ = छजते हो। आपुनपो = अपनापन। करि हाते = दूर करके। आपुनपो० = मुझे अपनेपन तथा स्वयं अपने से भी दूर

कौन घरी बिछुरे हौ सुजान जु एक घरी मन तें न बिछोहौ।
मोह की बात तिहारी असूझ, पै मो हिय कौं तौ अमोहियौ मोहौ ॥१४८॥
जा हित मात को नाम जसोदा सुबंस को चंद-कला-कुलधारी।
सोभा-समूह भई घनआनँद मूरति रंग-अनंग-जिवारी।
जान महा, सहजै रिझवार, उदार, बिलास मैं रासबिहारी।
मेरो मनोरथ हू बहियै, अरु हैं मो मनोरथ पूरनकारी ॥१४९॥

करके मार रहे हो। कौन० = न जाने कैसी विलक्षण घड़ी (मुहूर्त) में मुझसे बिछुड़े कि मन से एक घडी के लिए भी नहीं हटते। मोह = प्रेम। असूझ = अलक्ष्य, न जान पड़नेवाली। अमोहियौ = निष्ठुर होते हुए भी, निर्दय होकर भी।

[१४९] श्रीकृष्ण से भक्त अपने मनोरथ पूर्ण करने की प्रार्थना करता है। जा हित = जिसके कारण। जसोदा = यशोदा (यश देनेवाली)। जा हित० = जिन आप के कारण माता का नाम 'यशोदा' पड़ा। आप की माता का नाम 'यशोदा' आप के ही गुण के कारण पड़ा। चंद = चंद्रवंश (यदु लोग चंद्रवंशी थे)। कला = चंद्र की कला ; विद्या। सुबंस० = जिन आप के द्वारा वंश का नाम 'चंद्रवंश' पड़ा, जो सब प्रकार की कला को धारण करनेवाला हुआ। आप ही के प्रभाव से 'यदुवंश' 'चंद्रवंश' हुआ, जिसमें सब प्रकार के गुण दिखाई पड़े। जिससे संबंध हो जाय उसे आप महत्त्वशाली बना देते हैं। रंग० = अनंग-रंग को जिलानेवाली अर्थात् जगानेवाली। सोभा० = आप की मूर्ति शोभा के समूह से युक्त, अत्यंत आनंददायिनी और अनंग-रंग को जागरित करनेवाली (कामोद्दीपक) है। जान = सुजान ; ज्ञानवान्। सहजै = सहज में ही, थोड़े में ही। रिझवार = प्रसन्न हो जानेवाले। बिलास० = विलास के लिए रास में विहार करनेवाले, यदि कोई आप के सहवास का अभिलाषी हो तो आप तो रासविहारी तक बन जानेवाले हैं, लीलापुरुषोत्तम हैं। मनोरथ = अभिलाषा ; मनरूपी रथ। मनोरथ हू० = अपने भक्त अर्जुन के लिए उसका सारथी बनना स्वीकार किया है, उसका रथ वहन किया है। अतः आप मेरा भी मनोरथ वहन कीजिए, मेरी इच्छा पूर्ण कीजिए, उसे सिद्धि तक ले जाइए। अरु० = और मेरे मनोरथ भी पूर्ण करने लायक हैं (कोई बेढंगा मनोरथ नहीं कर रहा हूँ)। 'हू' अन्वय के द्वारा इसमें प्रत्ययगत व्यंजना का चमत्कार

अंक भरौं, चकि चौं कि परौं, कबहूँक लरौं, छिन ही मैं मनाऊँ।
देखि रहौं, अनदेखे दहौं, सुख सोच सहौं जु लहौं सुनि पाऊँ।
जान! तिहारी सौं मेरी दसा यह को समुझै अरु काहि सुनाऊँ।
यौं घनआनँद रैन-दिना न बिनीतत, जानियै कैसे बिताऊँ॥१५०॥
गई सुधि-अंग, भई मति पंग, नई कछु बात जतावति हौ न।
दुराव कियें कहा होत सखी! रँग और भयौ ढँग उत्तर कौ न।
हियें धरको, तन स्वेद जग्यौ, अरु ऐसी जँभानि की बानि हु तौ न।
बढ़ायहै बेदनि, साँच कहौ, घनआनँद जान चढ़े चित जौ न॥१५१॥

कवित्त

कहौं जौ सँदेसो ताको बड़ोई अँदेसो आहि,
न्हानै मन बारकी कहैऽब को सुनै सु कौन।

है। इस शब्द से ही अर्जुन की सारी कथा स्वतः आक्षिप्त हो जाती है।

[१५०] अंक० = गोद में भरती हूँ, आलिंगन करती हूँ। चकि० = आप नहीं हैं यह ध्यान आते ही चकपकाकर चौंक उठती हूँ। लरौं = कलह करती हूँ। छिन ही० = क्षण भर में ही। सुख० = यदि यह सुन लूँ कि आप मिल जायँगे तो सुखपूर्वक सारा सोच (दुःख) सह लूँ। सौं = शपथ। जानियै = आप ही समझिए।

[१५१] सखी ने नायिका का प्रेम लक्षित कर लिया है, वह नायिका से प्रश्न कर रही है। गई० = शरीर की सुध भूल गई। भई० = बुद्धि भी लँगड़ी हो गई, ठिकाने नहीं है। नई० = और तुम इतने पर भी कह रही हो कि मुझे कुछ हुआ ही नहीं, कोई नई बात ही नहीं। दुराव = छिपाव। रँग० = मुख का रंग दूसरा (विवर्ण, पीला) ही हो गया। उत्तर देने का कोई ढंग भी नहीं दिखाई देता। रंग-ढंग विलक्षण ही है, तुम्हारे पास इसका कोई उत्तर नहीं है कि ऐसा हुआ क्यों। धरको = धड़कन। स्वेद जग्यौ = पसीना हो रहा है। तौ न = थी नहीं। अरु० = जैसी जँभाई तुम ले रही हो ऐसी तुम्हारी बान कभी देखी नहीं गई। जौ न० = यदि कहीं। बढ़ायहै० = कहीं घनआनँद तो तुम्हारे चित्त पर नहीं चढ़े हैं, यदि कहीं ऐसा होगा तो वेदना बहुत बढ़ जायगी, अतः सच्ची सच्ची बातें बता दो।

निधरक जान अलबेले निखरक ओर,
दुखिया कहैऽब कहा तहाँ कौं उचित हौ न।
पर-दुख-दल के दलन कौं प्रभंजन हौ,
ढरकौं हैं देखि कै विवस वकि परी मौन।
इत की भसम-दसा लै दिखाय सकत जू,
लालन-सुवास सों मिलाय ह्वै सकत पौन ॥१५२॥

सवैया

मुख-नेह-रुखाई दिखाई, मरौं, इत की तौ चिन्हारि रही न उनै।
रचि कौन से घात लियौ है हियो, विन हेरें न जीव विचारि गुनै।

[१५२] अँदेसो = अंदेशा, खटका। आहि = है (अवधी)। वारे० = वारने की (बात)। कहैऽब = कहै अब। न्हानै = छुटपन से ही। कहैऽब० = मेरे मन वारने की बात (संदेश) अब कौन प्रिय से जाकर कहे और कौन सुने। सुनै० = ऐसा कौन है जो सुने। सु = सो, वह। निखरक = बेखटके रहनेवाले के प्रति मैं दुखी अब क्या संदेश भेजूँ। मैं संदेश अपने दुःख का ही दूँगी और यह वहाँ के लिए उचित नहीं होगा, क्योंकि मेरे दुःख के संदेश से उनकी निश्चिंतता में बाधा ही पड़ेगी। पर० = दूसरे के दुःख-समूह के नाश के लिए हे पवन! तू प्रभंजन (अंधड़) बनता है। दल = समूह : पत्ते। ढरकौं हैं० = ढलता हुआ, अनुकूल (पवन की प्रवृत्ति अनुकूल रहने की है)। मौन० = मैं तो मौन थी, पर तुझे अनुकूल देखकर विवश होकर बोल पड़ी। भसम = भस्म करनेवाली ; राख। लालन० = प्रिय की सुगंध लाकर उससे मिला भी सकते हो। तुम दोनों काम कर सकते हो, भस्म उड़ाकर ले भी जा सकते हो और सुगंध ला भी सकते हो। मेरी भस्म (दाहक) रूप दशा इस प्रकार वहाँ पहुँच सकती है और उनका पता मुझे मिल सकता है। 'गंध मिलना' मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है 'पता चलना'। यहाँ दुहरे अर्थ में इस मुहावरे का प्रयोग किया गया है।

[१५३] मुख-नेह = मौखिक स्नेह या मुखदेखा स्नेह। मुख० = तुम्हारे मुँहदेखे स्नेह (प्रेम, तेल) की रुखाई (उदासीनता ; रूखापन) दिखाई पड़ गई (विरोधाभास) इसी लिए मैं मर रही हूँ। चिन्हारि = जान-पहचान।

घनआनँद ऐसी दसानि विख्यौ दुखिया जिय सोचनि सीस धुनै ।
अब कैसी भई उन जान हई दई कूक करौं पै न कोऊ सुनै ॥१५३॥

कवित्त

अंतर मैं रहति निरंतर जगी सुजान,
तहाँ तुम कैसें सोइबे कौं घर कै रहे।
गुपत लपट जाकी तन ही प्रगट करै,
जतननि बाढ़ै, गुरु लोग अर कै रहे।
सीरी परि जात रोम रोम घनआनँद हो,
और याके कोटिक विकार भर कै रहे।
बारिद-सहाय सों दवागिनि दबति देखौ,
बिरह-दवागिनि तें नैना भर कै रहे ॥१५४॥

उनै = उन्हैं । इत की० = यहाँ की (मेरी) तो उन्हें जान-पहचान ही भूल गई है। घात = दाँव, छल । रचि० = न जाने कैसी घात रचकर मेरा हृदय ले (चुरा) लिया है। बिन० = आप को बिना देखे मेरा जी जीने का विचार ही नहीं करता । सीस० = सिर पीट रहा है। उन० = उन सुजान ने मुझे मार डाला । दई = दैव । कूक० = चिल्लाती हूँ, रोती हूँ ।

[१५४] अंतर० = हृदय के भीतर । जगी = विरह की दावाग्नि प्रज्वलित रहती है। तहाँ० = वहाँ आप सोने के लिए घर कैसे बना रहे हैं (जहाँ आग जगी रहती है वहाँ सोना विरोध है) । मैं तो आप के विरह में रोती कलपती रहती हूँ और आप सोए ही रहते हैं, मेरे विरह की आग या रोना-कलपना आप को प्रभावित नहीं कर पाता । गुपत० = उस दावाग्नि (शरीर के भीतर) की गुप्त लपटें शरीर से ही (उसके छूने मात्र से) जान पड़ती हैं (शरीर में इतना ताप है कि उसे छूकर ही भीतर की आग की कल्पना की जा सकती है) । जब बाहर यह दशा है तो भीतर न जाने क्या दशा हो । जतननि० = यत्न करने से यह उलटे बढ़ती है। गुरु० = बड़े बूढ़े लोग । अर० = इसे शांत करने के लिए अड़े हुए हैं, पर व्यर्थ । सीरी = ठंढी । सीरी० = (इस आग की विलक्षणता यह है कि) इसके कारण रोएँ रोएँ में ठंढक पड़ जाती है, मेरे रोएँ रोएँ में शिथिलता बढ़ती जा रही है, मैं ठंढी पड़ती जाती हूँ, मरी जा रही हूँ (आग

सवैया

जान छबीले कहौ तुम ही जौ न दीसौ तौ आँखिन काहि दिखाऊँ ।
सौन*-सुधाई सनी बतियानि बिना इन काननि लै कहा प्याऊँ ।
हाय मर्यौ मन पीर तें प्रीतम ! या दुखियाहि कहा परचाऊँ ।
चाहत जीव धर्यौ घनआनँद रावरी सौं कहूँ ठौर न पाऊँ ॥१५५॥
निसद्यौस उदास उसास धकौं न सकौं तजि आस बिसास जकी ।
घनआनँद मीत सुजान बिना अँखियान कौं सूझत एक टकी ।

में 'सीरी' विरोध है)। और० = और भी न जाने कितने ही (करोड़ों प्रकार के) विचित्र विचित्र रूप-रंगवाले इसके विकार मेरे शरीर में भर रहे हैं । वारिद० = बादल की सहायता (जलवृष्टि) से वह दावाग्नि शांत हो जाती है, किंतु यह विलक्षण दावाग्नि है, शांत होने की कौन कहे यह तो आप ही नेत्रों से आँसू बरसाती रहती है (विरोधाभास) ।

[१५५] न दीसौ = न दिखाई पड़ो । आँखिन = इन आँखों को किसे दिखाऊँ (यदि आप ही नहीं दिखाई पड़ते तो ये आँखें और किसे देखें) । सौन० = श्रवणामृत से सनी हुई आप की बातों के बिना इन कानों को और क्या पिलाऊँ (आप की बातों के बिना ये किसी दूसरे की बातें सुनना ही नहीं चाहते) । मर्यौ० = हे प्रियतम, मेरा मन वियोग की पीड़ा से मर रहा है । परचाऊँ = बहलाऊँ, लगाऊँ । या० = इस बेचारे दुखी मन को किस प्रकार बहलाऊँ । धर्यौ = धारण करना ; आश्रय लेना । चाहत० = मेरे प्राण किसी आश्रय को पाकर टिकना तो चाहते हैं पर उन्हें टिकाव के लिए कहीं स्थान (आश्रय) ही नहीं मिलता ।

[१५६] उसास = उच्छ्वास की गरम वायु से । धकौं = धिकती, जलती रहती हूँ । बिसास = विश्वासघात । बिसास० = विश्वासघात के कारण मैं स्तब्ध सी हो गई हूँ (फिर भी आशा नहीं छोड़ सकती) । एक टकी = केवल प्रिय का मार्ग देखने के लिए टकटकी लगाए रहना ही ध्यान में आता है और कुछ नहीं । इत की० = यहाँ की दशा, मेरी दशा । मन हो० =

* कौन ।

इत की गति कौन कहै को सुनै मन ही मन मैं यह पीर पकी।
भरियै किहि भाँति कहा करियै अब गैल सँदेसन हू की थकी ॥१५६॥
प्यारे सुजान के पानि को मंडन खंडन खेद*-अखंड-कला को।
ज्यौ सरस्यौ† जब ही दरस्यौ बरस्यौ घनआनँद हेत-झला को।
सूछम सो पै भर्‌यौ अतुलै सुख रंग विभौ जुग नैन-पला को।
प्रीतम लौं हिय राखत हाथ, बिछोह मै ज्यावत मोह छला को ॥१५७॥
घूमत सीस लगै कब पायनि चायनि चित्त में चाह घनेरी।
आँखिन प्रान रहे करि थान, सुजान! सुमूरति माँगत नेरी।

मन के भीतर ही यह पीड़ा परिपक्व हो गई है। भरियै० = व्यथा के ये दिन किस प्रकार काटूँ। कहा० = क्या करूँ। गैल = रास्ता, मार्ग। थकी = बंद हो गई।

[१५७] प्रिय के विदेश चले जाने पर उसकी अँगूठी प्रेमिका के पास रह गई है, उसे देखकर यह कह रही है। पानि = हाथ। मंडन = शोभित करनेवाला, गहना। खेद० = दुःख के पूर्ण प्रभाव को (नष्ट कर देनेवाला)। ज्यौ० = मेरे जी ने जब इसे देखा तो प्रसन्न हुआ, इसने प्रेम की झड़ी लगा दी। अतुलै० = जो तोला न जा सके, अत्यधिक। जुग = दो। पला = पलड़ा। सूछम सो० = है तो यह छल्ला (मुद्रिका, अँगूठी) छोटा सा ही पर इसमें दोनों नेत्ररूपी पलड़ों के लिए सुख-रंग का अतुल वैभव भरा हुआ है, नेत्र इसकी तोल कर ही नहीं पाते, वे इसका मूल्य बहुत अधिक आँकते हैं। प्रीतम० = प्रियतम की भाँति यह मन को हाथ में रखता है (बचाए हुए है) [अथवा प्रियतम की भाँति अपने हाथ से इसे हृदय से लगाए रखती हूँ]। बिछोह० = वियोग में अँगूठी का प्रेम ही जिला रहा है।

[१५८] घूमत० = मेरा यह चक्कर खाता हुआ सिर चाव के साथ कब उनके पैरों से जा लगे, केवल इसी की चित्त में प्रबल इच्छा है कि कब उनके चरण आएँ और मैं उनपर अपना सिर रखूँ। आँखिन० = केवल आँखों में ही प्राण रह गए हैं। इनमें ही सजीवता है, क्योंकि इन्हें आप के दर्शन की

* बैद, बेद। † तरस्यो।

रोम ही रोम परी घनआनँद काम की रोर न जाति निवेरी।
भूलनि जीतति आपुनपो वलि, भूलौ नहीँ सुधि लेहु सवेरी ॥ १५८॥
ललचौंहीँ लगौंहीँ, भईँ तुम सौंहीँ इतै अँखियाँ सुख-साध-भरीँ।
उत आप निकाई-निधान सुजान, ये बावरी ह्वै अरराय परीँ।
घनआनँद जीवन-प्रान सुनौ, बिछुरें मिलें गाढ़-जँजीर-जरीँ।
इनकी गति देखन-जोग भई जु न देखन मैं तुम्हैं देखि अरीँ ॥१५९॥

कवित्त

सुरति करौँ तौ बिसरे जौ होहिँ जान प्यारे,
वे तौ चित-चढ़े, रंग-मूरति सदा रहैं।

उत्कंठा है। ये आप की वह सुंदर मूर्ति अपने निकट माँग रही हैं, उसे देखती रहना चाहती हैं। रोर = शोर, हलचल। रोम ही० = काम की हलचल रोएँ रोएँ में हो रही है, इससे किसी तरह छुटकारा नहीँ मिल पाता। वलि = बलिहारी। सवेरी = शीघ्र [अथवा 'सुधि' का विशेषण मानें तो 'वह सुध जो शीघ्र ली जाय']। भूलनि० = आप का भूलना मेरा अपनापन भी जीत लेता है। (इस असंगति या विलक्षणता की) बलिहारी है, आप मुझे भूलें न, शीघ्र ही सुध लें। 'भूलनि०' में असंगति अलंकार व्यंग्य है—भूलते तो आप हैं और उसका प्रभाव मुझपर होता है (मैं अपनापन भूल जाती हूँ)।

[१५९] ललचौंहीँ० = इधर तो सुख के अभिलाप से भरी मेरी आँखें जो ललचने और लगनेवाली थीँ तुम्हारे संमुख हुईँ। उत० = उधर आप भी सौंदर्य के निधान (भांडार) दिखाई पडे। ये० = ये पगली होकर (आप को देखने के लिए) टूट पडीँ। बिछुरें० = बिछुडने और मिलने दोनों दशाओं में। गाढ = गाढी, कडी। जँजीर० = जंजीर से जकड़ गईँ, बंधन में पड़ गईँ। जीवन० = हे प्राणों के भी प्राण (प्राणप्रिय), ये संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं में घोर बंधन में पड़ी रहीँ। न देखन० = तुम्हें न देखते हुए भी। अरीँ = अड़ी हुई हैं। इनकी० = (संयोग की अवस्था तो बतला चुकी अब वियोग की अवस्था सुनिए) इनकी दशा तो देखने लायक हो रही है कि आप को प्रत्यक्ष न देखने पर भी ये आँखें आप को देखती हुई अड़ी रहती हैं—इनका यह तमाशा देखने ही योग्य है।

सुधि करैं वेई सुधि हू की ऐसी भूलि जाय,
बेसुधि किये से सुधि माँझ या प्रकार हैं।
गूढ़ गति ज्यौं विचे* की भूलियौ सुरति मोहिँ,
रातिद्योस छाए घनआनँद घटा रहैं।
सुधि कबहूँ न आवै भूलेऊ तनक नाहिं,
सुधि तिन ही मैं तेई सुधि मैं सदा रहैं ॥१६०॥

सवैया

जब तें तुम आवन-आस दई तब तें तरफौं कब आयहौ जू।
मन-आतुरता मन ही मैं लखौ मनभावन! जान सुभाय हौ जू।

---

[१६०] सुरति० = उनकी सुध तो मैं तब करूँ जब उन सुजान प्यारे को भूली होऊँ। वे तो क्रीडा की मूर्ति निरंतर चित्त में चढे ही रहते हैं, भूले जाते ही नहीं। सुधि करैं० = मेरी सुध की सँभाल वे (प्रिय) ही करते हैं, मुझे अपनी सुध की भी सँभाल नहीं रहती अर्थात् मुझमें सुध है ही नहीं, इसी में वे मेरी सुध की सँभाल ऐसी करते हैं कि मुझे अपनी भी सुध भूल जाती है। बेसुधि० = मेरी सुध में वे इस प्रकार रहते हैं कि मैं बेसुध रहती हूँ, ये रहते तो मेरी सुध में ही हैं पर मुझे बेसुध किए हुए। गूढ० = उनकी गूढ (रहस्यमय) चाल का विचार करने की सुध भी मुझे भूली हुई है, उनकी गूढ़ता को समझने की सुध-बुध मैं खो बैठी हूँ। राति० = पर वे आनंद-घन रातदिन मेरे मन में अपनी घटा छाए ही रहते हैं। यद्यपि मैं सुध-बुध खो बैठी हूँ तथापि वे मेरे चित्त में निरंतर विराजते रहते हैं। सुधि० = मुझे अपनी सुध कभी नहीं आती, पर वे थोडा भी भूले नहीं जा सकते हैं। सुधि तिन ही० = मेरी सुध उन्हीं में बसी है और मेरी सुध में वे ही बसे हुए हैं।

[१६१] मन-आतुरता० = मेरे मन की व्याकुलता अपने मन से ही अनुभव करके समझ लीजिए क्योंकि आप स्वभाव से ही चतुर हैं। बिधि० = प्रतीक्षा के ये क्षण ब्रह्मा के दिन की भाँति बढ गए हैं, एक एक क्षण बीतता नहीं। यह समझकर (इस पर विचार करके) आप शीघ्र से शीघ्र वियोग दूर

* धारिबे।

विधि के दिन लौं छिन वाढ़ि परे यह जानि वियोग वितायहौ जू।
सरसौ घनआनँद वा रस कौं जु रसा रस सौं वरसायहौ जू ॥१६१॥

अभिलापनि लाखनि भाँति भरीं वरुनीन रुमांच ह्वै काँपति हैं।
घनआनँद जान सुधाधर-सूरति चाहनि अंक मैं चाँपति हैं।
टग लाय रहीं पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोपहि झाँपति हैं।
जव तें तुम आवनि-औधि वदी तव तें अँखियाँ मग माँपति हैं ॥१६२॥

मग हेरत दीठि हिराय गई जव तें तुम आवनि-औधि वदी।
वरसौ कित हूँ घनआनँद प्यारे पै वाढ़ति है इत सोच-नदी।
हियरा अति औटि उदेग की आँचनि च्वावत आँसुनि मैन-मदी।
कव आयहौ औसर जानि सुजान वहीर लौं वैस तौ जाति लदी ॥१६३॥

तुम ही गति हौ तुम ही मति हौ तुम ही पति हौ अति दीनन की।
नित प्रीति करौ गुनहीनन सौं यह रीति सुजान प्रवीनन की।

करने का उपाय करेंगे। रसा = पृथ्वी। सरसौ० = हे आनंद-घन मेरे लिए तुरंत आकर उस रस (प्रेम; जल) की धारा वहाइए जिसे प्रेमपूर्वक आप पृथ्वी पर बरसनेवाले हैं।

[१६२] अभिलापनि० = लाखों प्रकार के अभिलाषों से भरी हुई। वरुनीन = बरौनियाँ जो खड़ी रहती हैं और हिलती हैं यही इन आँखों का रोमांच और कंप है। चाहनि = प्रेमपूर्वक। अंक मैं० = आलिंगन करती रहती हैं। टग० = टकटकी लगाकर। चकोर० = चकोर की उमंग को भी ढक लेती हैं, इनकी उमंग के आगे चकोर की उमंग दब जाती है (प्रतीप अलंकार)। वदी = निश्चित की, ठहराई।

[१६३] मग० = आप का मार्ग देखते देखते मेरी दृष्टि खो गई। कित हूँ = कहीं दूसरे स्थान पर। इत = मेरे यहाँ (असंगति अलंकार)। च्वावत = टपकाता है। हियरा० = हृदय को व्याकुलता की आँच में औटकर काम आँसुओं के रूप में मदिरा टपका रहा है। वहीर० = सेना का सामान। वैस = (वयस्) उम्र। लद जाना = बीत जाना (जैसे 'दिन लद गए, जमाना लद गया')। वहीर लौं० = उम्र तो सामान की भाँति लदी जा रही है (ढलती जाती है)।

बरसौ घनआनँद जीवन कौं सरसौ सुधि चातक छीनन की।
मृदु तौ चित के पन पै इत के निधि हौ हित के, रुचि मीनन की॥१६४॥
अति दीनन की, गतिहीनन की पतिलीनन की रति के मन हौ।
सब ही विधि जान, करौ सुखदान, जिवावत प्रान कृपा-तन हौ।
घनआनँद चातक-पुंजनि पोपन, तोपन रंक महा धन हौ।
जन-सोच-विमोचन, सुंदर-लोचन, पूरन-काम भरे पन हौ॥१६५॥

कवित्त (अनंगशेखर)

सदा कृपानिधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
अमान दान-मान हौ, समान काहि दीजियै।
रसाल सिंधु प्रीति के भरे, खरे प्रतीति के,
निकेत नीति-रीति के, सुदृष्टि देखि जीजियै।

---

[१६४] गति = आश्रय। पति = प्रतिष्ठा। जीवन = जल; प्राण। सरसौ = सरस करो, हरी भरी करो (सुध लो)। दीन = (क्षीण) दुर्बल। मृदु० = आप तो मनरूपी चातक के पन पर मृदु चित्त रखनेवाले, प्रेम के समुद्र तथा प्रभूत वृष्टि करके (नेत्ररूपी) मीनों की रुचि (इच्छा पूर्ण करनेवाले) हैं।

[१६५] गतिहीन = पंगु, लाचार। पतिलीन = जिनकी प्रतिष्ठा लीन हो गई हो, प्रतिष्ठाहीन। रति० = प्रेम के मन हो अर्थात् उनके प्रेम को समझनेवाले हो। कृपा-तन = मूर्तिमती कृपा हो। पोपन = पोषण करनेवाले (आनंद के बादल हो)। तोपन० = रंक को तोष देनेवाले अत्यधिक धन हो। जन० = सेवक या उपासक का दुःख दूर करनेवाले। पूरन० = पूर्ण-काम (जिसकी सब कामनाएँ पूरी हो गई हों)। भरे० = प्रतिज्ञा से भरे हुए, प्रतिज्ञा पालन करने में सच्चे, अपने बाने का निर्वाह करनेवाले।

[१६६] अमान = प्रमाण से परे या निरभिमान। दान० = दान को ही मान माननेवाले, भारी दानी। समान० = किससे आप की समता की जाय। रसाल = मधुर रस से भरे हुए (खारे नहीं)। खरे० = विश्वास के खरे, विश्वास के सच्चे। जीजियै = जीती हूँ। टगी० = आप को देखने की टकटकी लगी है। त्यौं = ओर। सु आप० = जरा अपनी ओर तो देखिए, अपने बड़प्पन का तो विचार कीजिए।

टगी लगी तिहारियै, सु आप त्यौं निहारियै,
समीप ह्वै विहारियै उमंग-रंग भीजियै।
पयोद-मोद छाइयै, विनोद को वढ़ाइयै,
विलंव छाड़ि आइयै किधौं वुलाय लीजियै ॥१६६॥

सवैया

चेटक रूप-रसीले सुजान! दई वहुतै दिन नेकु दिखाई।
कौंध मैं चौंध भरे चख हाय! कहा कहौं हेरनि ऐसैं हिराई।
वातैं विलाय गईं रसना पै हियो उमड्यौ कहि एकौ न आई।
साँच कि संभ्रम हौ घनआनँद सोचनि ही मति जाति समाई ॥१६७॥

कवित्त

जीवहि जिवाय नीकैं जानत सुजान प्यारे!
याही गुन नामहिँ जथारथ करत हौ।
चिरजीजै दीजै सुख कीजै मन-भायौ मेरौ,
मेरी अभिलाषन की निधि कौं धरत हौ।

पयोद-मोद = मोद का वादल; घनआनंद। 'अनंगशेखर' छंद में क्रम से लघु-गुरु वर्ण रखे जाते हैं। इसमें प्रायः १६ वार लघु-गुरु रखते हैं।

[१६७ अन्वय—रूप-रसीले सुजान! नेकु दिखाई वहुतै दिन चेटक दई। रूप० = हे रसीले रूपवाले सुजान, तुम ने थोड़ा सा दिखाई देकर (अपनी थोड़ी सी झलक दिखाकर) वहुत दिनों तक के लिए मेरे ऊपर जादू डाल दिया। कौंध = चमक। चौंध = चकाचौंध, तिलमिली। भरे = भर गए। चख = (चक्षु) नेत्र। हेरनि० = मेरी दृष्टि यों हा (बिना कुछ देखे ही) खो गई। हिय० = हृदय उमंगित तो हुआ पर जीभ से कुछ कहा नहीं गया। साँच = सत्य। संभ्रम = भ्रम मात्र, धोखा ही धोखा। सोचनि० = सोचने में ही वुद्धि विलीन होती जा रही है।

[१६८] जीवहि० = तुम जी को जिलाना भली भाँति जानते हो। जथा-रथ = सत्य, सार्थक। याही० = जी जिलाने के ही गुण से आप अपना नाम (सुजान—'जान' अर्थात् जी के लिए जो 'सु' = साधु अर्थात् अनुकूल हो) सार्थक करते हैं। चिरजीजै = चिरंजीवी होओ। निधि = खजाना, थाती। सफल = फलयुक्त;

चाह-बेली-सफल-करन घनआनँद यौं,
रस दै दै उर-आलवालहि भरत हौ।
प्यारे ! सौं छकौंहीं ढरकौंहीं मृदु बानि-बस,
बिबस ह्वै आप ही तें मो पर ढरत हौ ॥१६८॥

सवैया

गुन-चाहनि कों चित चाहत है चख-चाहनि ठौरहि पावति ना।
अभिलाषनि लाखनि भाँति भरे हियरा-मधि, साँस सुहावति ना।
घनआनँद जान तुम्हैं बिन यों गति पंगु भई मति धावति ना।
सुधि दैन कही सुधि लैन चही सुधि पाएँ बिना सुधि आवति ना॥१६९॥

कवित्त

रसिक रसीले हौ छबीले गुन-गरबीले,
रंगनि ढरीले हौ छकीले मद-मोह तें।
जीवन-बरस घनआनँद दरस आछो,
सरस परस सुख सींच्यौ हँसि जोहतें।

पूर्णमनोरथ। रस = जल ; प्रेम। आलवाल = थाला। छकौंहीं = छका देनेवाली। ढरकौंहीं = ढरकनेवाली, अनुकूल होनेवाली ; नीचे की ओर ढुलकनेवाली (मेह या जल के पक्ष में)। बिबस० = मैं आप को पाने की अधिकारिणी नहीं हूँ, पर आप अपने मृदु स्वभाव से विवश होकर मुझपर स्वयं अनुकूल हो जाते हैं।

[१६९] चाहनि० = देखने के लिए। चाहनि = दृष्टि। चख० = दृष्टि को कोई वस्तु देखना नहीं रुचता। साँस० = साँस लेना नहीं रुचता। गति० = हिलना-डुलना भी कठिन है। मति० = बुद्धि काम नहीं करती। सुधि० = आप ने अपनी सुध (समाचार) देने की बात कही थी, मैंने भी आप की सुध (पता) लेनी चाही। इसीलिए आप की सुध (खोज) मिले बिना मुझे सुध (होश, चेतना) नहीं आती (मैं अचेत ही रहती हूँ)।

[१७०] रंगनि० = रंग में ढले हुए, रंग से भरे हुए। छबीले० = प्रेम के मद से छके हुए, प्रेम के नशे में चूर। जीवन = जल ; प्राण। बरस = वर्षा। सरस = आनंदप्रद। परस = स्पर्श। सुख० = हँसकर मेरी ओर निहारते हुए आप ने मुझे सुख से सींच दिया था। अचिरजनिधि = आश्चर्य के भांडार।

अचिरजनिधि ! हौँ तिहारी सब बिधि, प्यारे !
कृपा होति, फलति ललित लता छोह तेँ ।
मिलन तेँ ज्यौँ ही बिछुरन करि डाखौ, वारी
त्यौँ ही किन कीजै हाहा मिलन बिछोह तेँ ॥१७०॥

सवैया

कहा कहियै सजनी रजनी-गति, चंद कढ़ै कि जियैँ गहि काढ़ै ।
अमीनिधि पै बिष-सार स्रवै, हिम-जोति जगाय कै अंगनि डाढ़ै ।
सु या पति-संग न जानति, है घनआनँद जान-बिछोह की गाढ़ै ।
बियोग मैँ वैरिनि बाढ़ति जैसी, कछू न घटै, जु सँजोग हूँ बाढ़ै ॥१७१॥
जान सुखारे रहौ, रहि आए हौ, होति रही है सदा चित-चीती ।
हैँ हम ही धुर की दुखहाई बिरंचि बिचारि कै जाति रची ती ।

हौँ० = मैँ सब प्रकार से आप की ही हूँ । कृपा० = यदि आप की मुझपर कृपा हो जाय तो आप के प्रेम से (प्रेम पाकर) मेरी जीवन-लता भली भाँति सफल हो जाय, मेरा जीवन सार्थक हो जाए । ज्यौँ ही = जिस तरह । वारी = मैँ बलिहारी जाती हूँ । किन० = क्योँ नहीँ करते ।

[१७१] रजनी० = रात की दशा (कष्ट) । जियैँ = जी को ही । गहि० = पकड़कर निकाल लेता है । अमीनिधि० = चंद्रमा अमृत का भंडार (सुधाधर) होकर भी विष का सार टपका रहा है । हिम-जोति० = शीतल ज्योतिवाला होने पर भी । जगाय कै = प्रकाशित करके । डाढ़ै = जलाता है । या = इस रात्रि को । पति० = पति के साथ (संयोग मैँ) यह पता ही नहीँ चलता था कि कब रात आई और कब निकल गई । है० = पर इस समय प्रिय के वियोग (की विपत्ति के) कारण यह कठिनता से बीतती है । बैरिनि = यह रात्रि । कछू० = मेरा कुछ भी न घटे, कोई हानि न हो । जु० = यदि संयोग मैँ भी यह ऐसी ही बढ़े ।

[१७२] सुखारे = सुखी । रहि० = सुखी ही रहते आए हो । चित० = मनचाही । धुर की० = अत्यधिक । दुखहाई = दुःख की मारी । बिरंचि = ब्रह्मा ने । जाति० = स्त्री की जाति । रची ती = बनाई थी [अथवा—ती जाति रची = स्त्री की जाति बनाई] । मन दै = मन लगाकर, भली भाँति । अनीती =

प्रान-पपीहन के घन हौ, मन दै घनआनँद कीजै अनीती।
जानौ कहा अनुमानौं हियें, छिन की गति कौं, सुख सौं नित बीती॥१७२॥
जित चाहत हौ तित जाय मिलै, चित रावरो कोबिद-केलि-कला।
जिनकौं तुम भोरि बिसास करौ सु न साँस भरै बपुरी अबला।
घनआनँद जान! रहौ उनए से, नए बरसौ नित नेह-झला।
नटनायक लायक मायक हौ गति पाय परै न तिहारी लला॥१७३॥

कवित्त

मेरो चित्त चाहै घनआनँद सुजान कौं पै
ढकी लाग-आग की लपेटैं जीव ही सहै।
वे तौ गौं-गवेले, हौं गहाऊँ सो न गहैं गैल,
रहैं छैल भए नए लेस ताहू को न है।

अनीति, अन्याय। जानौं० = आप क्या जानें और किस प्रकार हृदय में अनुमान ही कर सकें। छिन० = प्रेम की दशा। सुख० = आप की तो सदा सुख से ही बीतती आई है।

[१७३] चित० = आप का चित्त केलि की कला में प्रवीण है। भोरि = भुलावे में डालकर। बिसास = विश्वासघात। न साँस० = साँस भी नहीं ले सकती, निर्जीव हो जाती है। बपुरी० = बेचारी स्त्री, प्रेमिका। उनए से० = छाए हुए से। नए = झुके हुए [अथवा नवीन]। नेह० = प्रेम की झड़ी। नटनायक = नटनागर, नटों में शिरोमणि। लायक = योग्य, प्रवीण। मायक = मायावी। गति० = आप की चाल का पता ही नहीं चलता। लला = प्रिय।

[१७४] घनआनँद = आनंद के बादल, शीतलता देनेवाले। ढकी = छिपी, भीतरी। लाग० = प्रेम की आग। लपेटैं = झकोरों को। जीव० = जी ही सहता है। गौं-गवेले = अपनी घात से चलनेवाले। हौं० = मैं जो रास्ता पकड़ाती हूँ उस रास्ते से नहीं चलते। रहैं० = वे नए छैला बने घूम रहे हैं। लेस० = उनमें तो प्रेम का लेश भी नहीं है। पातनि० = वे तो पत्तों को देखते हैं, जड़ को भूले हुए हैं और व्यर्थ फूले फूले घूमते हैं (उनमें सच्चा प्रेम नहीं है, वे केवल ऊपर की शोभा देखनेवाले हैं, हृदय को देखने या पहचाननेवाले

पातनि तकत मूल भूले फिरैं फूले वृथा,
आली! वनमाली जू के फल की कहा कहै।
आवरी ह्वै बावरी तू तावरी परति काहे,
ते ह्वाँ घर बसे, ह्याँ उजारि बसि को रहै ॥१७४॥

उघरि दुरे हौ, नीकैं मिलन उरे* हौ, गाढ़े
रंगनि घुरे हौ घनआनँद सुजान जू।
उर बैठि दाहत हौ, चाहनि सैं चाहत हौ,
घात ही निबाहत हौ प्रानन के प्रान जू।
हँसि हँसि रवावत हौ, छाँहौं नहीं छ्वावत हौ,
जागि जागि स्वावत हौ आपै हू ते आन जू।
सूझत हौ बूझत हौ चाहत हौ भाखत हौ,
रहत हौ राखत हौ मौन हौ बखान जू ॥१७५॥

नहीं)। फल० = उनके फल (कार्यकलाप के परिणाम) की क्या बात। आवरी = व्याकुल। बावरी = पगली। तावरी० = मूर्छित क्यों होती है। ते० = वे तो वहाँ घर बसा रहे हैं, दूसरे से प्रेम कर रहे हैं। ह्याँ० = यहाँ उजाड़ में बसकर कौन रहे? इस दुःख की दशा मुझसे अब तो नहीं सही जाती।

[१७५] उघरि० = एक बार अपनी छटा दिखाकर छिप गए हैं। उरे = पृथक्, दूर। नीकैं० = मिले हुए भी दूर हैं। गाढे० = गाढे रंग में घुले हो, बड़े गहरे दाँव-घातवाले हैं। उर० = हृदय में पैठकर जलाते हैं। चाहनि० = देखने में प्रेम करते से जान पड़ते हैं (पर वस्तुतः आप में प्रेम है नहीं। ऊपरी प्रेम दिखाते हैं)। घात० = अपना दाँव ही साधते रहते हैं। हँसि० = स्वयं हँस-हँसकर हमें रुलाया करते हैं। छाँहौ० = अपनी छाया भी नहीं छूने देते, आप के मन का कुछ भी पता नहीं चलता। जागि० = स्वयं जगकर (सतर्क रहकर) दूसरों को सुलाते (बेसुध किए) रहते हैं। आपै० = अपनत्व से भी पराए बने रहते हैं। अपने को भी नहीं पहचानते। सूझत० = दिखाई देते हैं और दूसरे को देखते हैं, स्वयं समझते हैं और समझकर कहते हैं। रहत० =

* दुरे।

सवैया

नीके नए अति जी के लगौंहे सुधारे हैं तून प्रसून के सायक।
चौगुनी चोपनि तैसोई चाप चहौरि दै हाथ सज्यौ भटनायक।
पौन-तुरंग चढ्यौ वनि यौं वनितानि अहेरें कढ्यौ दुखदायक।
हौ घनआनँद जान कहाँ रितुराज भयौ रतिराज-सहायक ॥१७६॥

नित लाज-भरे हित-ढार-ढरे, निखरे-सुखरे सुखदायक हौ।
घनआनँद झूमि कटाछिन सौं, रसपान-तृषाहि सहायक हौ।
जिय-बेधन कौं अनियारे महा, पै सुधाहि सु धारन लायक हौ।
घिरि घूँघट पैठत जान हियें निपटै निबटै नटनायक हौ ॥१७७॥

सब ठौर मिले. पर दूरि रहौ, भरिपूरि रहे जिहि रंग भिलौ।
इहि लायक हौ वहौ* नायक हौ सुखदायक हौ, पुनि पाय खिलौ।

स्वयं रहते भी हैं और दूसरे को रखते भी हैं। मौन० = क्या कहूँ आप का बखान तो मौन ही है, आप का वर्णन कर सकना संभव नहीं। आप के हृदय का पता लगा लेना बहुत कठिन है। आप अनिर्वचनीय हैं।

[१७६] नीके = अच्छे, जो टूटे नहीं हैं। अति० = हृदय पर गहरी चोट करनेवाले। सुधारे० = तरकस में सजाकर रख लिए हैं। प्रसून० = फूलों के बाण। चाप = धनुष। चहौरि दै = सहेजकर, सँभालकर। भटनायक = योद्धाओं का नेता बनकर। पौन० = वायुरूपी घोड़े पर। वनि = बन-ठनकर, सज-धज के साथ। वनितानि० = स्त्रियों का शिकार करने के लिए। कढ्यौ = बाहर निकला है। रितुराज = वसंत। रतिराज = कामदेव।

[१७७] नेत्रों का वर्णन है। हित० = प्रेम की ढार से ढलनेवाले। निखरे० = साफ-सुथरे, स्वच्छ। झूमि० = कटाक्षों के मद से झूमनेवाले। रस-पान० = रसपान की प्यास बढ़ानेवाले हो (देखने पर देखने की इच्छा बढ़ती है)। बेधन० = छेदने के लिए। अनियारे = अनीवाले, तीखे। सुधा० = सुधा धारण करनेवाले बाण। घिरि० = घूँघट से घिरे रहने पर भी। जान = प्रिय। हियें = हृदय में। निपटै = अत्यंत। निबटै = पूरे, पहुँचे हुए।

* बहु।

घनआनँद मीत सुजान सुनौ कहूँ ऊखिल से कहूँ हेत हिलौ।
हम और कछू नहिँ चाहति हैं छिन कौँ किन मानस-रूप मिलौ ॥१७८॥
हिय की गति जानन-जोग सुजान हौ कौन सी वात जु आहि दुरी।
पटक्योई* परै यह अंकुर आँसलो† ऐसी कछू रस-रीति घुरी।
बिछुरै कित सांति मिलैँ हू न होति, छिदी छतिया अकुलानि-छुरी।
तुमही तिहि साखि‡ सुनौ घनआनँद प्यार निगोड़े की पीर बुरी ॥१७९॥
नाहिँ पुकार करै सुनि आहिन, को कित है केहि दोष लगैयै।
संगम पै बिछुरे मरियै, यहि भाँतिन क्यौँ जियराहि जरैयै।

---

[१७८] मिले = मिले रहने पर भी। भरि० = भली भाँति घुल-मिल जाते हो। झिलौ = लीन हो जाते हो। वहौ० = उस पर भी आप स्वामी हैं। पुनि० = फिर आप को पाकर खिलूँ, सुखी होऊँ। ऊखिल = अपरिचित (व्रज की बोलचाल का शब्द), अजनबी, पराए, बेगाने। हेत० = प्रेम करते हो। कहूँ० = कहीँ तो अपरिचित बने रहते हो और कहीँ प्रेम ठानते हो। छिन कौँ = क्षण भर के लिए ही। मानस-रूप = मेरे मन मैँ आप का जैसा रूप है, मैँ जिस रूप मॅ आप को चाहती हूँ, मेरी जैसी भावना है।

[१७९] दुरी = छिपी। पटक्योई० = फूटा पड़ता है, निकल रहा है। आँस = वेदना, पीड़ा। आँसलो = वेदनावाला [अथवा आसलो = असली]। ऐसी० = हृदय मैँ रस (प्रेम ; जल) की आर्द्रता ऐसी घुल रही है कि वेदना का अंकुर फूटा पड़ रहा है। बिछुरैँ० = वियोग की क्या बात, मिलने पर भी शांति नहीँ मिलती, संयोग और वियोग दोनोँ मॅ अशांति ही बनी रहती है। छिदी० = व्याकुलता की छुरी से हृदय छिद गया है। साखि = साक्षी।

[१८०] नाहिँ० = कोई ऐसा नहीँ दिखाई पड़ता जो मेरी आहोँ को सुनकर उन पर ध्यान दे। को० = कौन कहाँ है (कोई नहीँ), दोष भी दूँ तो किसे दूँ। संगम = हृदय मॅ आप का संयोग रहने पर भी वियोग से मर रही हूँ। ओटनि० = आप के ओट मैँ रहने (परोक्ष होने) की मार से। हो = खेदव्यंजक अव्यय। मो० = इस प्रकार यदि भीतर रहते हुए भी मुझसे पृथक् रहते हैँ तो

* टपक्योई। † ओस लौँ। ‡ साधि।

ओटनि-चोटनि चूर भयौ चित, मो बिन हो किन बाहिर ऐयै।
है घनआनँद मीत सुजान कहा अब हेत-सुखेत सुखैयै ॥१८०॥

आवत ही मन जान सजीवन ऐसो गयौ जु करी नहिँ लौटनि।
द्यौस कछू न सुहाय सखी, अरु रैनि बिहाय न हाय करौटनि।
अंग भए पियरे पट लौँ मुरझै बिन ढंग अनंग सरौटनि।
हौ सुचितै घनआनँद पै हमैं मारति है बिरहागिनि औटनि ॥१८१॥

कैसे करौँ गुन-रूप-बखान सुजान छबीले भरे-हिय-हेत हौ।
औसर-आस लगे रहै प्रान, कहा बस जौ सुधि भूलि न लेत हौ।
चेटक हौ सब भाँतिन जू घनआनँद पीवत चातिक-चेत हौ।
रावरी रीझि न बूझि परै तनकौ मिलि क्यौँ बहुतै दुख देत हौ ॥१८२॥

जान हौ पै जू जनाहु कहा, न गए कित हूँ जू कहौँ इत आयहौ।
दीसौ दुरे उर दाहत क्यौँ उर तैं कढ़ि यौँ उर मैं कब छायहौ।

बाहर आकर प्रत्यक्ष ही क्यौँ नहीँ दिखाई पड़ते। सुखैयै = आनंद के घन और 'सुजान' होकर आप प्रेम का खेत क्यौँ सुखा रहे हैँ।

[१८१] आवत० = आते ही, मन आया ही था कि ('मन आना' मुहावरा है—'किसी पर मन का मुग्ध हो जाना')। करी० = फिर लौटा ही नहीँ, गया सो गया। रैनि० = करवटेँ बदलती रहती हूँ, रात किसी प्रकार बीतती ही नहीँ। पट० = (पीले) वस्त्र की भाँति (शरीर पीला पड गया है)। मुरझै० = (शरीररूपी पट मेँ) काम की बेढंगी शिकनेँ पड़ गई हैँ, वह मुरझा गया (मलिन हो गया) है। सुचितै० = निश्चित, बेपरवाह। औटनि = ताप से।

[१८२] औसर० = मिलन के अवसर की आशा मेँ। कहा० = मेरा इसमैं क्या वश जो आप भूलकर भी मेरी सुध नहीँ लेते। चेटक = मायावी। चातिक० = चातक की सारी चेतना पी लेते हो, उसे बेसुध कर देते हो। रीझि = रुचि। न० = समझ मेँ नहीँ आती। तनकौ = थोड़ा सा भी।

[१८३] जान० = आप हैँ तो 'जान' (जाने हुए), पर आप जाने कहाँ जाते हैँ, आपकी बातोँ को जान लेना बहुत कठिन है। न गए० = आप कहीँ गए भी नहीँ हैँ (हृदय मेँ ही बसे हैँ, यहीँ के यहीँ हैँ) फिर यह कैसे कहूँ कि आप यहाँ आएँगे। दीसौ० = आप तो हृदय मेँ ही छिपे दिखाई (जान)

मोसौं बिछोह कै मोहिं मया करि मो मधि रावरे सूधे सुभाय हौ।
ऐसी बियोग-दवागिनि कौं घनआनँद आय सँजोग सिरायहौ ॥१८३॥
प्राननि प्रान हौ, प्यारे सुजान हौ, बोलौ इते पर पीरक हौ क्यौं।
चेटक-चाव दुरौ उघरौ, पुनि हाथ लगे रहौ न्यारे गहौं क्यौं।
मोहन रूप सरूप-पयोद सौं सींचहु जौ, दुख-दाह दहौ क्यौं।
नावँ धरे जग मैं घनआनँद नावँ सम्हारौ तौ नाँव सहौ क्यौं ॥१८४॥

कवित्त

वेई कुंज-पुंज जिन तरें तन बाढ़त हो,
तिन छाँह आएँ अब गहन सो गहिगो।

पड़ते हैं, पर हृदय जलाते क्यों हैं? उर तँ० = इस प्रकार हृदय का जलाना त्याग कर, हृदय से बाहर आकर कब फिर हृदय पर (सुखद रूप होकर) छाएँगे। आप हृदय में बसना छोड़कर प्रत्यक्ष दर्शन देंगे और आप की वह मन को भानेवाली मूर्ति मेरे मन में कब बसेगी। मोसौं० = मुझसे वियुक्त होकर अब तो मुझपर कृपा करें क्योंकि मेरे ऊपर आप का सदा सीधा (अनुकूल) ही स्वभाव है। सँजोग = अपने संयोग द्वारा। सिरायहौ = ठंढी करेंगे।

[१८४] प्राननि० = आप मेरे प्राणों के भी प्राण हैं और सुजान (प्रवीण) भी हैं। बोलौ० = कहिए इतने पर भी पीड़ा पहुँचानेवाले क्यों हैं। चेटक = जादू के खेल, क्रीड़ा। चेटक० = अपनी क्रीड़ा की उमंग में ही आप कभी छिप जाते हैं और कभी प्रकट हो जाते हैं। पुनि = इसके अतिरिक्त या इसी कारण। हाथ० = आप हाथ में आए हुए भी पृथक् क्यों रहते हैं, आप को पकड़ भी पाऊँ तो किस प्रकार। मोहन० = मोहनेवाले रूप से और सुरूप के बादल से। सींचहु० = यदि मोहन रूप से सींचते हैं तो फिर जलाते क्यों हैं। नावँ० = आप ने संसार में अपना घन-आनंद (आनंद के बादल) नाम रखा है। यदि आप अपने नाम को सँभालें, उसके अनुकूल ही आचरण करें, तो बदनामी क्यों हो।

[१८५] वेई० = वे ही कुंज हैं जिनके नीचे (संयोग के समय) आने पर शरीर बढ़ता (प्रफुल्ल होता) था। तिन० = अब (वियोगावस्था में) उन्हीं कुंजों की छाया के नीचे आने से। गहन = ग्रहण। ग्रहण में भी छाया आती

सुरति-सुजान-चैन-वीचिन सों सींची जिन,
यही जमुना, पै हेली! वह पानी बहिगौ।
वहै सुख-स्रम-स्वेद-समै को सहाय पौन,
नाहिँ छियै देह, दैया महा दुख दहिगौ।
वेई घनआनँद जू जीवन कौं देते, तिन ही
को नाम मारिनि के मारिबे कौं रहिगौ ॥१८५॥

इतै अनदेखें देखिबेई जोग दसा भई,
तैं तो अनाकानी ही सों बाँध्यौ दीठि-तार है।
जान घनआनँद बिनाऽव* सुबनक हेरैं,
धीरज हिरात सोच सूखत बिचार है।

है, अतः उसे भी 'छाया' कहते हैं। तात्पर्य यह कि पहले वह छाया सुखद थी अब ग्रहण की छाया (दुःखद) हो गई है। सुजान० = जिस नदी (यमुना) ने (तब) सुजान (प्रिय श्रीकृष्ण) की उन आनंद-तरंगों से कभी सींचा था, उसी का जो पानी प्रिय के संयोग से आनंद की लहरें उठाया करता था, वही पानी यमुना पर से अब बह सा गया, वह दुःखद हो गई है। हेली = हे अली, हे सखी। सुख० = सुख के श्रम-स्वेद-काल का सहायक वही पवन (संयोग में पसीने की बूँदें निकलने से जो पवन शरीर में शीतल लगता था, सुख-स्पर्श था)। छियै = (बुंदेलखंडी) छूता है। नाहिँ = अब वह मेरे शरीर को छूता ही नहीं, वह अत्यंत दुःख देकर मुझे जलाया करता है। मारिनि = मारी हुई को। वेई० = वे ही घन (बादल; प्रिय, घनआनंद) हैं जो पहले जीवन (जल; प्राण) देते थे, पर अब तो उनका नाम मारी हुई को मारने के ही लिए रह गया है।

[१८६] अनदेखें० = आप को न देखकर यहाँ तो मेरी दशा देखने योग्य हो गई, (विपरीत लक्षणा से) देखने योग्य ही नहीं रह गई, अत्यंत क्षीण, दीन, मलिन हो गई हूँ। तैं तो = वहाँ आप ने आनाकानी ही से अपनी दृष्टि का तार बाँध रखा है, आनाकानी करने पर ही तुले हैं। सुबनक = सुंदर छटा।

* बनाव, बिनाई।

छीन अति दीनन कौं मोहन अमोही रच्यौ,
महा निरदई हमैं मिल्यौ करतार है।
तेरें बहरावनि रुई है कान बीच, हाय
बिरही बिचारिनि की मौन में पुकार है ॥१८६॥

सवैया

मोहिँ निहोरिहै तू जु घरीक मैं, मेरो निहोरिबोई किन मानति।
जासौं नहीं ठहरै ठिक मान को, क्यौं हठ कै सठ रूठनो ठानति।
कैसी अजान भई है सुजान हे, मित्र के प्रेम-चरित्र न जानति।
सो मुरली घनआनँद की तिनि तान भरी, कित भौंहनि तानति ॥१८७॥

धीरज० = न धैर्य रहता है न विचार, केवल सोच ही सोच रह जाता है। छीन० = हमारे ऐसे क्षीण तथा अत्यंत दीनों के लिए मोहन नामवाले अमोही (प्रिय) को (ब्रह्मा ने) बनाया। महा० = कर्ता (ब्रह्मा) तो मेरे लिए अत्यंत निठुर है। बहरावनि = बहलाना, व्याज करना, आनाकानी करना, अथवा बहरा बनना। तेरें० = तूने तो बहरेपन की रुई अपने कानों में लगा रखी है। तू हमारी बातों को सुनना ही नहीं चाहता और इधर हम विरहियों की पुकार मौन में ही है, मौन ही हमारी दशा व्यक्त करता है। आप हमारी व्यथा सुनना नहीं चाहते और हम सुनाकर आकृष्ट नहीं करना चाहते, चुपचाप सह रहे हैं।

[१८७] मानवती प्रेमिका के प्रति। मोहिँ = घड़ी भर में तू (प्रिय से मिलाने के लिए) मेरी खुशामद करेगी (घड़ी भर में ही तेरा यह मान छूट जायगा और प्रिय से मिलने के लिए तू व्याकुल होगी) इसलिए तू मेरी ही खुशामद क्यों नहीं मान लेती (मेरे कहने से रूठना छोड़ दे)। ठिक = स्थिरता। सठ = बुरा, कड़ा। जासौं० = जिन (प्रिय, श्रीकृष्ण) के प्रति मान की स्थिरता (अधिक समय तक) टिक नहीं सकती उनसे कठोर हठ करके मान क्यों ठान रही है। हे = ऐ। कैसी० = तू सुजान (जानकार) होकर भी कैसी अनजान बन रही है। तू प्रिय के प्रेम के चरित्र (प्रेमलीलाएँ) जानती नहीं। घनआनँद = घन से आनंददायक; घनश्याम, श्रीकृष्ण। सो० = श्रीकृष्ण की वह मुरली सदैव तान से भरी रहती है, उसकी तान के

कहौ कछु और, करौ कछु और, गहौ कछु और, लखावत औरै।
मिलौ सब रंग कहूँ नहिं संग, तिहारी तरंग तकै मति बौरै।
गढ़ौ बतियानि, मढ़ौ घतियानि, डढ़ौ छतियानि, निदान की ठौरै।
महा छल छाय, खुले हौ बनाय, कितै घनआनँद ! चातक दौरै ॥१८८॥

व्रजनाथ कहाय अनाथ करी, कित है हित-रीति में भाँति नई।
न परेखौ कछू, पै रह्यौ न परै, ठकुराइति-प्रीति अनीतिमई।
घनआनँद जानहिं को सिखवै, सुखई रस सींचि जु बेलि बई।
सुधि-भूल सबै हिय सूल सलै हम सों हरि ऐसे भए ए दई ॥१८९॥

सामने तेरा भौंह तानना अधिक समय तक ठहर न सकेगा, फिर क्यों ऐसा कर रही है।

[१८८] गहौ० = लिए कोई दूसरी वस्तु रहते हैं और दिखाते कुछ दूसरी ही हैं। मिलौ० = सब प्रकार के रंगों में मिले भी रहते हैं और आप पर कोई रंग चढ़ता भी नहीं। तिहारी० = आप की मौज देखने से तो बुद्धि ही पगली हो जाती है। निदान = रोग के कारण का निर्णय, रोग की पहचान। गढ़ौ० = जहाँ रोगी के रोग की पहचान करनी चाहिए वहाँ आप बातें बनाते हैं, घातें साधते हैं और (उलटे) छाती जलाते हैं। महा छल० = भारी छलों से ढके हुए होने पर भी आप का रूप भली भाँति खुल गया है, आप के छल ने आप का रूप ठीक ठीक बतला दिया है (विरोधाभास)। कितै० = चातक बेचारा किधर दौड़कर जाय, हे घन ! उसके लिए आप की शरण के सिवा दूसरा आश्रय है ही कहाँ।

[१८९] व्रजनाथ० = सारे व्रज के नाथ होकर भी मुझ अकेली को उन्होंने अनाथ कर दिया। कित० = प्रीति की रीति में यह नया ढंग कैसा। न परेखो० = मुझे इसका कोई पछतावा नहीं, पर चित्त से रहा नहीं जाता। बड़े लोगों की प्रीति ही अनीतिमय होती है। जानहिं = सुजान को। सुखई० = उन्होंने रस (जल ; प्रेम) से सींचकर जो लता बोई (लगाई) थी उसे सुखा डाला। सुधि० = सब प्रकार से हमारी सुध का भूल जाना ही। हिय = हृदय के भीतर। सूल सलै = पीड़ा करती है, खटकती है।

कवित्त

वासर बसंत के अनंत ह्वै कै अंत लेत,
ऐसे दिन पारै जु निहारै जिय राति है।
लतनि की फूलनि तमालनि पै भूलनि कौं,
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है।
प्यारे घनआनँद सुजान ! सुनौ बाल-दसा,
चंदन-पवन तें पजरि सियराति है।
औसर सम्हारौ न तौ अनआयबे के संग,
दूरि देस जायबे कौं प्यारी नियराति है ॥१६०॥

दोहा

गोरी ! तेरे सरस दृग, किधौं स्याम-घन आप।
दावानल सो पान ये करत बिरह-संताप ॥१६१॥

---

[१६०] वासर = दिवस, प्रकाशयुक्त दिन। अनंत = अंतहीन, जिनकी समाप्ति ही न हो। अंत० = अंत कर देते हैं, मारे डालते हैं। दिन० = दिन ला देना, बुरे दिन कर देना। राति = रात, अंधकार। ऐसे० = वसंत के वे दिन ऐसे बुरे दिन ला देते हैं कि हृदय चारो ओर रात ही रात का अनुभव करता है (अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है)। फूलनि = फूलना। भूलनि = नए नए पत्तों से झलराना, हराभरा होना। पियराति० = पीली पड़ती जाती है। बाल = प्रेमिका। चंदन० = चंदन की ओर से आनेवाली वायु, मलयानिल, दक्षिणी पवन, शीतल समीर। पजरि = प्रज्वलित होकर, जल-भुन कर। सियराति० = ठंढी पड़ी जा रही है। औसर० = इस स्थिति पर विशेष ध्यान दीजिए। अनआयबे० = आप के न आने के साथ ही। दूरि० = दूर देश (परलोक) जाने के वह निकट हो रही है (विरोधाभास), मरने के निकट पहुँचती जा रही है।

[१६१] गोरी० = ऐ गौरवर्णी, ये तेरे रसीले नेत्र हैं या स्वयं घनश्याम ही हैं। क्योंकि ये विरह का संताप श्रीकृष्ण बनकर दावाग्नि की भाँति पी रहे हैं (श्रीकृष्ण ने दावाग्नि पी ली थी)।

सवैया

घनआनँद-रूप सुजान सनेही पै, आपु ही आपुन-त्यौं बरसौ ।
इत मो मधि मेरियै रीति रचौ, उत वाहि निबाहिनि सों सरसौ ।
रमनायक मायक, लायक हौ, कितहूँ झर लाय कहूँ तरसौ ।
अब हौं जु कहौं सु नौ दूसरे कों तुम ही सब रंग मिले दरसौ ॥१९२॥
इक तौ जग-माँझ सनेही कहाँ,पै कहूँ जो मिलाप की बास खिलै ।
तिहिं देखि सकै न बड़ो विधि कूर,वियोग-समाजहिं साजि पिलै ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ,न मिलौ तौ कहौ मन काहि मिलै ।
अमिले रहिबो लै मिले तें कहा, यहि पीर मिलाप में धीर गिलै ॥१९३॥

---

[१९२] आपु ही० = केवल अपनी ही ओर बरसते हो , अपना ही सुख देखते रहते हो, दूसरे को (मुझे) सुख देने का विचार भी नहीं करते । इत० = इधर मेरे बीच आकर तो मेरी सी ही रीति बना लेते हैं (जैसा निष्ठुर व्यवहार मेरे साथ करते आ रहे हैं वैसी ही निष्ठुरता करने लगते हैं)। उत० = उधर उस (सपत्नी) के साथ (भली भाँति प्रेम का) निर्वाह करने की रीति से चावपूर्वक मिलते हैं। मायक = मायिक, मायावी । झर० = झड़ी लगाकर । तरसौ = त्रस्त करते हो ; तरसाते हो । अब० = मैं जो अपने लिए करने को कहती हूँ उसे एक तो दूसरे के लिए करते हैं और दूसरे सब प्रकार के रंग से मिले हुए उसे दिखाई देते हैं, केवल दूसरे के प्रति ही वह व्यवहार नहीं करते प्रत्युत उससे वह व्यवहार भली भाँति भी करते हैं ।

[१९३] इक० = एक तो संसार में स्नेही प्रिय का मिलना ही कठिन है, यदि किसी प्रकार ऐसे स्नेही के संयोग की गंध मिलती है (थोडा सा संयोग प्राप्त भी होता है) तो। वियोग० = वियोग के बखेड़े सजाकर टूट पडता है, सिर पर डाल देता है, किसी न किसी तरह वियोग उपस्थित कर देता है । न मिलौ० = यदि आप नहीं मिलते तो कहिए यह मन किससे मिले (कहाँ टिके)। अमिले० = अमिलन लिए हुए मिले भी तो क्या मिले, यह पीड़ा कि तुम अमिलन लिए हुए मिले हो संयोग में भी धैर्य को निगल लेती है, मैं अधीर हो जाती हूँ ।

मनमोहन तौ अनमोह करौ, यह मोहित होत फिरै सु कहा।
अरु जौ अपढार ढरै न ढरै, गुन त्यौं तकि लागत दोष महा।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ चित दै इतनी हित-बात हहा।
जिय जाचक ह्वै जस देत बड़ो, जिन देहु कछू किन लेहु लहा ॥१९४॥

अंतर हौ किधौं अंत रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं, अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं।
जौ घनआनँद ऐसी रुची, तौ कहा वस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरनी मैं धँसौं कि अकासहि चीरौं॥१९५॥

मनमोहन नावँ रहै सु करौ, पन की पटिहै वह जौ चटिहै।
वहु ओरनि लै भटकावत यौं, अटकावत क्यौं न, कहा घटिहै।

---

[१९४] अनमोह = अमोह। यह० = मेरा मन बेचारा जो मोहित होता फिरता है वह किस लिए। अपढार० = आप का बेढंगे तौर से ढलनेवाला मन यदि मुझपर नहीं ढलता तो न सही, पर सोचिए तो कि आप के गुण की ओर देखने से बड़ा दोप (कलंक) भी तो लग रहा है, अपने गुण का तो कुछ ख्याल कीजिए। चित दै = मन लगाकर, ध्यान से। हित-बात = प्रेम की बात, भलाई की बात। जिय० = मेरा जी भिक्षुक बनकर आप को बड़ा भारी यश दे रहा है, आप चाहे मुझे कुछ दीजिए मत, पर यह लाभ प्राप्त करने में आप की क्या हानि है, यश का लाभ क्यों नहीं उठाते (मेरे प्रति अनुकूल होने मात्र से आप को भारी यश की प्राप्ति हो जायगी)।

[१९५] अंतर = हृदय में। अंत = अन्यत्र। दृग० = नेत्रों को फाड़कर आप को इधर उधर खोजती फिरूँ क्या। अभागनि० = अपने अभाग्य को रोऊँ। अकि = या कि, अथवा। का विधि = किस प्रकार। धीरौं = धैर्य दिलाऊँ। पीरौं = तो फिर प्राणों को पीड़ा पहुँचने दूँ, उन्हें पीड़ित होता रहने दूँ। अहो = हाय। चीरौं = फाड़कर घुसूँ।

[१९६] प्रकरण—सखी का वचन प्रिय से। नावँ = ऐसा कीजिए कि आप के मनमोहन नाम की लज्जा बनी रहे। पन० = उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो जायगी। वह = नायिका। चटिहै = शीघ्र संसार से बिदा हो जायगी। वियोग में मर जायगी। वहु० = इस प्रकार अनेक दिशाओं में ले जाकर उसे क्यों भटका

घनआनँद मीत सुजान सुनौ अपनी अपनी दिसि को हटिहै।
तुम ही तन खोरि लगाइहै जू दृग मोरि कै जौ हम त्यौं डटिहै ॥१९६॥
हम सौं पिय साँचियै बात कहौ मन जौ मनत्यौ अरु नाहिँ कहूँ।
कपटी निपटै, हिय दाहत हौ, निरदै जु दई डरु नाहिँ कहूँ।
सब ही रँग मैं घनआनँद पै बस-बात परे परु नाहिँ कहूँ।
उघरौ, बरसौ, सरसौ, तरसौ, सब ठौर बसौ घरु नाहिँ कहूँ ॥१९७॥

कवित्त

कौन कौन अंगन के रंगन मैं राँचैं, मन-
मोहन हौ सोई सुख मुख पुनि ल्यावई।
मौन मिहीँ बात है समुझि कहि जानै जान,
अमी काहू भाँति को अचंभैं भरि प्यावई।

रहे हैं। उसे अटकाए क्यों नहीं रहते (उसके अनुकूल होकर या दर्शन देकर सांत्वना क्यों नहीं देते) इसमें आप का क्या घट जायगा। अपनी० = अपनी-अपनी ओर से भला हटेगा कौन, आप ने जो रास्ता पकड़ा उसे छोड़ते नहीं, वह जो प्रतिज्ञा कर बैठी उसे त्यागती नहीं। खोरि = दोष। हम० = हमारी ओर। तुम ही० = यदि वह अपने नेत्र मोड़कर हमारी ओर डट जायगी, यदि हमें ही टकटकी बाँधकर देखने लगेगी (मरणासन्न हो जायगी) तो इससे दोष आप को ही लगेगा। अतः आप अपना निर्दय स्वभाव छोड़कर उससे जा मिलिए।

[१९७] मन जौ० = यदि आप अपने मन में किसी अन्य को नहीं रखते तो। निपटै = अत्यंत। सब ही० = आप यों तो सभी रंगों में डूबे रहते हैं। बस० = पर बात पड़ जाने पर किसी स्थान में अर्थात् किसी रंग में नहीं दिखाई पड़ते। उघरौ = खुलते हो। सरसौ = सरसता दिखलाते हो। तरसौ = त्रस्त करते हो। सब० = आप सब स्थानों में बसे हुए भी हैं और आप का कहीं कोई घर भी नहीं है।

[१९८] राँचैं = अनुरक्त होएँ, रमें। मोहन० = जिस सुख से मन मोहित है उसी को मुख पर ला रहा है, उसी को कहना चाहता है। मौन० = मेरी बात तो मौन में ही है और सूक्ष्म है। इसे चतुर ही समझ सकता है।

सोवनि जगनि याकी मूरछा सचेत सदा,
　　रीझि घनआनँद निवेरै याहि न्यावई।
कहै कोऽब मानै, पहचानै कान नैन जाके,
　　बात की भिदनि मोहिँ मारि मारि ज्यावई ॥१६८॥

सवैया

आँखिन मूँदिबो बात दिखावत,सोवनि जागनि बात ही पेखि लै।
बात-सरूप अनूप अरूप है, भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै।
बात की बात सुबात बिचारिबो है छमता सब ठौर बिसेखि लै।
नैननि-काननि-बीच बसे घनआनँद मौन-बखान सु देखि लै ॥१६९॥

अमी = अमृत। काहू० = विलक्षण। अमी० = उनमेँ (प्रिय मेँ) आश्चर्य से भरा विलक्षण अमृत पिलाने की शक्ति है। याकी = इस मन की। सोवनि० = इसका जगना भी सोना ही है, यह सावधान होकर भी असावधान है। मूरछा० = इसकी मूर्छा ही सजग है, इसमेँ केवल बेहोशी ही बेहोशी छाई है। रीझि = प्रेम। निबेरै = इस कष्ट से मुक्त करती है। न्यावई = (न्याय ही) न्यायतः, वस्तुतः। कहै० = कौन अपनी व्यथा कहने जाय, और माननेवाला भी कौन है। पहचानै० = इसे वही पहचान सकता है जिसके नेत्र ही कान होँ। जो देखकर ही सब कुछ समझ सके। बात० = बात की चोट तो मार-मारकर जिला रही है। मुझे उनकी बात की चोट कष्ट भी दे रही है और उसी की स्मृति करके मैँ जी भी रही हूँ।

[१६९] इसमेँ बात (वाणी) की महिमा वर्णित है। आँखिन० = आँखोँ का बंद कर लेना, आँखोँ को फेर लेना। दिखावत = बतलाती है। सोवनि० = जगने का सोना, जगते हुए भी सोते रहना। सरूप० = वाणी का रूप अनुपम और अलक्ष्य होता है। भूल्यौ० = तू किस चक्कर मेँ पड़ा है। अलेखहि० = जो (ईश्वर) अवर्णनीय है उसका वर्णन भी तू वाणी से कर ले सकता है। बात की० = वाणी की शक्ति। सुबात = अच्छी बात, तथ्यपूर्ण रहस्य। है० = वाणी की क्षमता सब स्थानोँ पर दिखाई देती है, इसे तू भली भाँति जान ले। नैननि० = नेत्ररूपी कानोँ मेँ बसे हुए मौन कथन को भी तू वाणी से लख सकता है (जिसके नेत्र ही कान का काम करते होँ, जो देखकर व्यथा समझ

कवित्त

सुधि करे भूल की सूरति जब आय जाय,
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कौं।
जातें सुधि भूलै सो कृपा तें पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसें सुधि हौन कौं।
मेरी सुधि-भूलहि विचारियै सुरतिनाथ!
चातिक उमाहै घनआनँद अचौन कौं।
ऐसी भूल हू सौं सुधि रावरी न भूलै क्यौं हूँ,
ताहि जौ विसारौ तो सम्हारौ फिरि कौन कौं ॥२००॥

सकता हो, वही मौन-पुकार सुन सकता है)। तात्पर्य यह है कि अनिर्वचनीय प्रेम की दशा का आभास वाणी द्वारा ही दिया जा सकता है।

[२००] सुधि० = प्रिय की भूल का स्मरण करने से जब उनकी स्मृति आ जाती है। तब० = तब मैं अपनी सारी सुध-बुध खोकर मौन धारण करके कूकने लगती हूँ (मौन द्वारा ही अपनी व्यथा व्यक्त करती हूँ)। जातें० = जिस प्रकार से अपनी (विरहावस्था की) सुध भी भूल जाती है वह प्रिय की कृपा से (उनकी सुध से) प्राप्त होता है। सुधि हौन० = स्मृति आने के के लिए। फूलि० = इसी भरोसे तो मैं प्रिय की सुध होने के लिए प्रसन्नता-पूर्वक अपने को भूला करती हूँ। सुरति० = (आप ही मेरी) स्मृति के स्वामी (हैं), प्रेम के स्वामी, प्रिय। मेरी० = हे स्मृति के स्वामी, मेरी सुध जो आप भूल गए हैं उस पर विचार कीजिए। मेरी तो यह दशा है कि आप की स्मृति के भरोसे मैं जी रही हूँ और आप की दशा यह है कि आप मेरी सुध ही भूले बैठे हैं। इस वैषम्य पर विचार तो कीजिए। चातिक = बेचारा चातक (प्रेमी)। उमाहै = उमंगित हो रहा है, लालायित हो रहा है। घन० = आनंद के बादल (का जल)। अचौन० = (आचमन) पीने के लिए। चातिक० = बेचारा चातक (स्वाती का) जल पीने के लिए लालायित हो रहा है। ऐसी० = आप के द्वारा इस प्रकार भुला दिए जाने पर भी जो आप की सुध किसी प्रकार नहीं भूलता यदि आप उसे ही भूल जायँ तो सँभालेंगे किसे।

सवैया

जगि सोवनि मैं जगियै रहै चाह वहै वरराय उठै रतिया।
भरि अंक निसंक ह्वै भेटन कौं अभिलाप-अनेक-भरी छतिया।
मन तैं मुख लौं नित फेर वड़ो कित ब्योरि सकौं हित की वतिया।
घनआनँद जीवन-प्रान लखौ सु लिखी किहि भाँति परै पतिया ॥२०१॥

प्रेम की पीर अधीर करै हिय, रोवनि कौं दृग आँसुनि ढारत।
चाहनि चोप उमाह उमंग पुकारहि यौं नित प्रान पुकारत।
हौं घनआनँद छाय रहे कित यौं असम्हारहि नाहिँ सम्हारत।
ए जू सुजान जनाऊँ कहा विन आरति हौ,अति या विधि आरत॥२०२॥

हम आपनो सो वहुतेरो करैं कि बचैं अवलोकनैं एकौ घरी।
न रहै वस नैसिक तान भिदैं छिदै कान ह्वै प्रान सु तीखी खरी।

---

[२०१] जगि = जागते हुए भी सोने मैं। जगियै० = चाह जगती (वनो ही) रहती है। वहै० = रात मैं वही चाह बराया करती है, चाह के ही कारण रात मैं अर्र-बर्र बकती हूँ। निसंक० = वेखटके। मन तैं० = इस प्रकार मन से मुख और मुख से मन तक मेरी वृत्ति वरावर अनेक चक्कर काटा करती है। प्रेम की बातैं भला किस प्रकार सोचूँ, मुझे तो 'प्रेमपत्र' मैं लिखने के लिए बातें सोचने का अवसर ही नहीँ मिल पाता। लखौ० = आप ही समझ ल।

[२०२] प्रेम० = प्रेम की पीड़ा हृदय को अधीर किए डालती है। ढारत = गिराते हैँ। चाहनि० = प्राण सदा देखने के चाव, उत्साह और जोश की पुकारैं ही किया करते हैँ। असम्हारहि० = बेसँभाल (मुझ) को क्यों नहीँ सँभालते। सुजान० = आप ऐसे सुजान को क्या बतलाऊँ, आप स्वयं समझने मैं समर्थ हैं। जिन० = आप तो विना दुःख के हैँ और मैं अत्यंत दुखी हूँ। आप ने कभी दुःख देखा ही नहीँ इससे उसकी अनुभूति करने मैं समर्थ नहीँ और मैं हूँ अत्यंत दुखी। इसी विपमता के कारण आप मेरी दशा का अनुमान नहीँ कर पाते।

[२०३] आपनो० = भरसक बहुत यत्न करती हूँ। वचैं० = आप के घड़ी भर के दर्शन से ही अपने को वर्जित कर लूँ। न रहै० = कोई वश नहीँ चलता। नैसिक = थोड़ी सी भी मुरली की तान हृदय मैं जाने से। छिदै० = कानों को

घनआनँद बौरति दौरति ढौरति ढूँढ़ियौ पैयत लाज न री।
कित जाहिँ कहा करैं कैसे भरैं यह कान्ह की बाँसुरी बैर परी ॥२०३॥

रस-रंग-भरी मृदु बोलनि कौं कब काननि पान करायहौ जू।
गति हंस-प्रसंसित सौं कब धौं सुख लै अँखियान मैं आयहौ जू।
अभिलाषनि पूरित ह्वै उफन्यौ मन तें मनमोहन पायहौ जू।
चित-चातक के घनआनँद हौ रटना पर रीझनि छायहौ जू ॥२०४॥

पलकौ कलपै कलपौ पलकै सम होत सँयोग वियोग दुहूँ।
विपरीति-भरी हित-रीति खरी समझी न परै समझैं कछु हूँ।
घनआनँद जान सजीवन सौं, कहियै तौ समै लहियै न सुहूँ।
तिन हेरें अँधेरें ई दीसे सबै, बिन सूझ तें पून्यो अबूझ कुहूँ ॥२०५॥

पार करके वह अत्यंत तीखी तान प्राणों में गहराई तक धँस जाती है। बौरति० = पगली हो जाती हूँ, दौड़ने लगती हूँ और धुन लग जाती है। ढूँढियौ० = लज्जा ढूँढने से भी नहीं मिलती। कैसैं० = दिन कैसे काटूँ।

[२०४] रस = प्रेम ; जल। रंग = आनंद। गति० = हंस से भी-प्रशंसनीय गति द्वारा। सुख० = सुख को लेकर अर्थात् सुखी करते हुए। अभिलाषनि० = हे मन को मोहनेवाले (प्रिय), अभिलाषों से भरकर उफन पड़नेवाले इस मन के द्वारा आप मुझे पाएँगे। मेरे अभिलाषपूर्ण मन की दशा देखकर मेरी अवस्था का अनुभव करेंगे। रटना = पुकार। रटना० = इसकी पुकार पर आप रीझ की छाया करेंगे (रीझेंगे)।

[२०५] पलकौ० = संयोग में कल्प भी क्षण के समान बीतता था, समय जाते देर नहीं लगती थी। कलपौ० = वियोग में पल भी कल्प के समान हो जाता है। समय बीतता ही नहीं। सम० = इस प्रकार संयोग और वियोग दोनों ही समान हो जाते हैं, एक में 'पल के समान कल्प, दूसरे में कल्प के समान पल'। विपरीति० = प्रेम की रीति अत्यंत विषमता से भरी हुई है। समझी० = समझने पर भी कुछ समझ में नहीं आती। सुहूँ = (शुद्ध) पूरा पूरा, ठीक ठीक, आवश्यकता के अनुरूप। कहियै० = यदि कहूँ भी तो उसे कहने के लिए अत्यधिक समय चाहिए। तिन० = प्रिय के दर्शन से अँधेरे में

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसानि लै सान चढ़ावत।
प्रानन प्यारे, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप चटावत।
यौं घनआनँद छावत भावत जान सजीवन ओर तै आवत।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत ॥२०६॥

चलि आई सदा रसरीति यहै, किधौं मो निरमोही को मोह नयौ।
घनआनँद प्रान हरैं हँसि जान, न जानि परै उघस्यौ उनयौ।
चित चाह-निबाह की बात रहौ, हित कै नित ही दुख-दाह दयौ।
उर आस बिसासन त्रास तजै बसि एक ही बास बिदेस भयौ ॥२०७॥

भी दिखाई पड़ने लगता है, कष्ट भी सुखद हो जाता है। बिन० = बिना उन्हें देखे पूर्णिमा भी दृश्यहीन अमावस्या सी हो जाती है।

[२०६] तीछन = तीक्ष्ण। ईछन = (ईक्षण) नेत्र। बखान = कहे जाते हैं। पैनी = तीव्र। तीछन० = प्रिय के तीक्ष्ण कटाक्ष बाण (रूपी मेरे कवित्त)। सो० = मेरी तीव्र (प्रेम की) दशाओं पर और भी शान चढ़ा देते हैं, मेरे प्रेमोद्गार में वेग आ जाता है। प्रानन० = ये कवित्त प्राणों को प्रिय लगते हैं। पानिप = पानी; आब। मायल = (फारसी) प्रवृत्त। चोप० = उत्साह बढ़ाते हैं। मायल० = मुग्ध प्रेम में प्रवृत्त और आहत को उत्साहित करते हैं। ओर तैं = उनके पास से। लोग० = और लोग (रीतिबद्ध रचना करनेवाले) तो कवित्त (कविता) के बनाने में लगे रहते हैं (मर-पचकर कविता करते हैं) पर मुझे तो मेरे कवित्त (कवित्त, सवैया आदि की कविता) ही निर्मित किया करते हैं, मेरी रचना के द्वारा ही मेरा प्रकृत रूप उत्तरोत्तर विकसित होता चलता है।

[२०७] रसरीति = प्रेम की रीति। मो० = मेरे निष्ठुर प्रिय का प्रेम ही दूसरे प्रकार का है। उघस्यौ० = न हटा जान पड़ता है और न छाया हुआ। न प्रकट है न छिपा। चित० = हृदय से प्रेम करके उसके निर्वाह की बात तो दूर रही, उसने तो उलटे प्रेम का आभास देकर सदा के लिए दुःख की जलन दे दी। बिसासन० = विश्वासघातों के भय से। उर० = हृदय से विश्वासघातों के भय से आशा भी क्षीण होती जा रही है। बसि० = एक ही स्थान पर बसते हुए भी विदेश की अवस्था है, हम दोनों पृथक् पृथक् हैं।

कवित्त

मोरचंद्रिका सी सब देखन कौं धरे रहैं,
सूछम अगाध-रूप-साध उर आनहीं।
जाहि सूझ तिन हूँ सो देखि भूली ऐसी दसा,
ताहि ते बिचारे जड़ कैसैं पहचानहीं।
जान प्रानप्यारे के बिलोकैं अबिलोकिबे कौं,
हरप-बिपाद-स्वाद-बाद अनुमानहीं।
चाह मीठी पीर जिन्हैं उठति अनंदघन,
तेई आँखैं साँखैं और पाँखैं कहा जानहीं॥२०८॥

भूलनि करी है सुधि, जान ह्वै अजान भए,
खुलि मिले कपट सों निपट रसाल हौ।
त्यागहि आदर दीनौ मान सनमान कीनौ,
अनुचित चित धरि उचित लहा लहौ।

---

[२०८] मोर० = जिनमें प्रेम नहीं वे आँखें मोरपंखों की आँखों की भाँति देखने भर को हैं। सूछम० = ऐसी आँखोंवाले यदि मन में सूक्ष्म और अगाध रूप देखने की उत्कंठा करते हैं तो व्यर्थ। जाहि = जिनमें वास्तविक दृष्टि है वे भी जब वह अगाध और सूक्ष्म रूप देखकर अपनी दशा भूल जाते हैं तो मोरपंख सी आँखोंवाले जड़ भला उसे क्या जान सकेंगे। जान०=प्रिय के देखने और न देखने को ही ये आँखें क्रमशः हर्ष और विषाद ही समझती हैं। चाह = प्रेम की मंद मंद पीड़ा जिन आँखों में उठा करती है वे ही आँखें तो सचमुच आँखें हैं, और आँखें तो मोरपंख की आँखों की भाँति व्यर्थ हैं, वे प्रेम के तत्त्व को भला क्या जानें।

[२०९] भूलनि० = मेरा भूलना ही आप को स्मरण है। जान० = सुजान (चतुर) होकर भी अनजान (न जाननेवाले, अचतुर) हो गए हैं। खुलि० = भली भाँति। रसाल = रसीले, रसिक। त्यागहि० = आप ने मेरे त्याग ही को आदर दिया और मुझसे मान करने (विमुख होने) का ही स्वागत किया। आप ने मुझे त्याग दिया और विमुख हो गए। अनुचित० = अनुचित बात भी मन में रखकर आप उचित लाभ उठा रहे हैं। जहाँ० = आप चाहे जहाँ

जहाँ जब जैसें तहाँ तैसें नीके रहौ अजू,
सब विधि प्रानप्यारे हित-आलबाल हौ।
मन तुम मोह्यौ ताहि नेकु राखे रहियौ जू,
एहो घनआनँद जू गरे गुनमाल हौ ॥ २०९ ॥

सवैया

जौ उहि ओर घटा घनघोर सों चातक मोर उछाहनि फूलते।
त्यौं घनआनँद औसर साजि सँजोगिनि-झुंड हिंडोरनि झूलते।
ग्रीषम तें हतई जु लता द्रुम-अंकनि लागतीं ह्वै रसमूल ते।
तौ सजनी! जिय-ज्यावन जान सु क्यौं इत के हित की सुधि भूलते॥२१०॥

कवित्त

उठे बड़े भोर चैन चोर लाहसाह दोऊ,
मति-गति-ठगे न सकत चलि गेह कौं।
छाई पियराई और विथा हियराई जानै,
जके थके बैन, नैन निदरत मेह कौं।

भी हों, चाहे जिस किसी समय में हों और चाहे जैसी दशा में हों भले-चंगे रहें। आलबाल = थाला। हित० = प्रेम आप ही के घेरे में पनपता है। मन = आप ने मन को मोहित किया है तो उसे बचाए रहिए, यही प्रार्थना है। एहो= आप चाहे जैसे भी हों मेरे मन के लिए तो गुण-माला की भाँति गले में पड़े हैं। आप को मैं गुण-निधान समझती और हृदय में धारण करती हूँ।

[२१०] उहि० = जहाँ प्रिय है वहाँ। घोर = गर्जन। औसर = वर्षा का समय आया जानकर। सँजोगिनि = संयोगिनी स्त्रियों का समूह झूलों पर झूलता होता। हतई = मारी हुई, सूखी। द्रुम० = वृक्षों की गोद में लगतीं, उन पर छातीं। रस = जल ; आनंद। रसमूल० = यदि वे लताएँ रसपूर्ण होकर, वर्षा के जल से सिंचकर और हरी-भरी होकर। जिय० = जी को जिलाने-वाले। इत के = इधर के, मेरे।

[२११] मेरे हृदय का चैन चोर बनकर प्रिय को लूटने लगा था और (प्रिय का) लाभ (प्राप्ति) महाजन बनकर प्रत्यक्ष उनको अपना ग्राहक बनाने की धुन में था। पर दोनों रात भर यत्न करते रहे, कोई भी सफल न

दुसह दसाहि देखें समै विसमय होत,
खग मृग द्रुम वेली विसरत देह कौं।
जान घनआनँद अनोखो अनियारो नेह,
दुहूँ दिसि विषम रच्यौ विरंचि वेह कौं ॥ २११ ॥

सवैया

आनि लई न कछू सुधि हाय, गए करि वैरी वियोगहि सौंपनि।
जाय भुलाय रहे तित ही जित चाह भई है नई चित-चौंपनि।
नाहर आय बसंत भयौ नख-केसू रतौंहैं कियौ हिय कौंपनि।
क्यों घनआनँद यों वचियै जिय जात विध्यौ अनियारियै कौंपनि ॥२१२॥

हुआ। दोनों की मति और गति मारी गई। तात्पर्य यह कि न उनके बिना चैन ही मिलता है और न उनका लाभ ही होता है (वे आते ही हैं)। हियराई० = हृदय ही व्यथा को जानता है। जके = चकपका गए हैं। थके = बंद हो गए हैं। जके० = वचन चकपकाए हुए हैं और रुक गए हैं। मेह = वृष्टि। नैन = नेत्र वृष्टि का भी निरादर कर रहे हैं। नेत्रों से वृष्टि की अपेक्षा अधिक आँसू गिर रहे हैं। दुसह० = असह्य विरह की दशा देखते समय बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐसा विरह विरहिणी से सहा कैसे जा रहा है। खग० = पशु-पक्षी और लता-वृक्ष सभी विरही के शरीर को भूल गए हैं, विरही इनकी ओर देख ही नहीं पाता। अनोखो० = प्रेम विलक्षण और तीव्र है। विलक्षण प्रिय के पक्ष से और तीव्र प्रेमी के पक्ष से। विरंचि = ब्रह्मा। वेह = (वेध) हृदय बेधने के लिए।

[२१२] आनि = आकर। गए० = वैरी वियोग के हाथों सौंपते गए। भुलाय० = मुझे भूलकर और इसी के प्रेम में मग्न होकर। चाह = इच्छा। चौंपनि = प्रेम की उमंगें। नाहर = सिंह। नख = उसके नख ही किंशुक हैं। केसू = किंशुक, पलाश का फूल। रतौंहैं = रागमय ; रक्त से भरा। कौंपनि = कोप से। नख-केसू = किंशुक रूपी नख से उसने क्रोध करके हृदय को रतौंहैं (खून से लथपथ ; विशेष रागमय) कर दिया है। विध्यौ जात = बिँध जाता है। अनियारियै = तीखी। कौंपनि = कौंपलें ; नोकें।

कवित्त

आरसी उसास ज्यौँ तुषार तामरस त्यौँ हीँ
आतप के ताप रंग-ढंग नवनीत कौ।
पावक तें पारो काँजी छिये हू बिचारौ छीर,
बारुनी तैँ सुचि जैसेँ लेखौ कफ गीत कौ।
ऐसें घनआनँद बिचार-वारपार नाहिँ,
जानै एक जीव जान प्रीतम पुनीत कौं।
सूछम महा है ताकी तोल कौँ कहा है,
राखि जानिबो लहा है यौँ दुहेलो मन मीत कौ ॥२१३॥

सवैया

बात के देस तैँ दूरि परे, नियरे सियरे हियरे दुख दाहै।
चित्र की आँखिन लीनैँ बिचित्र महारस-रूप-सवाद सराहै।

---

[२१३] आरसी = दर्पण। तुषार = पाला। तामरस = कमल। आतप= धूप। नवनीत = मक्खन। छिए = छूने से। छीर = (क्षीर) दूध। बारुनी = शराब। सुचि = पवित्र। बारुनी० = शराब से जैसे पवित्र (व्यक्ति) भी नष्ट हो जाता है। लेखौ० = जैसे गले में कफ आ जाने से गीत की लय बिगड़ जाती है। वारपार = अर्थात् अंत। सूछम = सूक्ष्म। नीकी० = उसकी तौल अर्थात् बराबरी का कोई नहीँ है। राखि जानिबो = उन्हेँ सब प्रकार से अपने अनुकूल बनाए रखना ही उनकी उपलब्धि है। दुहेलो = कष्टप्रद।

[२१४] बात का देस = वह स्थान जहाँ का समाचार न मिल सके। नियरे = निकट। सियरे = ठंढे। बात के० = जा तो बसे हैँ दूर, पर निकट आकर ठंढे हृदय को दुःख से जलाते रहते हैँ। चित्र० = जिनकी आँखेँ चित्र में बनी आँखों की भाँति सुंदर और आकर्षक तो हैँ, पर जिनमेँ सजीवता नहीँ है। महा०= फिर भी तू उनकी रसिकता और रूप की मनोहरता की प्रशंसा किया करता है। नेह० = तू जो उनके पास प्रेम की बातें पहुँचाना चाहता है वह पानी ही मथता है। जैसे पानी मथने से स्नेह (चिकनाई) नहीँ निकलता वैसे ही उनसे प्रेम की बातें करने से भी कोई तत्त्व नहीँ निकलेगा। कठप्रेम = वह प्रेम जो हठपूर्वक किया जाय, जो दूसरे पक्ष अर्थात् प्रिय के उदास या प्रति-

नेह कथै सठ नीर मथै हठ कै कठप्रेम को नेम निबाहै।
क्यौं घनआनँद भीजे सुजाननि यौं अमिले मिलिबो फिरि चाहै ॥२१४॥

प्यारे सुजान को प्रान-पियारो बस्यौ जब कान सँदेसो सुहायौ।
कोटि सुधा हू के सार कौं सोधि कै पान किये तें महासुख पायौ।
जीव-जियावन ताप-सिरावन है, रसमै घनआनँद छायौ।
ये गुनि क्यौं न रचै सजनी ! उनि रंग-रचे अधरानि रचायौ ॥२१५॥

आँखिन आनि रहे लगि आस कि बेस-बिलास निहारियै हूँगे।
कानन बीच बसे भरि प्यास अमी-निधि बैननि पारियै हूँगे।
यौं घनआनँद ठौरहि ठौर सम्हारत हैं सु सम्हारियै हूँगे।
प्रान परे उरझैं मुरझैं कि कहूँ कबहूँ हम वारियै हूँगे ॥२१६॥

रूप-सुधारस-प्यास-भरी नित ही अँसुवा ढरिबोई करैंगी।
पीवन-साध असाध भई इहि जीवन कौं मरिबोई करैंगी।
हाय महादुख है सुखदैन ! बिचारौ हियैं, भरिबोई करैंगी।
क्यौं घनआनँद मीत सुजान ! कहा अँखियाँ बरिबोई करैंगी ॥२१७॥

कूल होने पर भी किया जाय। घनआनँद = आनंद के बादल की रसवृष्टि से जो भीजे (सिक्त) हैं ऐसे सुजानों से, जिनमें मिलने का गुण नहीं उनसे क्यों फिर से मिलना चाहता है।

[२१५] सार = तत्त्व। सोधि कै = खोजकर, प्राप्त करके। सिरावन = ठंढा करनेवाला। रचै = अनुरक्त हो। उनि = उन्होंने। रंग-रचे = रंग से सुशोभित। रचायौ = प्रेम से युक्त किया है, मेरे लिए संदेश भेजते हुए उन दोनों को संचालित किया है, जिससे मेरे प्रति उनका प्रेम व्यक्त होता है।

[२१६] बेस० = प्रिय का वेश-विन्यास देखने को मिलेगा। अमी-निधि = अमृत के समुद्र। पारियै० = इन कानों में पड़ेंगे, सुनने को मिलेंगे। ठौर० = वे (प्राण) अंग अंग में बसकर इस प्रकार अपने को सँभाल रहे हैं कि किसी प्रकार रह जायँ, प्रिय के दर्शन होने तक बचे रह सकें। वारियै० = प्रिय पर निछावर होंगे।

[२१७] साध = इच्छा। असाध = असाध्य, ऐसा रोग जिसके अच्छे होने की संभावना न हो। जीवन = जिंदगी (प्रिय के सांनिध्य का जीवन);

तुम्हैं प्रान लगे तुम प्रानन हूँ मनमोहन सोहन मानियै जू।
निठुराई सोँ कौ लौँ निवाहियैगी कबहूँ तौ दया उर आनियै जू।
दरसे तें कहौ हो कहा घटिहै घनआनँद चातक-दानियै जू।
बरसौ सरसौ अरसौ न दई जग-जीवन हौ जग जानियै जू ॥२१८॥

रस-आरस-भोय उठी कछु सोय लगी लसैँ पीक-पगी पलकैँ।
घनआनँद ओप बढ़ी मुख और सु फैलि भवीँ सुथरी अलकैँ।
अँगराति जँभाति, लसैँ सब अंग अनंगहि अंग दियैँ झलकैँ।
अधरानि मैँ आधिय बात धरैँ लड़कानि की आनि परैँ छलकैँ ॥२१९॥

बंक बिसाल रँगीले रसाल छबीले कटाछि-कलानि मैँ पंडित।
साँवल सेत निकाई-निकेत हियैँ हरि लेत हैं आरस-मंडित।
बेधि कै प्रान करैँ फिरि दान, सुजान खरे, भरे नेह अखंडित।
आनँद-आसव-घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित ॥२२०॥

जल। मरिबोई० = क्या लालायित ही रह जायँगी, छटपटाती ही रहँगी। सुखदैन = सुख देनेवाले (प्रिय)। बिचारौ = सोचो। भरिबोई० = इसी प्रकार दुःख मैं अपने दिन काटती रहँगी'।

[२१८] तुम० = आप भी प्राणोँ को लगे हैं, प्राणोँ मैं बसे हैं। सोहन० = शोभन। निबाहियैगी = निर्वाह होगा। दरसे० = दर्शन देने से। अरसौ न = आलस्य न करो। दई = हे दैव ! जग० = सारा संसार जानता है।

[२१९] आरस = आलस्य, सुस्ती। उठी = जगी। भोय = युक्त होकर। लगी = बंद। पगी = भरी। ओप = छटा। भवीँ = चक्करदार हो गईं। सुथरी = सुंदर, रमणीय। अँगराति = अँगड़ाई लेती हुई। अनंगहि० = काम से युक्त होकर। लड़कानि० = मस्ती की मुद्राएँ छलकने लगती हैं।

[२२०] बेधि० = प्राणोँ को बिद्ध भी करते हैं और फिर प्राण-दान भी देते हैं। कटाच्छ० = बाण लगना दुःखद भी प्रतीति होता है और सुखद भी। खरे = उत्कृष्ट। अखंडित = पूर्ण। आसव = शराब। घूमरे = नशे मैं चूर। चोज = चुहल की वृत्ति, विनोद की वृत्ति, उमंग। चोज० = एक तो नेत्र आनंद के आसव के कारण उमंगित हैं, दूसरे काम के कारण भी उमंग बढ़ रही है, अतः उनमैं विनोद वृत्ति की उमंग प्रचंड रूप मैं दिखाई देती है।

देखि धौं आरसी लै बलि नेकु, लसी है गुराई मैं कैसी ललाई।
मानौ उदोत दिवाकर की दुति, पूरन चंदहि भेटन आई।
फूलत कंज कुमोद लखै घनआनँद रूप अनूप निकाई।
तो मुख लाल ! गुलालहि लाय कै सौतिन के हिय होरी लगाई ॥२२१॥
रूप धरे धुनि लौं घनआनँद सूझति बूझ की दीठि सु तानौ।
लोचन लेत लगाय कै संग अनंग अचंभे की मूरति मानौ।
है किधौं नाहिं लगी अलगी सी लखी न परै कवि क्यौं हूँ प्रमानौ।
तो कटि-भेदहि किंकिनि जानति तेरी सौं एरी सुजान हौं जानौ ॥२२२॥
रूप के भार न होति है सौंहीं लजौंहियै दीठि सुजान यौं झूली।
लागियै जानि, न लागी कहूँ निसि,पागी तहाँ पलकौ गति भूली।

---

[२२१] आरसी = दर्पण। उदोत = उदित होते हुए। मानौ० = मानौं उदित होते हुए सूर्य की (लाल) द्युति (गुलाल) धारण करके पूर्णचंद्र (मुख) ही आया हो। फूलत० = उस छटा को देखकर कमल और कुमुद दोनों साथ ही खिलने लगे (सूर्य की छटा से कमल और चंद्र की छटा से कुमुद)। लखैं = देखने पर, देखकर। लाय कै = लगाकर।

[२२२] धुनि = ध्वनि, वाणी। रूप० = तेरी कमर का रूप वैसा ही है जैसे वाणी का। वाणी का रूप दिखाई नहीं पड़ता, पर कानों से सुनी जाकर वह अपने रूप का आभास देती है और उसका मानस प्रत्यक्ष होता है, उसी प्रकार तेरी कमर का भी चाक्षुप प्रत्यक्ष तो नहीं होता पर मानस प्रत्यक्ष होता है। बूझ की दीठि = मानस दृष्टि से। सु = भली भाँति। तानौ = फैलाओ। यदि मुझे भी मानस दृष्टि मिले तो तेरी कमर को देख सकूँ। अनंग० = यह रूपहीन काम की अचंभे से भरी हुई कोई मूर्ति है। प्रमानौ = प्रमाणित करें। इसकी प्रत्यक्ष स्थिति चाहे कवि लोग किसी प्रकार भी प्रमाणित करें तो भी। तो० = तेरी कमर का रहस्य। जानति० = करधनी ही तेरी कमर का रहस्य जानती है जो उस पर पड़ी हुई उसका रहस्य बजकर अर्थात् बोलकर उद्घाटित किया करती है। सौं = शपथ। हौं० = मैं समझता हूँ।

[२२३] रूप० = सौंदर्य के बोझ से दृष्टि सीधी नहीं है, झुक गई है। झूली = लटकी हुई शोभित होती है। लागियै = बंद होती जाती है, मारे

चैठियै जू हिय पैठति आजु कहा उपमा कहियै समतूली।
आए हौ भोर भएँ घनआनँद आँखिन माँझ तौ साँझ सी फूली ॥२२३॥

कवित्त

रति-रंग-राते प्रीति-पागे रैन-जागे नैन,
आवत लगेई घूमि झूमि छवि सौँ छके।
सहज विलोलि परे केलि की कलोलन मैं,
कबहूँ उमगि रहे कबहूँ जके थके।
नीकी पलकनि पीक-लीक-झलकनि सोहै,
रस-बलकनि उनमदि न कहूँ सके।
सुखद सुजान घनआनँद पोखत प्रान,
अचिरजखानि उघरे हूँ लाज सौँ ढके ॥२२४॥

केलि की कला-निधान सुंदरि सुजान महा,
आनन समान छवि-छाँह पै छिपैयै सौनि।
माधुरी-मुदित मुख उदित सुसील भाल,
चंचल बिसाल नैन लाज-भीजियै चितौनि।

लज्जा के खुली नहीँ रह पाती। न लागी = कहीँ पर रातभर ये आँखेँ जागती ही रही हैँ। पागी० = (उसकी मधुधारा मेँ) लिपट जाने से। गति = चाल, खुलना और बंद होना। जैसे मधुमक्खी मधु मेँ पड़कर अपनी गति भूल जाती है उसके पंख हिलते-डुलते नहीँ वैसे ही आप की आँखेँ भी पलकोँ का संचालन भूल गईँ। बैठियै = बैठी हुई, स्थिर। पैठति = गतिहीन होकर भी हृदय मेँ घुसती है (विरोध)। समतूली = समान।

[२२४] राते = अनुरक्त ; लाल। जागे = जगे हुए। घूमि = नशे मेँ चूर होकर। झूमि = मस्ती से झूमते हुए। सहज = स्वभावतः। बिलोलि परे = हिल रहे हैँ, घबराए हुए चंचल हैँ। कलोल = लहर। जके = चकपकाए हुए। थके = ठक। झलकनि = (झलक) प्रकट होना, दिखाई पड़ना। उघरे हूँ = नग्न होने पर भी, निर्लज्ज होने पर भी, खुले रहने पर भी।

[२२५] कला = चतुरता। निधान = भंडार। समान = मानपूर्ण, गर्वीला, रोबीला। छवि० = उसके रोबीले मुख की सुषमा की छाया मेँ कुंदन की

पिय-अंग-संग घनआनँद उमंग हिय,
सुरति-तरंग रस-बिबस उर-मिलौनि !
झूलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम-
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि ॥२२५॥

सवैया

रति-साँचें ढरी अछवाई-भरी पिँडुरीन गुराइयै पेखि पगै।
छबि घूमि घुरै न मुरै मुरवान सौं लोभी खरो रस झूमि खगै।
घनआनँद एड़िनि आनि मिड़ै तरवानि तरे तें भरै न डगै।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै ॥२२६॥
रूप-चमूप सज्यौ दल देखि भज्यौ तजि देसहि धीर-मवासी।
नैन मिलें उर के पुर पैठतें लाज लुटी न छुटी तिनका सी।

शोभा भी विलीन हो जाती है। सौनि = कुंदन की ललाई। माधुरी० = माधुर्य से प्रसन्न। सुसील = शील से युक्त, शांत मुद्रा को व्यक्त करनेवाला। भीजियै = लज्जा से भीँगी हुई, लाजभरी। हौनि = होना।

[२२६] रति० = रति के साँचे मेँ ढली हुई। अछवाई० = रमणीयता से संयुक्त। पिँडुरी = घुटने के नीचे पीछे की ओर पैर का मांसल भाग। गुराइयै = गोरापन ही। घूमि = मत्त होकर। घुरै = घुलता है, देखने मेँ लीन हो जाता है। न मुरै = लौटता नहीँ। मुरवा = एड़ी के ऊपर की हड्डी के चारोँ ओर का घेरा, गिट्टा। खरो = अत्यंत। रस० = रस मेँ मस्त होकर। खगै = लीन हो जाता है, अनुरक्त होता है। मिड़ै = चिपक जाता है। भरै० = समय काटता है पर वहाँ से हटता नहीँ। महाउर = महावर, अलक्तक। च्वै० = चूकर, गिरकर। पायनि० = तेरे पैरोँ मेँ लगा जैसे महावर फिर हाथ मेँ नहीँ आता वैसे ही,तेरा मन भी मेरे पैरोँ (को देखने) मेँ लगकर फिर हाथ नहीँ आता।

[२२७] रूप = सौंदर्य। चमूप = सेनापति। देसहि = अपना देश (मन)। मवासी = (धैर्यरूपी) किलेदार, गढ़पति। मवास = दृढ़ किला। नैन० = हृदय-रूपी नगर मेँ धँसते ही नेत्ररूपी भेदियोँ के मिल जाने पर। लाज० = लज्जा (रूपी संपत्ति) लुट गई, वह तिनके के बराबर भी न छूट सकी। सब की सब चली गई। प्रेम = प्रेमरूपी नरेश की दुहाई फिर गई (राज्य हो गया)।

प्रेम-दुहाई फिरी घनआनँद बाँधि लिये कुल-नेम गुढ़ासी।
रीझि सुजान सची पटरानी बनी बुधि बापुरी ह्वै करि दासी ॥२२७॥

कवित्त

आई है दिवारी, चीते काजनि जिवारी प्यारी,
खेलैं मिलि जूवा पैज पूरे दाव पावहीँ।
हारहि उतारि जीतैं मीत-धन लच्छिन सो,
चोप-चढ़े बैन चैन-चुहल मचावहीँ।
रंग सरसावै बरसावै घनआनँद
उमंग-ओपे अंगनि अनंग दरसावहीँ।
दियरा जगाय जागैं पिय पाय तिय रागैं,
हियरा लगाय हम जोगहि जगावहीँ ॥२२८॥

बैस की निकाई सोई रितु सुखदाई, तामैं
तरुनाई उलहत मदन मैमंत है।
अंग अंग रंग-भरे दल फल फूल राजैं,
सौरभ सरस मधुराई को न अंत है।

बाँधि० = कैदकर लिए। कुल० = वंश के नियम। गुढासी = (गूढ़ाशय ?) उपद्रवी, विप्लव करनेवाले। सची = बनाई। रीझ० = चतुर रीझ को तो उसने पटरानी बना लिया और बेचारी बुद्धि दासी होकर ही बच पाई। सावयव रूपक।

[२२८] जिवारी = जिलानेवाली। चीते० = अभिलपित कार्यों को उत्पन्न करनेवाली। मिलि = प्रिय से मिलकर। पैज = प्रतिज्ञा, शर्त। दाव पावहीँ = जीत का द्रव्य पाते हैं। हार = पराजय; माला। लच्छिन = लाखों। चुहल = विनोद। रंग = शोभा, छटा। ओपे = चमकते हुए। दियरा० = दीपक जला कर। रागैं = अनुरक्त होती हैं। हियरा० = हृदय को लगाकर। जोग = योग; संयोग। दिवारी में मंत्र जगाते हैं (हम भी हृदय को लगाकर क्यों न योग जगा लें)।

[२२९] बैस = (वयस्) उम्र। तरुनाई = यौवन; वृक्षों की स्थिति। उलहत = उल्लसित होती है। मदन = काम; हाथी या बकुल का वृक्ष। मैमंत =

मोहन-मधुप क्यौं न लट्टू ह्वै लुभाय भट्टू!
प्रीति को तिलक भाल धरे भागवंत है।
सोभित सुजान घनआनँद सुहाग-सींच्यौ,
तेरे तन-बन सदा बसत बसंत है ॥२२६॥

पल-दल-संपुट मैं मुँदै मन मोद मानै,
आरस-विभावरी ह्वै होत भौँरहाई है।
द्वै सरोज बीच एक बसत रसत कैसें,
लसत सु ऐसें अचिरज अधिकाई है।
बाहिर तैं रूप-मकरंद-पान करै पुन्य,
बड़ी भूतागति हेरें मो मति हिराई है।
नयोई रसिक घनआनँद सुजान यह,
किधौं प्यारी तेरे नैन-सैन की निकाई है ॥२३०॥

उर-गति ब्यौरिबे कौं, सुंदर सुजान जू को
लाख लाख बिधि सौं मिलन अभिलाखियै।

मदमत्त। मधुराई = माधुर्य; शहद। ह्वै = होकर। भट्टू = हे सखी। तिलक = टीका; एक वृक्ष जो वसंत में हरा-भरा होता है।

[२३०] पल = पलक। विभावरी = रात्रि। भौँरहाई = भौँरों का एकत्र होना, भौँरों का मँडराना। आरस० = आलस्यरूपी रात्रि के आ जाने से तेरे नेत्रों की पलक के दलों के भीतर जो मेरा मनरूपी भ्रमर प्रसन्नतापूर्वक बंद होना चाहता है वह बंद नहीं हो पाता, अतः बाहर की बाहर मँडरा रहा है। द्वै सरोज = नेत्ररूपी दो कमल। एक = मेरा मनरूपी भ्रमर तो एक ही है, उन दोनों कमलों में एक साथ कैसे रहता और दोनों का रस-पान करता। रसत = रस लेता। बाहिर० = इसलिए वह बाहर ही बैठकर सौंदर्यरूपी मकरंद का पान कर लेता है। पुन्य = पवित्र। भूतागति = भूत की सी दशा, विलक्षण बात। नयोई० = नए ढंग का रसिक (भ्रमर)। सैन = संकेत; शयन। निकाई = सुंदरता, विशेषता।

[२३१] ब्यौरिबे कौं = सुलझाने के लिए। रिस० = रोष और प्रेम से भरी हुई। कसि = कष्ट सहकर। गसि = (ग्रस्त) भरकर। गाँस = फाँस।

बातैँ रिस-रस-भीनी कसि, गसि गाँस झीनी,
बीनि बीनि आछी भाँति पाँति रचि राखियै ।
भाग जागै जौ कहूँ बिलोकैं घनआनँद तौ,
ता छिन की छाकनि के लोचन ही साखियै ।
भूलै सुधि सातौ दसा-बिवस गिरत गातौ,
रीझि बावरे ह्वै तब औरै कछू भाखियै ॥२३१॥

पौढ़े घनआनँद सुजान प्यारी परजंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंक-गति है ।
भूषन उतारि अंग अंगहि सम्हारि, नाना
रुचि के बिचार सौं समोय सीझी मति है ।
ठौर ठौर लै लै राखैं औरै और अभिलाखैं,
बनतैं न भाखैं तेई जानैं दसा अति है ।
मोद-मद-छाके घूमैं रीझि भीजि रस झूमैं,
गहैं चाहि रहैं चूमैं अहा कहा रति है ॥२३२॥

रूप-गुन-मद-उनमद नेह-तेह-भरे,
छल-बल-आतुरी चटक-चातुरी पढ़े ।

झीनी = छोटी, पतली । बातैँ० = उन्होंने जो रोष और प्रेम से भरी हुई बातें कही हैं वे हृदय में वैसे ही धँस गई हैं जैसे छोटी और पतली गाँसें । उन्हें सावधानी से निकालकर मैं सजाकर एक पंक्ति में रख रहा हूँ । छाकनि = तृप्त होकर उन्मत्त होना । सातौ सुधि० = सातों सुध (पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ, मन और बुद्धि) । सातौ० = सब कुछ भूल गई । दसा० = बेहोशी की दशा के कारण।

[२३२] सुजान = प्रिय, नायक । धन = (धन्या) प्रिया ; द्रव्य । रंक० = दरिद्र की सी अवस्था है, उस धन को छोड़ना नहीं चाहते । समोय = युक्त होकर । सीझना = स्नेह आदि द्रव पदार्थ का किसी वस्तु में भिन जाना । सीझी = भरी हुई । तेई० = वह कहा नहीं जा सकता (अनिर्वचनीय है) । वे दशाएँ ही उसके रहस्य को भली भाँति जानती हैं । घूमैं = मत्त हो जाते हैं । चाहि० = देखते रहते हैं । रति = प्रेम ।

घूमत घुरत अरबीले न मुरत क्यौंहूँ,
प्रानन सौं खेलैं अलबेले लाड़ के बढ़े।
मीन-कंज-खंजन-कुरंग-मान-भंग करैं,
सींचे घनआनँद खुले सँकोच सौं मढ़े।
पैने नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
घाती बड़े काती लिये छाती पै रहैं चढ़े ॥२३३॥

ललित उमंग-बेली आलबाल-अंतर तें,
आनँद के घन सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी।
आगम-उमाह-चाह छायौ सु उछाह-रंग,
अंग अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नीकैं इन पै पढ़ी।
कंचुकी तरकि, मिले सरकि उरज, भुज
फरकि सुजान चोप-चुहल महा बढ़ी ॥२३४॥

---

[२३३] उनमद = उन्मत्त। तेह = रोष, प्रचंडता, तेजी। आतुरी = आतुरता, तत्परता। चटक = फुरती। घूमत = चक्कर काटते रहते हैं। घुरत = घुलते हैं, लीन होते हैं, अपने काम में अधिकाधिक लगते हैं। अरबीले = अड़ने वाले, हठी। लाड़॰ = प्यार से पालकर बढाए गए, मारे प्यार के सिर चढे। सींचे॰ = अत्यंत आनंद से सिंचे हुए, आनंदमय। खुले = अपलक, खुले हुए; नग्न। मढ़े = युक्त; ढके। अनेरे = तीखे, दुष्ट, अन्यायी; अनीवाले। घाती = चोट करनेवाले; हत्या करनेवाले। काती = कत्ता, छोटी तलवार।

[२३४] आलबाल॰ = हृदयरूपी थाला। उमाह = उल्लास। फूलनि = फूल निकलना; प्रसन्न होना। दुकूलनि = वस्त्रों से; दोनों ओर से (लता-पक्ष में)। दृग॰ = नेत्ररूपी खंजन पक्षी। दसा = कामदशा, प्रेम की दशा। सगुनौती = यहाँ 'मंगल-पाठ'। नीकैं = भली भाँति। इन पै = इनके लिए। तरकि = टूटकर, फटकर; शीघ्रता से। सरकि = बढकर (बड़े होकर); आगे आकर। फरकि = फड़ककर; फुरती से। चोप॰ = आनंदोत्सव।

सवैया

तेरी निकाई निहारि छकैं, छवि हू को अनूपम रूप कढ्यौ है।
ईठ ह्वै दीठि पै नीठि कटाछिन आय मनोज को चोज पढ्यौ है।
आनँद के घन राग सों पागि सुजान सुहागहि भाग बढ्यौ है।
लाड़ तें लाड़िली होति है और पै तो तन लाड़हि लाड़ चढ्यौ है॥२३५॥

अंजन त्यौर ही ताक्यौ करै, नित पान लखै मुख-त्यों रँग-चायनि।
औरौ सिँगार सदा घनआनँद चाहैं उमाह सों आपने दायनि।
तू अलबेली सरूप की रासि सुजान बिराजत सादे सुभायनि।
ए परि नाच कै साँच छक्यौ जु लटू भयौ लाग्यौ फिरै तुव पायनि॥२३६॥

मिहँदी रँग पायनि रंग लहै सुठि सौंधो सु अंगनि संग बसै।
तरुनाई पै कोक पढ़ै, सुघराई सिखावति है रसिकाई रसै।

---

[२३५] छकैं = तृप्त होते हैं। कढ्यौ = प्रकट हुआ है। ईठ = (इष्ट) मित्र। नीठि आय = बड़ी कठिनाई से आकर। चोज = उमंग, मस्ती। राग = प्रेम; लाल रंग। सुहाग = सौभाग्य। लाड़० = अन्य नायिकाएँ तो 'लाड़' (प्यार) पाकर 'लाड़ली' बनती हैं, पर तेरे शरीर पर तो 'लाड़ ही लाड़' (पूजा की भेंट के रूप में) चढ़ा हुआ है। तू सर्वांग प्यार से भरी है।

[२३६] अंजन० = अंजन सदा तेरी चितवन देखता रहता है कि कब मुझे अपनी आँखों में लगाकर मेरी श्यामता बढ़ाई जायगी। त्यौं = ओर। रँग० = अपने रंग (ललाई) की वृद्धि के अभिलाष से। उमाह = उमंग, उल्लास। दाय = अवसर, मौका। सरूप = (सुरूप) सौंदर्य। सादे० = सादे-रूप में, बिना किसी श्रृंगार के। ए परि = किंतु, फिर भी। नाच = नृत्य। कै साँच = अपने को सत्य सिद्ध करके। लटू० = मुग्ध होकर। ए परि० = इतने पर भी स्वयं नृत्य अपने को सत्य सिद्ध करके और (तेरे पैरों की गति से तृप्त होकर) मुग्ध हो तेरे पैरों में लगा रहता है। त्यौर ताकना, मुख लखना, पैरों में लगा फिरना आदि मुहावरे श्रृंगार की वस्तुओं की याचकता या दीनता तो व्यक्त करते ही हैं, उन अंगों के ही मुहावरे भी हैं जिन अंगों के प्रति श्रृंगार की वस्तुएँ याचक हैं।

घनआनँद रूप-अनूप-भरी हित-फंदन मैं गुन-ग्राम वसै।
सब भाँति सुजान न आन समान कहा कहौं आप तैं आप लसै ॥२३७॥

कवित्त

रूप की उझलि आछे आनन पै नई नई,
तैसी तरुनई तेह-ओपी अरुनई है।
उलटि अनंग-रंग की तरंग अंग अंग,
भूषन-बसन भरि आभा फैलि गई है।
महारस-भीर परैं लोचन अधीर तरैं,
आछी आक धरैं प्यास-पीर सरसई है।
कैसें घनआनँद सुजान प्यारी छवि कहौं,
दीठि तौ चकित औ थकित मति भई है ॥२३८॥
नीकी नासा-पुट हो की उचनि अचंभे-भरी,
मुरि कै इचनि सौं न क्यौंहूँ मन तें मुरै।

---

[२३७] मिहँदी० = मेहँदी को रंग तेरे ही पैराँ से मिलता है। सुठि = सुंदर, उत्कृष्ट। सौंधो = सुगंध। वसै = सुवासित होती है। तरुनई० = तेरे यौवन से स्वयं कोक (कोकशास्त्र के निर्माता) कामकला की बातें पढ़ते हैं। सुघराई० = तेरी रसिकता स्वयं रस को चतुरता सिखाती है। गुन = गुण; डोर ग्राम = समूह। हित० = तेरे प्रेम के फंदों में गुणों (डोरों) के समूह बँधे हैं। प्रेम के बंधन में अनेक विशेषताएँ हैं। आप तैं० = (दूसरों को तो तू सुशोभित करती है पर) तुझे सुशोभित करने के लिए किसी शृंगार या शिक्षा की आवश्यकता नहीं, तू स्वतः सुशोभित है।

[२३८] उझलि = एकत्र होना, उमड़ाव। तेह = यौवन का तीखापन। ओपी = चमकी हुई, चमक पाकर खिली हुई, सुशोभित। उलटि = एक पर एक फैलकर। भरि = भरकर, भरी-पूरी होकर। फैलि गई है = फैल गई है, छा गई है। आभा० = छटा छा गई है। भीर = अधिकता अर्थात् प्रवाह। तरैं = तैर रहे हैं। ओक = अंजली। आछी० = भरी-पूरी अंजली धारण करते हैं, भरपेट पीते हैं। प्यास० = फिर भी उनकी प्यास की पीड़ा (उत्कंठा) बढ़ती ही जाती है।

रूप-लाड़ जोबन-गरूर चोप-चटक सों,
अनखि अनोखी तान गावै लै मिहीं सुरै।
सहज हँसौंहीं छबि फबति रँगीले मुख,
दसननि जोति-जाल मोती-माल सी रुरै।
सरस सुजान घनआनँद भिजावै प्रान,
गरबीली ग्रीवा जब आनि मान पै दुरै ॥२३९॥

सवैया

दृग छाकत हैं छबि ताकत ही मृगनैनी जबै मधुपान छकै।
घनआनँद भीजि हँसै सु लसै झुकि झूमति घूमति चौंकि चकै।
पल खोलि ढकै लगि जात जकै, न सम्हारि सकै बलकैऽरु बकै।
अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै ॥२४०॥
पानिप-मोती मिलाय गुही गुन-पाट पुही सु जु ही अभिलाखी।
नीके सुभाय के रंग भरी हित-जोति खरी न परै कछु भाखी।

[२३९] नासापुट = नसिका के पुट (छिद्र)। उचनि = उठान। इचनि = खिँच जाना। मुरि कै० = मुड़कर खिंच जाना, मुड़कर घूम जाना। सो = वह। मुरै = हटती है। रूप० = सौंदर्य के प्रेम से। जोबन० = यौवन के गर्व से। चोप० = उमंग की स्फूर्ति से। अनखि = रूठने का स्वाँग भरती हुई। मिहीं = मंद, मधुर। सुरै = स्वर से। रुरै = (लुरै) छा जाती है या सुशोभित होती है। जब० = जब उसकी ग्रीवा अभिमान की मुद्रा से मुड़ती है।

[२४०] छाकत है० = (तृप्त होकर) मतवाले हो जाते हैं। ताकत ही० = देखते ही। मधु० = शराब को पीकर जब मत्त होती है। भीजि = भींग-कर, भरकर। घूमति = नशे में चक्कर काटती है। चकै = चकपकाती है। जकै = जक ही, सनक ही। बलकै = नशे में उमंगित होती है। रु = अरु, और। बकै = बकती है। इकौसी = अकेली। इकौसी० = बेचारी लज्जा भी अकेली पड़कर थक जाती है, लज्जा भी चली जाती है।

[२४१] पानिप = शोभा, ओप। पानिप० = शोभारूपी मोती के दानों को लेकर। गुन = गुण; डोर। पाट = रेशम। पुही = पोई हुई, पिरोई हुई। ही = हृदय में। नीके सुभाय० = उत्तम स्वभाव के रंग से रँगी हुई। हित० =

चाह लै बाँधी दै प्रीति की गाँठि सु है घनआनँद जीवन*साखी।
नैननि पानि विराजति जान जू रावरे रूप अनूप की राखी ॥२४१॥
सोभा-सुमेरु की संधितटी† किधौं सोभति मान-मवास की घाटी।
कै रसराज-प्रवाह को मारग बेनी-बिहार सों यों दृग दाटी।
काम-कलाधर ओप दई मनौ प्रीतम-प्यार-पढ़ावन-पाटी।
जान की पीठि लखें घनआनँद आनन आन तें होत उचाटी ॥२४२॥

कवित्त

तें मुँह लगाई तातें मोहिं मौन ही की कथा,
रसना के उर एकरस रही बसि है।
तेरी सोई जान! सोई जानै जिन जोही छवि,
क्यों धौं इन नैनन ते नींद गई नसि है।

प्रेम की उत्कृष्ट ज्योति (चमक) से युक्त। न परै० = जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता, अकथनीय। चाह = इच्छा ने। साखी = साक्षी। नैननि० = नेत्रों के हाथ में। राखी = रक्षा का डोरा। श्रावण की पूर्णिमा को जो राखी बाँधी जाती है।

[२४२] सोभा० = शोभारूपी पर्वत का संधिस्थान है। मेरुदंड के दोनों ओर के उमड़े भागों को सुमेरु कहते हैं। मान = गर्व। मवास = पहाड़ पर बना दृढ़ किला। मान० = मानरूपी पहाड़ी दुर्ग से सटी हुई कोई घाटी (उपत्यका) है। रसराज = शृंगार। बेनी = चोटी। बिहार सों = सुशोभित होने से। बेनी० = पीठ पर पड़ी चोटी ऐसी जान पड़ती है जैसे शृंगार के प्रवाह का मार्ग हो (शृंगार का रंग कविसमय में श्याम माना जाता है)। दाटी = प्रतीत होती है, छजती है। काम० = काम ने चंद्रमारूपी घुट्टे से घोटकर चमक चढ़ाई है। पाटी = पट्टी, लिखने-पढ़ने की पटिया। आनन० = मुख किसी दूसरे को देखने से उचटकर उसी के देखने में लगा रहता है।

[२४३] तें० = तूने मुँह लगाया, तुझे प्रिय लगने लगी है। एकरस = ज्यों की त्यों, निरंतर एक सी रहनेवाली। सोई = सोई हुई। सोई = वही।

* जोबन। † सिंधुतटी।

छोरि छोरि डारे जे जे भूषन विदूषन से,
तहीँ तहीँ लगि लोभी मन गयौ गसि है।
आरस-रसीली घनआनँद सुजान प्यारी,
ढीली दसा ही सोँ मेरी मति लीनी कसि है ॥२४३॥

चलदल-पात की प्रभा को है निपात जातेँ,
यातेँ बाय बावरो डराय काँपिबो करै।
थोरे थिर गुन मैँ बिराजै चिर आभा ऐन,
नैन हेरैँ हेरनि हिये मैँ भूख लै भरै।
नेकौ सनमुख भएँ दीजै सब तन पीठि,
नीठि हाथ लागै मन पायन कहूँ परै।
ताकैँ तो उदर घनआनँद सुजान प्यारी,
ओछी उपमान को गरूर ओरे लौँ गरै ॥२४४॥

जोही = देखी। बिदूषन = विदूषित करनेवाले (तेरे शरीर को आभूषण विदूषित किया करते हैं, तेरी स्वाभाविक छटा ही उत्तम है)। तहीँ० = जिन जिन अंगोँ से भूषण उतारे गए हैं उन उन अंगोँ मैँ। गसि० = चिपट गया है, अनुरक्त हो गया है। ढीली = शिथिल। ढीली० = अपनी (शरीर को शिथिल कर देने की) ढीली दशा (मुद्रा) से ही मेरी बुद्धि को कस लिया है। मेरी बुद्धि तेरी इस शिथिल दशा मैँ ही मग्न है (विरोध)।

[२४४] चलदल० = पीपल के पत्ते की प्रभा उदर को देखकर नष्ट हो जाती है। यह देखकर बेचारी वायु पगली होकर डर से काँपा करती है कि मुझे ही उनके उदर के उपमानोँ (पत्तोँ) को गिराने के लिए कहा जायगा मैँ कहाँ तक उन्हेँ गिराऊँगी। थिर = स्थिर, अचंचल। चिर = चिरकाल तक रहनेवाली। ऐन = ठीक, भरपूर। नैन० = यदि उनका उदर देखा जाय तो उसके देखने से दर्शक मैँ देखते रहने की भूख जग जाती है। नेकौ० = उस (उदर) के थोड़ा भी संमुख होने पर, उसे देखने पर, सबको पीठ देनी पड़ती है, विमुख होना पड़ता है। नीठि० = यदि मन उसके पैरोँ मैँ भी लग जाय तो कठिनता से हाथ आता है (फिर उदर देखकर तो सब को पीठ देना उचित ही है)। तो = तव, तेरा। ओरे० = ओले की भाँति गल जाता है।

सवैया

साँच के सान-धरे सुर-बान, पै छूटैं बिना ही कमान सौं जोटैं।
दीसैं जहीं के तहीं सु चलैं अति घूमति है मति या चख-चोटैं।
घाव को चाव बढ़ै घनआनँद चाड़नि लै उर आड़नि ओटैं।
प्रान सुजान के गान-बिंधे घट लोटैं परे, लगि तान कचोटैं* ॥२४५॥
जोबन-रूप-अनूप-मरोर सौं, अंगहि अंग लसै गुन-ऐंठी।
चातुरी-चोख मनोज के चोजनि घूघरिवारियै ऊठ अमैंठी।
सूधे न चाहै कहूँ घनआनँद सोहै सुजान गुमान-गरैंठी।
पैठत प्रान खरी अनखीली सु नाक चढ़ाएई डोलत टैंठी ॥२४६॥
गोरे डडा पहुँचानि बिलोकत रीझि रँग्यौ लपटाय गयौ है।
पन्ननि की पहुँचीन लखैं इन आभा-तरंगनि संग रयौ है।

---

[२४५] साँच = सचाई के शाणपट्ट पर तेज किए हुए। सुर० = स्वररूपी बाण। जोटैं = जोट पर, प्रतिपक्षी पर। दीसैं० = कटाक्ष तो जहाँ के तहाँ दिखाई देते हैं, आँखों में ही रहते हैं, फिर भी चलते हैं और उनके चलने पर आँख की चोट से बुद्धि अत्यंत आहत होकर छटपटाने लगती है। घाव को० = घाव की अधिकता होने पर। चाड़नि० = उत्कंठाओं की आड़ लेकर हृदय उन आघातों को बचाता है। चाव के कारण आघात आघात नहीं जान पड़ता। गान० = गान से बिद्ध होकर, गान पर मुग्ध होकर। घट = शरीर में। लोटैं = छटपटाते हैं। परे० = तान के लगने से गिर पड़े हुए। कचोट = व्याकुल होते हैं।

[२४६] जोबन० = यौवन और सौंदर्य के। मरोर० = ऐंठन; अभिमान। गुन = डोर; गुण (विशेषता)। ऐंठी = ऐंठन दी हुई; गर्वीली। चोख = फुरती। चोज = विनोद की वृत्ति। घूघरिवारियै = घुँघराले बालवाली ही। ऊठ = उठान। अमैंठी = उमेठी हुई, मुड़ी हुई। सूधे० = सीधे तो देखती नहीं। गरैंठी = (गरिष्ठ) टेढ़ी। खरी = अत्यंत। अनखीली = थोड़े में ही चिढ़ जानेवाली, तिनकनेवाली। नाक० = अर्थात् रोष की मुद्रा में। टैंठी = (प्राकृत 'टेंटा' से) अस्थिर, चंचल।

* की चोटैं।

नीलमनीनि हियैलैँ बनी रुचि-रूप-सनी सु घनीन छयौ है।
चारु चुरीनि चितै घनआनँद चित्त सुजान के पानि भयौ है ॥२४७॥

तेरी विना ही वनाय की वानिक जीतै सची-रति-रूप-भलापन।
को कबि सो छवि कौं बरनै रचि राखनि अंग सिँगार-कलापन।
कान ह्वै तान को रूप दिखावति ज्ञान जवैँ कछू लागै अलापन।
नाचहि भाव के भेद बतावत है घनआनँद भौंह-चलापन ॥२४८॥

कवित्त

रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछि धूम करैं कौन पै विरैं।
नाच की चटक लसै, अंगनि मटक-रंग,
लाड़िली लटक-संग लायन लगे फिरैं।

---

[२४७] गोरे = गौर वर्ण। सोने के डडा = कँगना। पहुँचानि = कलाइयाँ पर। रँग्यो = अनुरक्त हो गया। पन्ननि० = पन्ना (रत्न) से जटित। पहुँची = कलाई पर पहना जानेवाला एक गहना। रयौ = लीन हो गया है। नील० = नीलमों की। हियैलैँ = कदाचित् पछेली। बनी = अच्छी। रुचि = छटा। घनीन = अनेक।

[२४८] बनाय = बनावट। वानिक = वेश। सची = इंद्राणी। भला-पन = उत्तमता, अच्छाई। तेरी...कलापन = जब तेजी स्वाभाविक छटा ही इंद्राणी, रति आदि के सौदर्य की श्रेष्ठता जीत लेती है तो फिर यदि तू रच-रचकर शरीर का शृंगार करे तो भला कौन कवि उसका वर्णन कर सकता है। कलापन = समूह। रूप० = रूप खडा कर देती है, प्रत्यक्ष दिखाई देती है। कान = कान के द्वारा तान का रूप दिखाती है (विरोध)। नाचहि० = नृत्य में जो भाव होता है उसका रहस्य भौंह की चंचलता बता देती है। उसकी भौंहें ऐसी ऐसी मुद्राएँ दिखाती हैं जिनके द्वारा नृत्य के भावों की वास्तविक अनु-भूति हो जाती है।

[२४९] घूमरे० = नशा लानेवाले (मत्त कर देनेवाले) कटाक्ष। कटाछि = कटाक्ष। धूम० = धूम मचाए रहते हैं। पै = निश्चय। कौन० = वे कौन हैं जो उन्हें छेँक सकते हैं (कोई नहीं)। चटक = फुरती। अभिनै =

अभिनै-निकाई निरखत ही बिकाई मति,
गति भूली डोल, सुधि-सोधौ न लहौं हिरैं ।
राते तरवानि तरैं चूरे चोप चाड़-पूरे,
पाँवड़े लौं प्रान रीझि ह्वै कनावड़े गिरैं ॥२४६॥

सवैया

नाच-लट्टू ह्वै लग्यौ फिरै पायनि, चायनि चाहि लड़ीलियै डोलनि ।
त्यौं सुर साँच सवाद सनें, मन भूठियै लागति बीन की बोलनि ।
नेकु हँसैं सु करोरिक चंदनि चेरो करै दुति-दंत-अमोलनि ।
ऐसी सुजान लखैं घनआनँद नैन परैं रस-मैन-कलोलनि ॥२५०॥
मादिक रूप रसीले सुजान को पान कियें छिनकौ न छकै को ।
भूल कौं सौंपि तबै जु सबै सुधि, काहू की कानि कनौड़त कै को ।

नाट्य, अभिनय । सोधौ = खोज भी । हिरैं = खोजाने पर भी । चूरे = चूरचूर हो गए । चाड़० = उत्कट इच्छा से पूर्ण । कनावड़े = दबैल ।

[२५०] नाच० = नृत्य पर मुग्ध होकर । लड़ीलियै = प्यारी, सुहानेवाली ही । डोलनि = गति । सुर = स्वर । सनैं = सन जाने पर, युक्त होने पर । बीन = वीणा । दुति० = अमूल्य दाँतों की द्युति से । मैन = मदन, काम । रस० = काम की रसधारा में पड जाते हैं ।

[२५१] मादिक = नशा । छिनकौ न = क्षण भर के लिए भी । को = कौन । भूल० = तब अपनी सारी सुध-बुध भूल (विस्मृति) को देकर । कनौडत = दबता है, परवाह करता है । काहू० = किसी (वंश या बड़े लोगों) की मर्यादा का विचार करके उसकी परवाह फिर कौन करता है (कोई नहीं) । वारि = निछावर करके । निवारि० = लज्जा को दूर करके । बिन० = बिना कारण ही ऐसी अवस्था बन आती है कि उसे कौन सँभाल सकता है । काज = कारण । सकै को = कौन ठहर सकता है, अपने को सँभालने में समर्थ हो सकता है । बावरे० = पगले, अरसिक । बावरे० = जो अरसिक हैं उनसे (सुजान के रूप के अवलोकन से उद्भूत अत्यंत आनंददायिनी) रीझों द्वारा अपना हृदय सरस करने के अनंतर उनकी अरसिकता पर रुष्ट होकर कौन बकवाद करने जाय (उन्हें समझाने में सिर खपाना व्यर्थ है) ।

प्रानिनि वारि निवारि कै लाजहि, ऐसी बनै बिन काज, सकै को।
बावरे लोगन सों घनआनँद रीझनि भीजि कै खीजि बकै को ॥२५१॥

कवित्त

चोप-चाह चाँचरि, चुहल चोख चटकीली,
अटक निवारैं टारैं कुलकानि-कीचि कै।
घात लै अनूठी भरैं चेटक*-चितौन-मूठी,
धूँधरि चिलक-चौंध बीच†कौंध सों टिकै।
भीजे घनआनँद सुजान के खिलार दृग,
नैसिक निहारैं जिनकी निकाई पै बिकै।
रूप-अलबेली सु नवेली एरी तेरी आँखैं,
ताकि छाकि मारैं हुरिहाईं न कहूँ छिकै ॥२५२॥

सवैया

कोऊ न देखै न काहू दिखावत, आपनो आनन जान अमैंड़े।
बैठि सभा-मधि न्यारे रहैं पुनि रोकत चेटक लौं दृग-पैंड़े।

---

[२५२] चोप० = उमंग की उत्कंठा ही। चाँचरि = होली का राग है। चुहल = विनोद। चोख = अत्यंत फुरती। चुहल० = उसमें जो चटक से भरी हुई स्फूर्ति है वही विनोद की वृत्ति है। कीचि० = कर्दम से। घात० = विलक्षण दाँव साधकर। चेतक० = जादूभरी दृष्टि की मुट्ठी। धूँधरि० = बिजली की लपलपाहट की भाँति अपनी चमक की दमक से वे (होली के समय का सा) धुंध टिकाए हुए हैं। उनकी चमक देखकर लोगों का चौंधिया जाना ही धुंध का छाना है। भीजे = रस से भीँगे, रंग से सराबोर। खिलार = होली खेलनेवाले। नैसिक = थोड़ा सा। जिनकी० = जिनकी सुंदरता पर बिक जाना पड़ता है। ताकि = देखकर। छाकि = छका मारती हैं। हुरिहाईं = होली खेलनेवाली। न कहूँ० = किसी दूसरे के द्वारा छिँकतीं नहीं।

[२५३] अमैंड़े = मर्यादा को न माननेवाले। बैठि० = लोगों के बीच रहकर भी सब से पृथक् रहते हैं। चेटक = जादू। पैंड़े = मार्ग, गति। कहैं =

* चेतक। † बीज।

कौन पत्याय कहैं घनआनँद हैं सब सूधे-सयानें सौं ऐंड़े।
रूप अनूपम को पुर दूरि, सु बावरे नैनन के मग बेंड़े ॥२५३॥
नैन किये अति आरति-ऐन सु रैनि-दिना चित-चोप बिसेखै।
नीके सुधानिधि-रूप छक्यौ रचि आगि चुगै सब त्यागि परेखै।
जैसें सुजान लखें घनआनँद नेही न आन हियें अवरेखै।
ऐसें उजागर हैं जग मैं परि चंदहि एक चकोरहि देखै ॥२५४॥

कवित्त

नेही की बिलोकनि बिलोय सार सोधि लेइ,
रूपौ रिझवार जानि काढ़ै गुन द्रव के।
चाड़ सिर चढ़त बढ़त अति लाड़िलो ह्वै,
कैसें गनै बनै जेऽब ओटपाय तब के।

कहने पर। कौन० = कहने पर भला कौन विश्वास करेगा। सूधे० = लोग तो सीधी चतुराई से ही गर्वित घूमते हैं। वे लोग इन टेढ़ी बातों को क्या समझेंगे। बेंड़े = टेढ़े। रूप० = वस्तुतः रूप का अनुपम नगर (जिसे लोग निकट समझते हैं) बहुत दूर है और इन पगले नेत्रों के मार्ग टेढ़े मेढ़े हैं, बेचारे वहाँ तक पहुँचें भी तो कैसे।

[२५४] बिसेखै = बढ़ाता है। सुधानिधि = अमृत का कोश (सुधाकर)। रचि = हर्षपूर्वक लगकर। परेखै = पछतावे को। जैसें० = ज्यों ही सुजान को देखा। अवरेखै = ठहराता है। ऐसें० = यों तो बहुत से प्रकाशपिंड हैं और बहुत से देखनेवाले हैं। परि = किंतु।

[२५५] नेही = प्रेमी; चिकनाई से भरा। बिलोय = मथकर। सार = शरीर का सार; तत्त्व (घृत, स्नेह आदि)। सोधि० = निकाल लेता है। द्रव के = (द्रवि कै) नम्र बनकर। चाड० = प्रिय की उत्कंठा (प्रेमी के) सिर पर चढ़ जाती है और अत्यंत दुलारी होकर (प्रेमा में) बढ़ने लगती है। फिर उस समय वह जो जो उत्पात करने लगती है वे अब (उत्पात कर लेने के अनंतर) गिने भी जायँ तो कैसे, गिनते ही नहीं बनते (अनेक उपद्रव करती है)। ओटपाय = अठपाव, उपद्रव। अलबेले = विलक्षण। खूँद = कुरेदते हैं, कुचलते हैं। भारे = भारी। सुगरब के = अत्यंत गर्व से भरे हुए (वे खेल)।

खेल अलबेले हियो खूँदैं घनआनँद यौं,
जान प्यारे मतवारे भारे सुगरब के।
कहिवे कौं कोऊ किन देखौ, न परेखो, वे तौ
चाँदिनी के चोर, मोरपच्छ-अच्छ सब के ।।२५५।।

सवैया

सोए हैं अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग के रंग निस्यौं करि।
केलि-कला-रस-आलस-आसव पान-छके घनआनँद यौं करि।

खेल० = मदमत्त और अत्यंत गर्व से युक्त प्रिय सुजान के वे बड़े और विलक्षण खेल (क्रीड़ा) हृदय को ऐसा कुरेदने लगते हैं कि कुछ कहते ही नहीं बनता। किन = क्यों न। परेखो = परिणाम, फल। चाँदिनी० = खुल्लमखुल्ला चोरी करनेवाले, (छिपकर अँधेरे में नहीं) चाँदनी में चित्त चुरा लेनेवाले। अच्छ = (अक्षि) आँख। मोरपच्छ० = जिस समय वे चित्त चुराते हैं उसी समय लुटनेवालों के नेत्र मोरपंख में बनी आँखों की भाँति बनावटी बने रह जाते हैं, वे चोरी जाते माल को देखते हुए भी बचा रखने में सफल नहीं होते। कहिवे को० = कहने को चाहे लोग कितना भी देखते रहें पर सब निष्फल होता है। वे चाँदनी में भी चित्त चुरा लेते हैं और नेत्र वैसे ही बने रह जाते हैं जैसे मोरपंख की आँखें। यहाँ प्रिय के चित्त चुराने की विलक्षणता का वर्णन है और उसका साथ देनेवाले रूप, चाड़ और खेल आदि बतलाए गए हैं, जो ठगविद्या चित्त चुराने में सहायक होते हैं। इसमें चित्त के चुराने की सफाई का वर्णन किया गया है।

[२५६] अंगनि० = प्रत्येक अंग, सब अंग। समोए = भीँगे हुए, रससिक्त। भोए = रँगे। रंग = आभा ; वर्ण। निस्यौं करि = निश्चित होकर। केलि० = कामकेलि की कला के आनंद से उत्पन्न आलस्य के मद का पान करने से नशे में चूर होकर। यौं करि = इस प्रकार, इतने अधिक। रागत = अनुराग करते हैं। पागत = पगे रहते हैं, लिप्त रहते हैं (सोए रहते हैं)। प्रेमनिसा० = प्रेम की रात्रि में लीन होते और पगते रहते हैं। लागत = जान पड़ते हैं। लागत० = हमारे अंगों को तो (हमारी इंद्रियों को तो) ऐसे जान पड़ते हैं जैसे जागते

प्रेमनिसा-मधि रागत पागत, लागत अंगनि जागत ज्यौँ करि।
ऐसे सुजान-बिलास-निधान हैं सोएँ जगे कहि ब्यौरियै क्यौँ करि ॥२५६॥
चातुर ह्वै रस-आतुर होहु न बात सयान की जात क्यौं चूके।
ऐसी अठाननि ठानत हौ कित, धीर धरौ न, परौ जिन ढूके।
देखि जियौ, न छियौ घनआनँद कौंवरे अंग सुजान-बधू के।
चोली-चुनावट-चीन्हे चुभै चपि होत उजागर दाग* उतू के ॥२५७॥
मृदु मूरति लाड़-दुलार-भरी अँग अंग बिराजति रंगमई।
घनआनँद जोबन-माती दसा छबि ताकत ही मति छाक छई।
बसि प्रान सलोनी सुजान रही, चित पै हित-हेरनि-छाप दई।
वह रूप की रासि लखी तब ते सखी आँखिन कैं हटतार भई ॥२५८॥

कवित्त

माधुरी गहर, उठै लहर-लुनाई जहाँ,
कहाँ लौं अनूप रूप-पानिप बिचारियै।
आरसी जौ सम दीजै बूझ कौं अरूझ कीजै,
आछे अंग हेरि फेरि आपौ न निहारियै।

हुए ही हो। ज्यौँ करि = जैसे। सोएँ = सोने पर भी जग रहे हैं, स्वयं सोते हुए भी हमारे हृदय में जगे रहते हैं (बसे रहते हैं)। ब्यौरियै० = समझ भी सकूँ तो कैसे।

[२५७] आतुर = व्यग्र। जात० = चूके क्यों जाते हो। अठान = जो ठानने योग्य न हो, अकरणीय, नटखटपना। कित = क्यों, किस लिए। धीर० = धैर्य क्यों नहीं धारण करते। परौ० = पाने की घात मत लगाओ। न छियो = छूओ मत। कौंवरे = कोमल। चोली० = चोली की चुनावट के चिह्नों के चुभ जाने से (दबाव पडने से)। उजागर = प्रकट। उतू = एक औजार जिससे बेलबूटे बनाते हैं, चुनावट डालते हैं। चुनावट के भी दाग उभड़ आते हैं।

[२५८] छाक = नशा। हित० = प्रेमपूर्वक देखते हुए उसने चित्त पर उसकी छाप डाल दी। हटतार = हठपूर्वक देखने का तार (सिलसिला) टकटकी।

* होत।

मोहनी की खानि है सुभाय ही हँसनि जाकी,
लाड़िली लसनि ताकी प्राननि तें प्यारियै।
रीझौ रीझि भीजै घनआनँद सुजान महा,
वारियै कहा, सकोच सोचन ही हारियै ॥२५९॥

सोभा-बरसीली सुभ सील सौं लसीली,
सु रसीली हँसि हेरैं हरै बिरह-तपति है।
अति ही सुजान प्रान-पुंज-दान बोलनि मैं,
देखी पैज-पूरी प्रीति-नीति कौं थपति है।
जाके गुन बँधें मन छूटै और ठौरनि तें,
सहज मिठास लीजै स्वादनि सपति है।
पानिप अपार घनआनँद उकति ओछी,
जतन-जुगति जोन्ह कौन पै नपति है ॥ २६०॥

जान प्यारे नागर अनूप गुन-आगर हौ,
जगत-उजागर बिलास-रसमसे हौ।
नवल-सनेह-साने आरसनि सरसाने,
बिधना बनाय बाने अंग अंग लसे हौ।

---

[२५९] गहर = गहरी। लुनाई = लावण्य, सौंदर्य। पानिप = पानी; शोभा। बूझ = बुद्धि, समझ। अरूझ = उलझी हुई, अवरुद्ध। आपौ० = अपने को भी नहीं देखा जा सकता। रीझौ = स्वयं रीझ भी। वारियै० = क्या निछावर करूँ इस संकोच और सोच से परेशान हूँ।

[२६०] बरसीली = बरसानेवाली। सील = शील गुण, शिष्टता; आर्द्रता, गीलापन। रसीली = रसभरी; पानी से भरी। तपति = संताप; गर्मी। प्रान० = उसके बोलने में ही प्राणों का दान मिल जाता है। पैज = प्रतिज्ञा। गुन = स्वभाव की विशेषता; डोर। छूटना = बंधन से मुक्त होना; हटना। स्वादनि = स्वादों को। सपति है = शाप देती है, अन्य स्वादों को नष्ट कर देनेवाली है। [अथवा उसकी स्वाभाविक मिठास में ही स्वादों के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है]। उकति = वाणी। ओछी = छोटी, तुच्छ। जतन = भला कोई किसी यत्न या युक्ति से चाँदनी को भी नाप सकता है (नहीं)। पै = से।

छवि-निखरे ह्वै खरे नीकेई लगत मोहिँ
आनँद के घन गूढ़ गाँसनि सोँ गसे हौ।
भोर भएँ आए भाँति भाँति मेरे मन भाए,
'एहो घरबसे आज कौन घर बसे हौ ॥२६१॥

रूप-गुन-आगरि नवेली नेह-नागरि तू
रचना अनूपम बनाई कौन बिधि है।
चलनि चितौनि बंक भौँहनि चपल हौनि,
बोलनि रसाल मैन-मंत्र हू कौँ सिधि है।
अंग अंग केलि-कला-संपति-बिलास घन-
आनँद उज्यारी-मुख सुख-रंग-रिधि है।
जब जब देखियै नई सी पुनि पेखियै यौँ,
जानि परी जान प्यारी निकाई की निधि है ॥२६२॥

सहज उज्यारी-रूप जगमगी जान प्यारी,
रति पै रतीक आभा है न रोम-रीस की।
चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,
कहा कहौँ सोभा सुभ-भरे भाल सीस की।
बीच बीच मंजुल मरीचि-रुचि फैलि फबी,
केलि-समै उपमा लसति बिसे-बीस की।

---

[२६१] आगर = आगार, संपन्न, युक्त। उजागर = प्रकाशित। रसमसे = रंग में मस्त, आनंदमग्न। सरसाने = छाए हुए, भरे हुए। बिधना० = विधाता के द्वारा रच-रचकर बनाए हुए बाने से। निखरे = धुले हुए, नि + खरे ('निखरे' और 'खरे' में विरोध दिखाने के लिए)। गाँस = हथियार के फल की टूटन। गसे = भरे हुए। घरबसे = उपपति। कौन० = आज किसका घर बसाया, रातभर किसके घर रहे।

[२६२] बिधि = ब्रह्मा; रीति। रसाल = रसीली। मैन० = मदन, काम। मौन = काम के मंत्रों को भी सिद्धि देनेवाली। उज्यारी० = मुख की दीप्ति। रंग = आनंद। रिधि = समृद्धि। सुख० = सुख के भी आनंद की समृद्धि है।

मानौ घनआनँद सिँगार-रस सौं सँवारी,
चिक मैं बिलोकति वहनि रजनीस की ॥२६३॥

मीत मनभावन रिझावन कौं जान प्यारी,
आई घनआनँद घमड़ि आछी वनि है।
मंजन कै अंजन दै भूषन-वसन साजि,
राजि रही भृकुटी जुटौंही बंक तनि है।
अंग अंग नूतन निकाई उझलनि छाई,
भौन भरि चली सोभा नदी लौं उफनि है।
देखनि दुलार-भोई बोलनि सुधा-समोई,
मुख की सुबास स्वास निसरति सनि है ॥२६३॥

सवैया

भावते के रस-रूपहि सोधि ल, नीकें भस्यौ उर कै कजरौटी।
रोम ही रोम सुजान बिराजति सोचि तचै मति की मति औटी।
प्रेम वली न करै सु कहा, घनआनँद नेम-गली-गति लौटी।
मीत मराल सरोवर तो मन, तैं पिय को हिय कीनौ कसौटी ॥२६५॥

[२६३] रीस = बराबरी। रति में उसकी आभा के रोम की बराबरी का भी रत्ती भर सौंदर्य नहीं। चिहुर = केश। शुभ = मंगल। भाल = माथा, पेशानी। सीस = (शीर्ष) कपाल। मरीचि = किरण। रुचि = शोभा, छटा। बिसे-बीस की = पूर्ण रूप से। सिँगार = शृंगार (कवि-परंपरा में इसका रंग श्याम माना जाता है)।

[२६४] घमडि = घिराव ; सजाव। जुटौंही = मिली हुई। उझलनि = (पानी की) उड़िलना। भोई = मिली, युक्त। समोई = सनी हुई। सुबास० = मुख की सुगंध से सनी हुई साँस निकलती है।

[२६५] भावते = प्रिय। रस = प्रीति ; वैद्यक के रस। रूप = सौंदर्य ; चाँदी। सोधि लै = खोज ले ; शुद्ध कर ले। कजरौटी = कज्जली रखने का पात्र (कज्जली पारा और गंधक घोटने से बनती है। दोनों घुटकर काजल से काले हो जाते हैं। इसका प्रयोग वैद्यक में रसौषध बनाने में और सुनारों के यहाँ धातु सोधने में होता है)। औटी = आग में खूब तपकर। प्रेम० = बली प्रेम क्या

आनन की सुथराई* कहा कहौं जैसी बिराजति है जिहि औसर।
चंद तौ मंद मलीन सरोरुह एक हू रंग न दीजियै जौ सर।
नैन अन्यारे तिरीछी चितौनि मैं हेरि गिरै रतिप्रीतम कौ सर।
जान हियैं घनआनँद सौं हँसि फैलि फबै सु चँबेली की चौसर ॥२६६॥

घूँघट काढ़ि जौ लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिन काजनि।
नैननि-चैननि मैं तिहि ऐन सु होत कहाऽब सजे पट-साजनि।
सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचंभे-भरी छबि-छाजनि।
देखत देखत दीसि परै नहिँ यौं बरसै घनआनँद लाजनि ॥२६७॥

लाड़-लसी लहकै महकै अँग रूप-लता लगि दीठि-झकोरै।
हास-बिलास-भरे रसकंद सु आनन त्यौं चख होत चकोरै।
मौन भली, कहि कौन सकै घनआनँद जान सु नाक सकोरै।
रीझ बिलोएई डारति है हिय, मोहति टोहति प्यारी अकोरै ॥२६८॥

नहीँ कर सकता। नेम० = प्रेम के नियमोँ का मार्ग उलटा है। सरोवर = तालाब, मानसरोवर। प्रिय० = अपनी सुवर्ण दीप्ति को परखने के लिए प्रिय का हृदय तू ने कसौटी बना रखा है। बराबर प्रिय के हृदय मेँ बसी रहती है।

[२६६] सुथराई = बनावट की सफाई। सर = समता, उपमा। अन्यारे = तीखे। रतिप्रीतम = काम। सर = बाण। चौसर = चार लड़ी की माला।

[२६७] काढि = निकालकर, (परदा करके)। सकेलति = समेटती है। लाजहि = लज्जा (बेचारी) स्वतः लज्जित हो जाती है और वह भी बिना प्रयोजन, उसका उद्देश्य लज्जा को लज्जित करना तो होता ही नहीँ, पर वह लज्जित हो जाती है। नैननि० = नेत्रोँ की वाणी मेँ तो उसका घर है ही, वस्त्र सजाने से (घूँघट डालने से) क्या हुआ। छाज = रमणीयता। लाजनि = लावा ; लज्जा। देखत० = 'लाज' (लावा ; लज्जा) की इतनी अधिक वृष्टि हो जाती है कि वह देखते देखते उसकी राशि से ढक जाती है।

[२६८] लाड = प्यार। लहकै = हिलती है। महकै = सुगंध फैलाती है। अंग = शरीर मेँ। दीठि० = दृष्टि के झकोरे लगने से सौंदर्यरूपी लता हिल उठती और महकने लगती है। रस = आनंद। कंद = जड़। मौन = चुप रह जाना ही

* सुघराई।

कवित्त

रूप-गुन-ऐंठी सु अमैठी उर पैठी, बैठी,
लाड़नि निरैठी, मति बोलनि हरैं हरी।
जोबन-गहेली अलबेली अति ही नवेली,
हेली है सुरति बौरी आँचर टरैं टरी।
परम सुजान भोरी बातनि छकाए प्रान,
भावति न आन वेई हियरा अरैं अरी।
फंद सी हँसनि घनआनँद दृगनि गरैं,
मुख सुखकंद मंद उघरि परैं परी ॥२६९॥

चारु चामीकर चंद चपला चंपक चोखी,
केसरि-चटक कौन लेखैं लेखियति है।
उपमा बिचारी न बिचारी, नहिँ जान प्यारी
रूप की निकाई औरैं अवरेखियति है।
सरस-सनेह-सानी राजति रवाँनी दसा,
तरुनाई-तेज-अरुनाई पेखियति है।
मंडित अखंड घनआनँद उजास लियेँ,
तेरे तन दीपति दिवारी देखियति है ॥२७०॥

अच्छा। नाक = जब वह नाक सिकोड़ती है। बिलोएई० = मथे डाल रही है। अकोरैं = आलिंगन की मुद्रा। टोहति = टटोलती है।

[२६९] गुन = गुण ; डोर। ऐंठी = गर्वीली ; कसी हुई। अमैठी = बटी हुई ; शानदार बनी। निरैठी = मस्त। हरैं = धीरे से। लाड़नि० = प्यार के कारण मस्त। मति० = उसने धीरे से ही बोलकर मेरी बुद्धि हर ली। जोबन = यौवन से युक्त। हेली = क्रीड़ाशील (अथवा हे अली, हे सखी)। है० = आँचल टालते ही स्मृति पगली होकर (शरीर से) भाग खड़ी हुई। छकाए = नष्ट कर दिए। अरैं० = अड़, शान की मुद्राएँ। दृगनि० = नेत्रों के गले में। मंद = थोड़ा सा। मुख० = सुखमूल उसके मुख के थोड़ा सा खुलने से ही नेत्रों के गले में हँसी-रूपी फंदा पड़ गया।

[२७०] चामीकर = सोना। चोखी = उत्कृष्ट। चटक = शोभा रंग।

रूप-खिलार दिवारी कियेँ नित जोवन छाकि न सूधे निहारै।
नैननि सैन छलै चित सौं चित-चाव भर्यौ निज दाव विचारै।
जीति ही को चसको घनआनँद चेटक जान सयान विसारै।
जीव विचारो पर्यौ अति सोचनि हारि रह्यौ सु कहा फिरि हारै॥२७१॥
पानिप-पूरी खरी निखरी, रस-रासि-निकाई की नीवँहि रोपैँ।
लाज-लड़ी बड़ी सील-गसीली सुभाय हँसीली चितै चित लोपैँ।
अंजन-अंजित-श्री घनआनँद मंजु महा उपमानि हूँ ओपैँ।
तेरी सौं प्यारी सुजान तो आँखिन देखि ये आँखि न आवतिँ मोपैँ॥२७२॥

कवित्त

कंठ-काँच-घटी तेँ वचन चोखो आसव लै,
अधर पियालेँ पूरि राखति सहेत है।

कौन = किस गिनती मेँ गिनूँ। विचारी = वेचारी। विचारी० = सोची ही नहीँ। औरैँ = किसी अन्य मेँ। अवरेखियति० = ठहराई जा सकती है। सनेह = प्रेम ; चिकनाई। रवाँनी = रमानेवाली। दसा = दशा, अवस्था, स्थिति ; बत्ती। उजास = प्रकाश।

[२७१] खिलार = जुआ खेलनेवाला ; क्रीड़ाशील। छाकि = शराब पीकर ; मदमस्त होकर। सैन = कटाक्ष ; इशारा। चित = कौड़ी का चित पड़ना। चित = चित्त, हृदय। चसको = अभ्यास ; आदत। चेटक = जादू। चेटक० = सुजान (प्रिय) के जादू मेँ अपने को भूल जाता हूँ। सयान = चतुरता। हारि० = मुग्ध हो गया है ; पराजित ही होता जाता है। जीव० = जीव स्वयं ही अपने को हार गया है (निछावर कर वैठा है) अब दाँव मेँ लगाकर क्या हारे, इसी सोच मेँ पड़ा है।

[२७२] पानिप = पानी ; शोभा। खरी = उत्कृष्ट रूप से। निखरी = धुली हुई। रस = प्रेम। रोपैँ = डालती हैँ। रस० = नेत्रोँ मेँ प्रीति की जो राशि दिखाई देती है वह अच्छाई की नीवँ डालती है। लड़ी = दुलराई हुई। सील० = शील से भरी। अंजित = आँजी हुई। श्री = शोभा। ओपैँ = चमकती हैँ (अपनी श्री से)। सौँ = शपथ। ये० = ये मेरी आँखेँ मेरे पास लौटती ही नहीँ, तेरी आँखोँ की शोभा ही देखती रह जाती हैँ।

रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी
कानिनि ह्वै प्राननि पिवाय पीवै चेत है।
छकेई रहत रैनि-द्यौस प्रेम-प्यास-आस,
कीनी नेम-धरम-कहानी उपनेत है।
ऐसे रस-वस क्यौं न सोवै और स्वाद कहौ,
रोम रोम जाग्योई करत मीनकेत है ॥२७३॥

सवैया

उर-भौन मैं मौन को घूँघट कै दुरि बैठी विराजति वात-वनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सौं सु लसै हुलसै रस-रूप-मनी।
रसना-अली कान-गली मधि ह्वै पधरावति लै चित-सेज ठनी।
घनआनँद वूझनि-अंक वसै बिलसै रिझवार सुजान-धनी ॥२७४॥

कवित्त

याहि आएँ आवन की आसा उर आय वसै,
चाहै निरवाहै नित हित-कुसरात कौं।

---

[२७३] कंठ = कंठरूपी शीशे के घड़े से। चोखो = अच्छा, तीव्र। आसव = शराब। सहेत = सप्रयोजन, सकारण। ह्वै = द्वारा। चेत = चेतना। पी० = चेतना पी लेती है, चेतना नहीं रह जाती। छकेई० = मतवाले ही बने रहते हैं। नेम० = प्रेम के नियमों की कर्तव्य-कहानी। कीनी उपनेत = उत्पन्न कर ली है। ऐसे० = ऐसे रस के वश में होकर और स्वाद क्यों न सो जायँ (और सब आनंद भूल जाते हैं)। मीनकेत = काम।

[२७४] मौन० = मौन का घूँघट डालकर, मौन की साधना करके। वनी = दूलिहन। दुरि० = बातरूपी दुलहिन छिपी बैठी है, वात हृदय के भीतर मौन की आड में ही रह जाती है। पदारथ = रत्न ; पद के अर्थ। रस० = प्रीति-पूर्ण रूप की मणि। भूषन = उपमा आदि अलंकार ; गहने। रस = शृंगार आदि रस ; प्रीति। रसना० = वाणी। अली = सखी। पधरावति = प्रविष्ट कराती है, ले आती है। ठनी = सजी हुई। रसना० = वाणीरूपी सखी कान की गली से (प्रिय को) चित्त की सजी हुई शय्या पर ला बैठाती है। बूझनि = बुद्धि, मति। अंक० = गोद में बसते हैं। बूझनि० = मति की गोद में (प्रिय) बसते हैं। धनी = प्रिय।

है री वह बैरी घैरी उघस्यौ बिगोवनि पै,
ओछो जरि गयौ गोवै कहा भेद-बात कौं।
मधुर सरूप याहि देखियै अनंदघन,
पोखै जान प्यारे संग रंग-मनजात कौं।
साँझ सही साथिनि सँजोगहि सजाय देति,
लाग्यौ रहै गौहन ही प्रात प्रान-घात कौं ॥२७५॥

मुख देखें गौहन लगेई फिरैं भौंर-भौंर,
छूटे बार हेरि कै पपीहा-पुंज छावहीं।
गति-रीझै चायनि सौं पायन-परस-काजैं,
रसलोभी बिबस मराल-जाल धावहीं।
यातें मन होय प्रान-संपुट मैं गोय राखौं,
ऐसे हूँ निगोड़े नैन कैसें चैन पावहीं।
सींचियै अनंदघन जान प्यारी जैसें जानौ,
दुसह दसा की बातें बरनी न आवहीं ॥२७६॥

---

[२७५] याहि० = इस संध्या के आने से (प्रिय के) आने की आशा हृदय में होती है। हित = प्रिय। कुसरात = (कुशलात) कुशल-क्षेम। चाहै० = यह प्रिय के कुशल-क्षेम को ही नित्य देखती और उसका निर्वाह करती है। वह = प्रभात। बैरी = बदनामी करने योग्य, अपयशी। उघस्यौ = प्रकट हुआ है। बिगोवनि पै = नष्ट कर डालने के लिए। ओछो = नीच। जरि० = जला हुआ (गाली)। गोवै = छिपाए। भेद = रहस्य, हृदय की गुप्त बातें। मधुर = आकर्षक। याहि = संध्या को। मनजात = काम। रंग = वर्ण; शान। सही = सचमुच। साँझ = संध्या संगिनी सा सचमुच संयोग सजाती है, मिलने का निश्चय होता है। गौहन ही = साथ में। प्रात = उस संध्या के साथ (पीछे पीछे) यह प्रभात प्राण-घात के लिए लगा रहता है।

[२७६] गौहन = साथ। छूटे० = खुले केशों को बादल समझकर। गति० = गति पर मुग्ध होकर। पायनि० = पैरों को छूने के लिए। बिबस = भावमुग्ध, लोभ-विवश। मन० = इच्छा होती है। प्रान० = प्राण (प्रिय)

अंग-अंग-आभा-संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनी सौंज रंगनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौनि चाल,
मूरति रसाल रोम-रोम-छवि-हेरे की।
लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाहरूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
ऐ किधौं विचित्रताई मो चित-चितेरे की ॥२७७॥

सवैया

मीत सुजान मिले को महासुख अंगनि भोय समोय रह्यौ है।
स्वाद जगे रस-रंग-पगे अति, जानत वेई न जात कह्यौ है।
द्वै उर एक भए घुरि कै घनआनँद सुद्ध समीप लह्यौ है।
रूप-अनूप-तरंगनि चाहि तऊ चित चाह-प्रवाह बह्यौ है ॥२७८॥

के संपुट (डिब्बे में)। गोपि० = छिपा रखूँ। नैन० = नेत्र भी कैसे चैन पाएँ। उन्हें भी मछली समझकर बगले खाने दौड़ते हैं।

[२७७] द्रवित = घुलकर ; द्रवीभूत होकर। स्रवित० = टपककर ; प्रस्वेद-युक्त होकर। सचि० = एकत्र कर ली। सौंज = सामग्री। रसाल = रसमयी। रोम० = अपने एक एक रोएँ से जिस मूर्ति की छटा देखी गई है। प्रवाह० = आँसुओं के प्रवाह से युक्त। लही० = समझ में नहीं आती। ऊलट = वैपरीत्य। अनेरे = विलक्षण। लिखि० = आप की मूर्ति का स्थिर चित्र निरंतर प्रवाहित होनेवाले नेत्रों पर मैंने बना रखा है। इस अनोखे वैपरीत्य की बात समझ में ही नहीं आती। रूप० = न जाने यह आप के सौंदर्य की करतूत है अथवा मेरे चितेरे चित्त की विचित्रता है। चित्र की इस विलक्षण स्थिति के कारण आप हैं, आप की प्रकृति है या मैं हूँ (मेरा ही स्वभाव है)।

[२७८] भोय = भिंगाकर। समोय० = मिल गया है, समा गया है। स्वाद० = रस के रंग से युक्त ऐसे स्वाद जगे। आनंद का ऐसा स्वाद मिला। वेई = वे अंग ही। न जात० = अंग उनका अनुभव ही कर सकते हैं, उसे वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता (वह सुख अनिर्वचनीय है) घुरि० =

अति रूप की रासि रसीलियै मूरति जोहौं जवै तव रीझि छकौं।
घनआनँद जान-चरित्र के रंगनि चित्र-विचित्र दसा सौं थकौं।
अनदेखें दई जु कछू गति देखियै जीव ही जानै न व्यौरि सकौं।
यह नेह सदेह अदेह करै पचि हारि विचारि विचारि जकौं ॥२७९॥
स्याम घटा लपटी थिर वीज कि सोहै अमावस-अंक उज्यारी।
धूप के पुंज में ज्वाल की माल सी पै हग-सीतलता-सुख-कारी।
कै छवि छायौ सिंगार निहारि सु जान-तिया-तन-दीपति प्यारी।
कैसी फवी घनआनँद चोपनि सौं पहिरी चुनि साँवरी सारी ॥२८०॥
कित जाउँ लै जान-सजीवन! प्रान कौं आन के लेखें न छाहौं धिजौं।
इहि साल दहौ नित ही दुख-ज्वालऽरु सोचनि लोचन-वारि भिजौं।
दुरि आप नए ह्वै इकौसें मिलौं घनआनँद यौं अनखानि छिजौं।
डर डीठि के नीठि न देखि सकौं सु अनोखियै रीझि पै रीझि खिजौं ॥२८१॥

घुलकर, एक में मिल गए। सुद्ध = शुद्ध सामीप्य की प्राप्ति हुई। रूप० = रूप की अनुपम तरंगों को नेत्रों से देखते ही रहते हैं, फिर भी चित्त प्रेम के प्रवाह में बहा जा रहा है, सौंदर्य देखते ही चित्त प्रेम में लीन हो जाता है।

[२७९] जोहौं = देखती हूँ। छकौं = मतवाली हो जाती हूँ। रंग = वर्ण; क्रीड़ा। चित्र० = विलक्षण चित्र। अनदेखें = उन्हें न देखने पर। दई = हे दैव। जु कछू० = जैसी कुछ दशा दिखाई पड़ती है। जीव० = हृदय ही जानता है, उसे समझना कठिन ही है। सदेह० = शरीरधारी होकर भी बिना शरीर के हो जाती हूँ। पचि = परेशान होकर। हारि = हार मानकर। जकौं = बकती रहती हूँ।

[२८०] थिर० = स्थिर बिजली पर। अमावस० = अमावस्या की गोद में चाँदनी शोभित है। ज्वाल = अग्नि की लपट। कै छबि० = अथवा सुजान के शरीर की प्यारी दीप्ति देखकर उस पर शृंगार ने अपनी छटा छा दी है। शृंगार का रंग कविसमय में श्याम है। चोपनि० = उत्साहपूर्वक। साँवरी = नीली।

[२८१] लेखें = गणना में। छाहौं = छायामात्र भी। न धिजौं = नहीं समझा जाता। साल = पीड़ा। वारि = जल, आँसू। भिजौं = भीगता हूँ। दुरि = छिपकर। इकौसें = अकेले में। अनखानि = झुँझलाहट। छिजौं = छीजता

तुम साँची कहौ हित कै चित की कित भूल-भरे इत आय परे।
कि कहूँ पहिली-परतीति-मढ़े घनआनँद छाय सुभाय ढरे।
वलि वैठौ सुजान तौ को वरजै धरि पावन पावन नैन करे।
चकि से जकि से निरखौं परखौं सुनिहौं जिहि रंग-तरंग तरे ॥२८२॥
अधरासव-पान के छाक छके कर चाँपि कपोल-सवाद-पगे।
घनआनँद भींजि रहे रिझवार खगे सब अंग अनंग-दगे।
करि खंडन गंडन मंडन दै निरखे तें अखंडित लोभ लगे।
सुखदान सुजान समान महा सु कहा कहौं आरसी भाग जगे ॥२८३॥
रिस-रूसनैं रूखियै ऊठ अनूठियै लागति, जागति जोति महा।
अनबोलनि पै बलि कीजियै बानी,सु बोलनि की कहियै धौं कहा।

रहता हूँ, क्षीण होता जाता हूँ। डर० = डीठ लग जाने के भय से। नीठि = किसी प्रकार भी, कठिनाई से। अनोखियै० = अपनी अनोखी रीझ पर पहले रीझता हूँ फिर खीझता हूँ।

[२८२] भूल-भरे = भूलकर ; मेरी सुध को भूलने की बान धारण किए हुए। सुभाय = स्वभावतः। ढरे = द्रवीभूत हुए। को० = कौन मना करता है। पावन० = पैरों को यहाँ धरकर (आकर) नेत्र पवित्र कर दिए। जकि से = भौंचक्के से। निरखौं० = देखूँ और समझूँ। सुनिहौं० = प्रेम की जिन तरंगों को पार करके आ रहे हैं उनकी कथा भी सुनूँ।

[२८३] छाक = नशे की मस्ती। कर चाँपि = हाथ से दबाकर कपोल के स्वाद में लिप्त हुए, कपोलों का चुंबन किया। घन० = आनंद की वृष्टि में ये रीझनेवाले भींग रहे हैं। आनंद में मग्न हैं। खगे० = सब अंगों से लग गए। अनंग० = काम से दग्ध। करि० = गंडस्थल अर्थात् कपोलपाली को दंत के आघात से सुशोभित किए हुए। अखंडित = पूर्ण। आरसी = आलसी। सुजान० = मेरे महा आलसी भाग्य उसी प्रकार जागे जैसे प्रभात के समय सुजान आलस्य से भरी जगती है।

[२८४] रिस० = रोषपूर्वक झुँझलाने से ही। ऊठ = उमंग। रुखियै० = रुखाई से भरी हुई उमंग भी। अनूठियै० = अनूठी ही जान पड़ती है। जागति० = और उससे हृदय में अत्यंत प्रकाश छा जाता है। अनबोलनि० =

ननिहारनि हेरि न हारति दीठि औ पीठि दियेँ समुहात लहा।
घनआनँद प्यारी सुजान दै कान अहा सुनियै हित-बात हहा ॥२८४॥

कवित्त

कौन की सुजस-जोन्ह अमल अपूरव को,
जग मैँ उदोत देखियत दिन-रैन है।
जाकी जोति जागै रस पागै हो चकोर-नैन,
बुध कबि मित्रन कोँ पोखै मन-चैन है।
नेह-निधि बाढ्यौ घनआनँद गुनति सुनि,
अचिरज-ऐन सो निहारौँ कहूँ मैँ न है।
बिरह बिडारि औ बिदारि दुख-तम कब,
सीँचौगे स्रवन कहि सुधा-सने बैन है ॥२८५॥

नीके नैन ऐन पाय चैन पाय लाज हू को,
सोभा के समाज हेरैँ हिय सियरात है।

न बोलने पर ही मैँने वाणी निछावर कर दी है। फिर बोलने का कहना ही क्या है। ननिहारनि० = आप के न देखने को भी देखकर मेरी दृष्टि थकती नहीँ है। औ० = पीठ दिए खड़ी रहने पर भी लाभ मेरे समुख होता है। पीठ फेरकर खड़ी होने की छटा पर मैँ मुग्ध हो जाता हूँ। दै कान० = कान देकर, ध्यान देकर (कम से कम) प्रेम की बातँ ही सुन लीजिए।

[२८५] जोन्ह = (ज्योत्स्ना) चाँदनी। अमल = कलंकरहित ; स्वच्छ। अपूरब = जो पूर्व दिशा मैँ न उगे ; अद्वितीय। उदोत = उदय ; प्रकाश। दिन रैन० = दिनरात (चंद्रमा की भाँति केवल रात मैँ ही नहीँ)। चकोर० = चकोर के नेत्र ; नेत्ररूपी चकोर। बुध = बुध ग्रह ; पंडित। कवि = शुक्रग्रह ; कविता करनेवाला। मित्र = सूर्य ; सखा। निधि = समुद्र। न सो० = ऐसा तो मैँने कहीँ देखा ही नहीँ। बिरह = ताप ; वियोग का संताप। दुख० = दुःखरूपी अंधकार।

[२८६] ऐन = घर। लडीली = दुलारी। अरबीली = हठी। लाडौ० = प्यार भी बहल जाता है। लड़काना = प्यार पाकर बहल जाना। गँवेली =

एरी मेरी सहज लड़ीली अरबीली सुनि,
तेरो अंग-संग लहे लाड़ौ लड़कात है।
रूप-मद-छाके तैं गँवेली गरबीली ग्वारि,
तोहि ताकैं रूपौ उमगनि उमदात है।
आनँद के घन सों न कीजै मान जान प्यारी,
दान दीजै पिय सों न मानें यों ही जात है ॥२८६॥

सवैया

मीठे महा गरुवे गुन-रासि ह्वै हूजत क्यों करुवे गहि दोसनि।
आपुन त्यों तकियै सकियै कहि हाहा हठीले न रूसियै रोसनि।
तासों इती अनखानि कहा घनआनँद जो भिजई है भरोसनि।
वारियै कोरिक प्रान सुजान हौ ऐ परि यौं मरियैगो मसोसनि ॥२८७॥

उर आवति है अपने कर द्वै वर वेनी विसाल* सों नीकें कसौं†।
अति दीन ह्वै नीचियै दीठि कियें अनखौंहे सुभाय के त्रास त्रसौं।
घनआनँद यौं वहु भाँतिनि हौं सुखदान सुजान-समीप वसौं।
हित-चायनि च्वै चित चाहत नै नित पायन ऊपर सीस घसौं ॥२८८॥

गाँव की रहनेवाली। उमदात है = उन्मत्त होता है। पिय० = प्रिय से इस प्रकार का व्यवहार नहीं किया जाता।

[२८७] मीठे = (मिष्ट) मधुर ; प्रिय। गरुवे = भारी। करुवे = कड़वे ; विमुख। आपुन० = अपने गुणों की ओर देखिए। सकियै = मुझपर कृपा करने का उपाय कीजिए। कहि = दोषों को कहकर। जो० = जिसे भरोसा देकर सरस कर रखा है। वारियै० = हे सुजान मैं आप पर अपनी ओर से करोड़ों वार प्राण निछावर करती हूँ, किंतु क्या इतने पर भी मुझे मसोसते ही मरना होगा। ऐ परि = फिर भी।

[२८८] उर० = हृदय में यह वात आती है। अपने० = अपने दोनों हाथों को सुजान की सुंदर विशाल वेणी से भली भाँति बँधवा दूँ। हित० = प्रेम की उमंगों से आँसू बहाते हुए। नै = झुककर। समष्टि में यह कि स्वतः उनका वंदी वन जाऊँ।

* विलास। † गसौं।

जान प्रवीन के हाथ को बीन है मो चित-राग-भर्यौ नित राजै।
सो सुर साँच कहूँ नहिँ छाड़त, ज्यौँ ही वजावै लियेँ मन बाजै।
भावती मीड़ मरोर दियेँ घनआनँद सौगुने रंग सोँ गाजै।
प्यार सोँ तार सु ऐँचि कै तोरत क्यौँ, सुघराइयै लाजत लाजै॥२८९॥

कवित्त

रसहि पिवाय प्यासे प्राननि जिवाय राखैँ,
लाज सोँ लपेटी लसै उघरि हितौन-की।
निपट नवेली नेह-भेली लाड़-अलवेली,
मोह-ढरहरी भरी बिरह-रितौन की।
लोने लोने कोने छ्वै छवीली अँखियान की सु,
रंचकौ न चूकै घात औसर-वितौन की।
एरी घनआनँद वरसि मेरी जान तेरी,
हियो सुख सींचै गति तिरछी चितौन की॥२९०॥
तेरी अनमाननि ही मेरे मन मानि रही,
लोचन निहारैं हेरि सौँहैं न निहारिबो।

[२८९] बीन = वीणा। मन = हृदय। मीड़ = गमक। गाजै = तीव्र ध्वनि करता है। सुघराइयै = चतुरता को। लाजत० = लज्जा से चतुरता को भी लज्जित करते हुए।

[२९०] उघरि = उघड़ना, खुलना, प्रकट होना। हितौन = प्यार करना। नेह० = स्नेह से भरी। लाड़ = प्यार से विलक्षण बनी। मोह = अपनायत, ममता। ढरहरी = द्रवणशील। रितौन = खाली करना, दूर करना। भरी० = विरह-दुःख दूर करने में लगी हुई। लोने = सुंदर। रंचकौ = थोड़ा भी। औसर० = अवसर को ठीक व्यतीत करना, अवसर पर अनुकूल कार्य करना। न चूकै० = अवसर पर अपनी घात चूकती नहीँ। बरसि = आनंद की वर्षा करके।

[२९१] अनमाननि = न मानना। मेरे मन० = मेरा मन स्वीकृत कर रहा है। लोचननि० = संमुख न देखने पर ही मेरे नेत्र निछावर हैं। हारैं = हम निछावर करते हैं। सौँहैं = संमुख। झुकि = खीझकर। झिझकारिबो =

कोरि कोरि आदर को करत निरादर है,
सुधा तैं मधुर महा झुकि झिझकारिबो।
जीवन की ज्यारी घनआनँद सुजान प्यारी,
जीव जीति-लाहौ लहै तेरे हठ हारिबो।
रूखी रूखी बातनि हूँ सरसै सनेह खुटि,
हिये ते टरै न ये अनखि कर टारिबो ॥२६१॥

ललित लसौंहीं सु ढरौंहीं नैक सौंहीं भएँ,
त्यौं ही रहि गहै गौं ही डोलति न डीठि है।
हठ पटरानी प्रान पैठिबे कौं फिरि बैठै,
देखी बिन बोलनि मैं रस की बसीठि है।
सुख सनमान देति मुरि दीनें कीनें मान,
जान प्यारी बिरचैं हू राचनि-मजीठि है।
मन दै मनाऊँ सो न पाऊँ घनआनँद पै,
मोहिं यौं बिमन करै एरी तेरी पीठि है ॥ २६२ ॥

झटक देना। कोरि० = खीझकर मुझे झटक देना (ही इतना भाता है कि) (मिलनेवाले) करोड़ों आदरों का भी निरादर करता है, रुखाई के सामने करोड़ों आदरों को कुछ नहीं समझता। ज्यारी = जिलानेवाली। जीव० = तेरे हठ से हारा हुआ मेरा जीव जीत का लाभ प्राप्त करता है। रूखी० = तेरी रूखी बातों से भी उत्कृष्ट स्नेह बढता है। अनखि = झुँझलाकर। हिये० = झुँझलाकर हाथ हटा देना ही हृदय से नहीं हटता।

[२६२] ढरौंहीं = ढलनेवाली, द्रवीभूत होनेवाली। नैक० = थोड़ा भी संमुख होने पर। गौं ही = घात को ही। डोलति० = दृष्टि (वह छटा देखने से) हिलती (हटती) ही नहीं। हठ० = जब तुम मुँह फेरकर बैठ जाती हो तब हठरूपी पटरानी प्राणों में घुसकर बैठ जाती है। रस० = रस का दूतत्व प्राप्त होता है, रस की बातें समा जाती हैं। मुरि० = मुड़कर (मुँह फेरकर) खड़ी होना। कीनें० = मान करना, रूठ जाना। बिरचैं हू = उदासीन होने पर भी, विमुख होने पर भी। राँचनि० = मजीठ की भाँति (कभी न मिटनेवाला)

कवित्त

रिसभरी भोरिबे कौं देखी सुनी प्रीति नीति,
नायक रसीलो बिनै बिनती महा करै।
चोप चाय दायनि सों अमित उपायनि लौं,
ज्यौं ही बनै त्यौं ही लगि प्रापति लहा करै।
मीन जलहीन लौं अधीन ह्वै अनंदघन,
जान प्यारी पायनि पै कव को हहा करै।
दई नई टेक तोहि, टारें न टरति नेकौ,
हारयौ सव भाँति जो बिचारो सो कहा करै ॥२६३॥

सीस लाय, दृग छाय, हिये पै वसाय राखौं,
इते मान मान आवै प्राननि मैं लै धरौं।
हेरि हेरि चूमि चूमि सोभा छकि घूमि घूमि,
परसि कपोलनि सौं मंजन कियौ करौं।
केलि-कला-कंदिर बिलास-निधि-मंदिर ये,
इन ही के बल हौं मनोज-सिंधु कौं तरौं।
यातें घनआनँद सुजान प्यारी रीझि भीजि,
उमगि उमगि बेर वेर तेरे पा परौं ॥२६४॥

अनुराग छा जाता है। सो न० = उस मन को फिर नहीं पाता। बिमन = मन से रहित, मुग्ध, बेहोश।

[२६३] भोरिबे कौं = वश में करने के लिए। रिसभरी० = तेरी प्रीति की नीति रोषभरी होकर भी वश में करनेवाली दिखाई और सुनाई देती है। लौं = द्वारा। प्रापति० = लाभ की प्राप्ति करता है। हहा = हाय हाय (वेदना का उद्घाटन)। नई = विलक्षण।

[२६४] इते मान = इतना अधिक। मान० = संमान, श्रद्धा। घूमि० = मस्त होकर। मंजन० = घिसा करूँ, सहलाया करूँ। केलि० = क्रीड़ा की मिठास से भरा। भीजि = सिक्त होकर, युक्त होकर।

सवैया

राधे सुजान चितै॰ चित दै, हित मैं कित कीजति मान-मरोर है।
माखन ते मन कौंवरो है यह वानि न जानति कैसें कठोर है।
साँवरे सौं मिलि सोहति जैसी कहा कहियै कहिवे कौं न जोर है।
तेरो पपीहा जु है घनआनँद है व्रजचंद पै तेरो चकोर है ॥२६५॥

कवित्त

हाहा करि हारी न निहारी रूखियै महा री,
मोहूँ सौं चिन्हारी मानै तनकौ नहीं कहूँ।
साधि कै समाधि सी अराधति है काहि दैया,
अरहि पकरि अति निठुर करे न हूँ।
प्रानपति-आरति जौ जानै तौ सुजान प्यारी,
नावँ न धरैयै नावँ ऐसे औ कहाय हूँ।
राकानिसि आली व्याली भई घनआनँद कौं,
ढरि चल्यौ चंदा पै न ढरी चंद मुख हूँ ॥२६६॥

सवैया

अनमानिवोई मन मानि रह्यौ अरु मौन ही सौं कछु बोलति है।
ननिहारनि ओर निहारि रही उर-गाँठि-त्यौं अंतर खोलति है।

---

[२६५] दै = देकर। कौंवरो = कोमल। ह्वै = होकर, होने पर भी।

[२६६] न निहारी = न देखा। चिन्हारी = पहचान। अरहि = हठ को। हूँ = हाँ। प्रानपति = प्रिय। आरति = दुःख, वेदना। ऐसे० = ऐसे नामवाली होकर और ऐसी कही जाकर। व्याली = नागिन। ढरि० = चंद्रमा डूब रहा है। न ढरी = द्रवीभूत न हुई, पिघली नहीं। चंद मुख हूँ = चंद्र के से मुखवाली होकर भी (चंद्रमा से ही ढलने की वात सीख लेती)।

[२६७] अनमानिवोई = न स्वीकार करना, अस्वीकार करना। मन० = तेरे मन ने स्वीकार किया है। ननिहारनि० = प्रिय को न देखने की ओर ही तू देख रही है, उन्हें तू देखना ही नहीं चाहती है। उर० = हृदय की

॰ रतैं, खनैं।

रिस-संग महा रसरंग बढ्यौ, जड़ताइयै गौहन डोलति है।
घनआनँद जान पिया के हियै कितकौ फिरि बैठि कलोलति है ॥२९७॥
कहियै सु कहा रहियै गहि मौन, अरी सजनी उन जैसी करी।
परतीति दै कीनी अनीति महा, बिष दीनौ दिखाय मिठास-डरी।
इत काहू सौं मेल रह्यौ न कछू, उत खेल सी ह्वै सब बात टरी।
घनआनँद जान सयान की खानि भुराई हमारेई पैंड़े परी ॥२९८॥
अब यौं उर आवति है सजनी उन सौं सपने हूँ न बोलियै री।
अरु जौ निलजे ह्वै मिलैं तौ मिलौं,मन तैं गस-गूज न खोलियै री।
दृग देखन की कछु सौंहैं नहीं, इन गौहन भूलि न डोलियै री।
घनआनँद जान महा कपटी चित काहें परेखनि छोलियै री ॥२९९॥
बारनि भौंर-कुमार भजैं, पुहुपावलि हास-बिकासहि पूजति।
पाठ कियौ करै आठ हू जाम, सु बोलनि सीखिबैं कोकिल कूजति।
वे घनआनँद रीझि छए तकि तो छबि आन क्यौं आँखिन छूजति।
एरी* बसंत-लजावनि कंत सौं जान ह्वै मानमई कित हूजति ॥३००॥

गाँठ की ओर ही तेरा हृदय खुला (लगा) है। रिस० = रोष से ही तेरा प्रेम बढ़ता है। गौहन = साथ। जड़ताइयै० = जड़ताई के साथ ही घूम रहा (जंगम) है। कितकौ = न जाने कितना। फिरि बैठि = मुँह फेरकर बैठी हुई। कलोलति० = क्रीड़ा कर रही है। तेरा मुँह फेरना ही उनके हृदय में बस गया है।

[२९८] डरी = डली, टुकड़ा। इत = हम ने तो सब से नाता तोड़ लिया। उन० = वहाँ उन्होंने सारी बातें खेल की भाँति तुरंत समाप्त कर दीं। भुराई = भोलापन। पैंड़े० = पीछे पड़ी है।

[२९९] गस = गाँस, गाँठ। गूज = लपेट। मन० = मिलने पर भी मन की गाँठ की लपेट न खोलूँ। गौहन = साथ। परेखा = पछतावा। चित० = चित्त को पछतावे से क्यों छीलूँ।

[३००] भजैं = सेवा करते हैं। पूजति = पूजा करती है। सीखिबैं = सीखने के लिए। कूजति = कुहकती है। आन० = तेरी छबि देखकर आँखें दूसरे की छबि कैसे छूएँ (देखने का प्रयास भी नहीं करतीं)।

* और।

कवित्त

हमैँ तुम्हैँ आजु लौँ न अंतर हो प्रान प्यारे,
कहाँ तें दुख्यौ सो वैरी आड़ आनि है भयौ।
जियरा विचारो इन सोचनि समाय जाय,
हियरा उदेगनि उजार सम ह्वै गयौ।
रावरे हू रंचक विचारि देखौ जानमनि,
कौन के सहाय आय महादुख या दयौ।
मारि टारि दीजै ऐसो नीच वीच भलो नाहिँ,
वहै रस भीनौ घनआनँद रहै छयौ ॥२०१॥

अंतर गठीले मुख ढीले ढीले वैन बोलौ,
सुंदर सुजान तऊ प्राननि खरे खगौ।
साँच की सी मूरति ह्वै आँखिन मैँ पैठौ आय,
महा निरमोही मढ़ें मोह सौँ हियो ठगौ।
आनँद के घन उघरे पै छल छाय लेत,
कटुताई-भरे रोम रोमहि अमी पगौ।
चाह-मतवारी मति भई है हमारी देखौ,
कपट करे हू प्यारे निपट भले लगौ ॥२०२॥

विष को डवा* है कै उदेग को अँवा है, कल
पलकौ न वाहै अथवा है चक्र वात को।

---

[२०१] सो वैरी = वह शत्रु (अंतर)। आड़ि० = सामने आ पड़ा है। इन० = वेचारा जी इन्हीँ सोचोँ मेँ डूवा रहता है। उजार = उजाड़। कौन० = किसकी सहायता मेँ आकर (लगकर)। नीच० = ऐसे बीच (पार्थक्य) रूपी नीच का वीच मेँ रहना ठीक नहीँ।

[२०२] अंतर = भीतर के कसे हुए। ढीले० = शिथिल, उदासीनता के। खरे० = अत्यंत। खगौ = धँसते हो। मोह = ममता ; भ्रांति। साँच और भ्रांति मेँ विरोध। उघरे = पृथक् हो गए हो। अमी० = अमृत (मधुरता) युक्त। 'कटुताई' और 'अमी' मेँ विरोध।

* डिवा।

बीजुरी को बंधु, किधौं दुख ही को सिंधु है, कि
महामोह-अंध दंड अतन-अलात को।
द्रोह को दिनेस कै उजार निज देस, किधौं
आतम-कलेस है कि जंत्र सुख-घात को।
बैरी मन मेरो घनआनँद सुजान प्यारे,
कैसें हित सीख्यौ जू तिहारे पच्छपात को ॥३०३॥

सवैया

रूप छक्यौ तुम्हैं देखि सुजान थक्यौ तजि लाज-समाजन की दब।
मोहि लियौ हँसि हेरि छबीले कहीं अति प्यार-पगी बतियाँ जब।
सोच-बिचार के साज टरे घनआनँद रीझनि भीजि रच्यौ तब।
आस-भर्‌यौ गहि द्वार पर्‌यौ जिय, या घर आय कै जाय कहाँ अब ॥३०४॥

कवित्त

चाहत ही रीझि लालसानि भीजि सुख सीझि,
अंग-अंग-रंग-संग भाव भरि भ्वै गईं।
रैनि-द्यौस जागैं ऐसी लगीं जु कहूँ न लागैं,
पन अनुरागें पागें चंचलता च्वै गईं।

---

[३०३] डवा = थैला। आँवा=आँवाँ। कल = चैन। पलकौं० = क्षणभर भी चैन नहीं पाता। चक्र० = वायु का चक्र है, बवंडर है। महा० = अत्यंत मोह से अंधा। अतन = कामदेव। अलात = आलातचक्र। दंड० = कामदेव के आलातचक्र का दंड है। उजार = उजाड़पन। जंत्र० = सुखों को मारने का यंत्र है।

[३०४] रूप० = सौंदर्य से परिपूर्ण। समाजन = समूह। दब = दबाव। साज = सजावट की सामग्री। सोच० = सोच-विचार एकदम त्याग दिए।

[३०५] चाहत० = देखते ही। लालसानि० = लालसाओं से युक्त होकर। सुख० = सुख से भरकर। भ्वै० = लीन हो गईं। लगीं = तेरे रूप के दर्शन में ऐसी अनुरक्त हुईं। कहूँ० = कहीं नहीं लगतीं, किसी दूसरे को देखना ही नहीं चाहती हैं। पन = प्रतिज्ञा (तेरे देखने की)। पागैं = मग्न हैं, लीन ह चंचलता० = चंचलता एकदम त्याग दी है, स्थिर भाव से देखती हैं।

हित की कनौड़ी लौंड़ी भईं ये अनंदघन,
फिरैं क्यौं पिछौंड़ी नेह-मग डग द्वै गईं।
माधुरी-निधान प्रान-ज्यारी जान प्यारी तेरो
रूप-रस चाखैं आँखैं मधुमाखी ह्वै गईं ॥२०५॥

आँखैं रूप-रस चाखैं, चाहैं उर सचि राखैं,
लोभ-लागी लाखैं अभिलाखैं निबरैं नहीं।
तोहि जैसी भाँति लसै, बरनिबो मन बसै,
बानी गुन गसै, मति-गति बिथकै तहीं।
जान प्यारी सुधि हूँ अपुनपौ बिसरि जाय,
माधुरी-निधान तेरी नैसिक मुहाचहीं।
क्यौं करि अनंदघन लहियै सँजोग-सुख,
लालसानि भीजि रीझि बातैं न परैं कहीं ॥२०६॥

जो कछू निहारैं नैन, कैसैं सो बखानैं बैन,
बिना देखी कहैं तौ, कहा तिन्हैं प्रतीति है।
रूप के सवाद-भीनै बापुरे अबोल कीनै,
बिधि बुधि-हीनै की अनैसी यह रीति है।
सुख दुख साखी मिलैं बिछुरैं अनंदघन,
जान प्रानप्यारे सौं नवेली इन्हैं प्रीति है।

हित = प्रेम। कनौंड़ी = दबैल, उपकृत। पिछौंड़ी = पीछे की ओर। नेह० = प्रेम के मार्ग में दो कदम चल चुकी हैं, प्रेम करना आरंभ कर दिया है। ज्यारी = जिलानेवाली।

[२०६] सचि० = हृदय में इकट्ठा कर रखना चाहती हैं। लागी = लगी हुई। निबरैं० = दूर नहीं होतीं। भाँति = ढंग, मुद्रा। बानी० = मेरी वाणी उन्हीं गुणों में लगती है। मति० = बुद्धि की गति रुक जाती है, बुद्धि काम नहीं करती। सुधि० = सुध करते ही अपनत्व को भूल जाना पड़ता है। नैसिक = थोड़ा। मुहाचहीं = मुख का देखना, दर्शन।

[२०७] प्रतीति० = विश्वास या सत्यता का निश्चय कैसे हो। बापुरे = बेचारे नेत्रों को। अनैसी = बुरी। सुख० = उन अवस्थाओं के क्रमशः सुख और

औरहि न चाहैं पन पूरो नित लैं निबाहैं,
हारैं हँसि आपौ, जीति मानैं नेह-नीति है ॥३०७॥
साखा-कुल टूटै ह्वै रँगीलो अभिलाषा भरि,
परि द्वै पखान बीच घसनि घनी सहै।
सोच सूखी इते मान आनि कै सलिल बूड़ै,
घुरि जाय चायनि ही हाय गति को कहै।
तऊ दुखहाई देखौ छिदति सलाकनि सौं,
प्रेम की परख दैया कठिन महा अहै।
प्रिय-मनसा लौं वारी मिहँदी अनंदघन,
एरी जान प्यारी नेकु पायनि लग्यौ चहै ॥३०८॥
आरति के ऐन द्यौस-रैन राजैं नेही नैन,
चढ़े चोप छाजैं साजैं दीठि ईठि तो अचूक।
पूरे पन-राचे छाकि, पाकि चूरे मत काचे,
ताचे साँच आँच के, टरैं न टक ते कछूक।

दुःख हो साक्षी हैं जो उनकी आप के मिलने और बिछुड़ने पर होती हैं। नबेली = नूतन, विलक्षण। हारैं० = अपनत्व को ये हँसते हुए हारते हैं। जीति० = केवल प्रेमनीति की ही जीत स्वीकार करते हैं।

[३०८] मनोवृत्ति और मेहँदी की एकता दिखाई गई है। साखा० = कुलरूपी शाखा से टूटती है। पखान = पाषाण, पत्थर ; पक्ष (प्रिय और प्रेमिका के)। घसनि = घिसा जाना ; वृत्ति की स्वच्छंदता का दबना। सोच० = सोच के कारण इतनी सूख गई है कि इसे पानी (आँसुओं की धारा) में डूबना पड़ता है। घुरि० = इच्छाओं में ही घुली जा रही है। दुखहाई = दुःख की मारी। सलाक = शलाका, वह पतली सींक जिसके सहारे मेहँदी लगाई जाती है ; कटाक्ष। परख = परीक्षा। अहै = है। मनसा० = मनोवृत्ति की भाँति। वारी = निछावर हूँ। मिहँदी = (सं० मेंधी) मेहँदी।

[३०९] ऐन = घर। चढ़े० = उमंग से मस्त होकर। साजैं = अंगीकार करते हैं। ईठि = इष्ट, प्रिय। तो = तव, तेरी। राचे = रचे हुए, अनुरक्त ; लाल। पाकि = प्रेम में पककर। मत० = कच्चे मत (सिद्धांत)। ये पककर लाल (अनु-

रूप-उजियारे जान प्यारे हैं निहारे जिन,
भीजे घनआनँद कनौड़-पुंज लाय ऊक।
नेमी अंध हौंस मरैं चाहैं तिन रीस करैं,
ऐसे अरबैं ज्यौं चकोर होन कौं उलूक ॥३०६॥

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै, विचार
बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एक रस ह्वै विवस अवगाहैं दोऊ
नेही हरि राधा, जिन्हैं देखैं सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसें मथि मन पै सरूप ठहरायौ है ॥३१०॥

रक्त) हो गए हैं। इन्होंने कच्चे मतवाद त्याग दिए हैं। ताचे = आग में पके हुए। कछूक = कुछ भी। जिन = जिन नेत्रों ने। कनौड़ = संकोच। ऊक = लुक। भीजे० = ये नेत्र संकोच में आग लगाकर आनंद के घन की वृष्टि से भींग रहे हैं। नेमी = केवल परिपाटी या नियम का पालन करनेवाले। अंध = अंधे। नेमी० = केवल नेम का पालन करनेवाले अंधे नेत्र। हौंस = उत्कंठा। रीस० = बराबरी करना चाहते हैं। अरबैं = हड़बड़ी मचाते हैं। ज्यौं० = जैसे उल्लू चकोर होना चाहे।

[३१०] वार = इस ओर का तट। बिचार० = बेचारा विचार तो तट से ही घबड़ाकर लौट आया है। ताही० = उस प्रेमसागर में एक रस होकर। बिवस० = डूबकर, मग्न होकर। अवगाहैं = स्नान करते हैं। जिन्हैं० = जिन हरि-राधा को देखकर वह प्रेमसमुद्र उमंगित होता रहता है। छूट्यौ = छटककर गिरा हुआ। पूरि० = उस प्रेमसमुद्र से छटककर गिरा एक कण (बिंदु) ही सब लोकों में उमड़ता और छाता रहता है। सोई० = वही प्रेम सुजान (प्रेमिका) से लगकर सांसारिक प्रेम के रूप में व्यक्त होता है। ऐसें० = मन को इस प्रकार से मथकर उसके स्वरूप का निश्चय करता हूँ।

सवैया

लोयनि लाल गुलाल भरे कि खरे अनुराग सोँ पागि जगाए।
कै रस-चाँचरि चौचँद मैँ छतिया पर छैल नखच्छत छाए।
भीजि रहे स्रम-नीर सुजान धरौ डग ढीलियै लागौ सुहाए।
भोर हू ऐसी खिलारिनि पै, घनआनँद का छल छूटन पाए ॥३११॥

अंगनि पानिप-ओप खरी, निखरी नवजोबन की सुथराई।
नैननि बोरति रूप के भौंर अचंभे-भरी छतिया-उथराई।
जान-महा-गरुवे-गुन मैँ घनआनँद हेरि रत्यौ थुथराई।
पैने कटाछिन-ओज मनोज के बानन बीच बिधी मुथराई ॥३१२॥

रस-रैनि जगी प्रिय-प्रेम-पगी अरसानि सोँ अंगनि मोरति है।
मुख-ओप अनूप बिराजि रही ससि कोरिक वारने, को रति है।
अँखियानि मैँ छाकनि की अरुनाई, हियैँ अनुराग लै बोरति है।
घनआनँद प्यारी सुजान लखेँ डरि डीठि हितू तिन तोरति है ॥३१३॥

---

[३११] लोयनि० = इन नेत्रोँ मैँ (होली का अवसर होने से) लाल लाल गुलाल भरा है या इन्हें अनुराग मेँ डुबाकर रातभर जगाया है ? रस = प्रीति ; आनंद। चाँचरि = होली पर गाया जानेवाला राग विशेष, फाग के गान। चौचँद = क्रीड़ा। नख० = नख का घाव। स्रम० = स्वेद के जल से भीँग रहे हैँ। ढीलियै = शिथिल। भोर हू० = प्रभात हो जाने पर भी उस होली खेलनेवाली से। का = किस। का० = भला किस छल से छूटकर यहाँ तक आ सके, यह तो बताइए।

[३१२] खरी = उत्कृष्ट। सुथराई = स्वच्छता। 'खरी निखरी' मेँ विरोध। रूप के० = सौंदर्य (रूपी समुद्र) के आवर्त मेँ। उथराई = उथलापन, थोड़ी उठान। रत्यौ० = काम की पत्नी रति भी। थुथराई = हलकी या थोड़ी पड़ गई। पैने = तीखे। मुथराई = कुंद होना। बानन० = बाणोँ मेँ कुंदता आ गई, उनकी धार कुंद हो गई।

[३१३] वारने = निछावर हैँ। को० = रति उसके सामने क्या है, कुछ नहीं। छाकनि = मस्ती के नशे की ललाई। हियैँ = हृदय को प्रेम मेँ डुबो

सुख-स्वेद-कनी मुखचंद वनी विथुरी अलकावलि, भाँति भली।
मद-जोबन, रूप-छकीँ अँखियाँ, अवलोकनि आरस-रंग-रली।
घनआनँद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज जी ओज दली।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ-वेलि फली ॥३१४॥
हुलास-भरी मुसकानि लसै, अधरानि तेँ आनि कपोलनि जागै।
छुटीँ अलकैँ मृदु मंजु मिहीँ स्रुतिमूल छलानि अनी मुरि लागै।
बड़ी अँखियानि मैँ अंजन-रेख लजीली चितौनि हियेँ रस पागै।
सुहाग सौँ ओपित भाल दिपै घनआनँद जान पिया अनुरागै ॥३१५॥
राधा नवेली सहेली-समाज मैँ होरी को साज सजेँ अति सोहै।
मोहन छैल खिलार तहाँ रस-प्यास-भरी अँखियानि सौँ जोहै।
दीठि मिलैँ मुरि पीठि दई हिय-हेत की वात सकै कहि को है।
सैननि ही बरस्यौ घनआनँद भीजनि पै रँग रीझनि मोहै ॥३१६॥
रस-चौचँद चाँचरि फाग मची, लखि रीझि विकानि थकी जु चकी।
समुहाय तहाँ हरि भामिनि त्यौँ पिचकी भरि ताक तकी कुच की।

देती है। तिन० = कहीँ सौंदर्य देखकर डीठ न लग जाय इसलिए वह (दृष्टि) तिनका तोड़ती है।

[३१४] कनी = बूँदेँ। रली = युक्त, भरी। ओपित = ओप से युक्त। चोज = उमंग। ओज = प्रताप, प्रभाव। ढीली = शिथिल। मनोरथ० = मनोरथ की फली हुई लता के समान दिखाई देती है।

[३१५] हुलास = उल्लास, उमंग। अधरानि० = होँठोँ से आगे बढकर कपोलोँ पर मुसकान छाती है। मिहीँ = पतली। स्रुति० = कान के मूल मेँ। छलानि० = घुँघराले बालोँ के छल्ले मुड़ी हुई अनी की भाँति लगे हैँ। ओपित = दमदमाता हुआ।

[३१६] मुरि० = मुड़कर प्रिय की ओर पीठ करके खड़ी हो गई। भीजनि० = रंग से भीँगने पर स्वयं रंग ही रीझकर मोहित हो रहा है।

[३१७] चौचँद = विनोद, क्रीड़ा-कौतुक। चाँचरि = होली के गान। रीझि = रीझने और बिक जाने के भाव से स्थकित और चकित हो गई। त्यौँ = ओर। पिचकी = पिचकारी। ताक० = स्तनोँ को लक्ष्य करके देखा। उँठ =

उत मूठि-गुलाल उठैं उकसें सु लगैं पहिलैं छतिया ढुचकी।
घनआनँद घूमनि झूमि रहे गुलचाइल लै अचकाँ उचकी ॥३१७॥

वह माधुरियै सौं भरी मुसक्यानि, मिठास लहै क्यौं विचारो अमी।
अरु वंक विसाल रँगीले रसाल विलोचन मैं न कटाछि कमी।
घनआनँद जान अनूपम रूप तें रीति नई जिय माँझ रमी।
न सुनी कवहूँ सु लखी, चित चोरैई लेति लुनाइयै की लछमी ॥३१८॥

मंजुल वंजुल-पुंज-निकुंज अछेह छवीलो महारस-मेह तें।
द्यौस मैं रैन सो चैन को ऐन, पै जोति-पग्यौ जगि दंपति-देह तें।
हास-विकास विलास-प्रकास सुजान समान अदेह के तेह तें।
भीजि रहे घनआनँद स्वेद, समीर ढुलै विजना भरि नेह तें ॥३१९॥

कवित्त

मद-उनमाद-स्वाद मदन के मतवारे,
केलि कै अवारि लौं सँवारि सुख सोए हैं।
भुजनि उसीसो धारि अंतर निवारि, जानु-
जंघनि सुधारि तन मन ज्यौं समोए हैं।

उठने पर। उकसें = उभड़ने पर। ढुचकी = हिल उठी। घूमनि = नशे में चक्कर काटना। गुलचाइल = गालों पर आघात करने के लिए मुट्ठी बाँधना। अचकाँ = अचानक।

[३१८] अमी = अमृत। मिठास० = वैसी मिठास बेचारे अमृत को कैसे मिल सकती है। लछमी = शोभा। चित० = सौंदर्य की शोभा चित्त को चुराए ले रही है।

[३१९] बंजुल = अशोक। अछेह = (अछेद्य) अखंड। रस = जल ; आनंद। रस० = रस की वृष्टि से। द्यौस० = जहाँ दिन में ही रात्रि का आभास है। ऐन = घर। जोति० = प्रकाश से युक्त। हास० = हँसी के विकसित होने से। बिलास० = शृंगार के विलास के प्रकाश से। अदेह = काम। तेह = अभिमान, रोब, प्रचंडता। समीर = वायु प्रेमपूर्वक पंखा झल रही है।

[३२०] अबारि० = देर तक। उसीसौ० = सिर के नीचे रखकर। अंतर = अंतरपट। समोए = लीन। जागैं = जगते हैं ; दीप्तिमान् हैं। भोए = युक्त।

सुपने सुरति पागैं महा चोप अनुरागैं,
सोए हू सुजान जागैं ऐसे भाव-भोए हैं।
छूटे बार टूटे हार आनन अपार सोभा,
भरे रस-सार घनआनँद अहो ए हैं ॥३२०॥

सवैया

खंजन ऐसे कहा मनरंजन, मीननि लेखौ कहा रस-ढार सौं।
कंजनि लाज को लेस नहीं, मृग रूखे, सने ये सनेह के सार सौं।
मोतिन के यह पानिप-जोति न, वान-जिवाई न जानत मार सौं।
मीत सुजान सिरावन मो दृग छै घनआनँद रंग अपार सौं ॥३२१॥
पीठि दियें सब दीठि परैं निमुँहैं, जग ईठिनि कौन सकेरै।
दौरि थक्यौ जित ही तित ही तिनहीं चितयौ न कहूँ हित हेरै।
कागर-भौन लै आगर मौन दै बात बसी पै सुजानहिं टेरै।
नैननि काननि सौंहीं सदा घनआनँद औरनि सौं मुख फेरै ॥३२२॥

कवित्त

नेही नैन आरत पपीहन की चाह भर्यौ,
पानिप अपार धरे जोबन अदेह को।
उठ्यौ काहू भाँति धीर ओरनि अपूरव पै,
इते पै फुहीनि चैन प्रान मन देह को।

---

[३२१] रसढार० = प्रेम की ढलनशीलता। ये = नेत्र। वान० = काम के बाणों ने काम से इस प्रकार (कटाक्षों को भाँति) आघात करके जिलाना नहीं सीखा। छै = छाकर।

[३२२] पीठि० = तेरे पीठ देने पर सभी विमुख दिखाई पड़ते हैं। निमुँहैं = विना मुँहवाले ; विमुख। ईठिनि = इष्ट। सकेरै = संग्रह करे। हित = कल्याण ; प्रेम। कागर० = कागज का मकान बनाकर (हवाई किले बाँधकर)। आगर = अत्यंत। बात० = मन में बसी हुई बात से। नैननि० = जिनके नेत्रों में ही कान हों (जो देखकर ही मौन पुकार सुन लें) उनके ही यह संमुख होता है।

[३२३] नेही० = मेरे प्रेमी नेत्ररूपी दुखी चातकों की चाह से भरा हुआ। पानिप = पानी ; शोभा। जोबन० = रूपरहित यौवन। उठ्यौ = उमड़ा।

दोऊ अद्भुत देखौ रसिक सुजान क्यौं न,
लेहिं देहिं स्वाद-सुख आनँद अछेह को।
मोहिं नीको लागत री राधे तेरे लोने
इन अंग अंग अररात रंग नेह-मेह को ॥३२३॥

सवैया

बरसैं तरसैं सरसैं अरसैं न कहूँ दरसैं इहि छाक छईं।
निरखैं परखैं करखैं हरखैं उपजीं अभिलाषनि लाख जईं।
घनआनँद ही उनए इनि मैं बहु भाँतिनि ये उन रंग रईं।
रसमूरति स्यामहिं देखत ही सजनी अखियाँ रसरासि भईं ॥३२४॥
आयौ महारस-पुंज-भर्यौ घनआनँद रूप-सिँगार के मौरै।
सींचत है हिय देस-सुदेस अपूरब आँखिनि ठानत ठौरै।

ओरनि = ओर ; दिशा। अपूरब = (अपूर्व) अनुपम ; पूर्व दिशा से इतर दिशा से। उठ्यौ० = यह धैर्यरूपी अपूर्व दिशा से किसी प्रकार (धीरे धीरे) उमड़ता हुआ छाया है। फुही = वृष्टि के अति छोटे जलकण। इते० = इतने पर भी यह अपनी फुहियों से ही प्राण को, मन को और शरीर को सुख दे रहा है। दोऊ = प्रिय और प्रेमी। अछेह = अखंड। लोने० = सलावण्य, सुंदर। अररात = टूटा पड़ रहा है ; मूसलधार बरस रहा है। रंग० = प्रेमरूपी बादल का रंग बरस रहा है। प्रेम की छटा अंग अंग में छा गई है।

[३२४] बरसैं = आँसू बहाती हैं। तरसैं = त्रस्त होती हैं। सरसैं = उमंगित होती हैं। अरसैं = निराश होती हैं। दरसैं = देखती हैं। इहि० = तुम्हारे प्रेम के नशे में चूर होकर। निरखैं = ध्यान से देखती हैं। परखैं = परीक्षा करती हैं (अभिलाष के अंकुरों की)। करखैं = खींचती हैं, तोड़ लेती हैं। उपजीं० = अभिलाषों के लाखों अंकुर फूट निकले हैं। घन० = आनंद के बादल प्रिय ही इन आँखों में छाए हैं। रईं = रँग गईं। रस० = प्रेममूर्ति। रसरासि० = जल की राशि, अश्रुधारा की वृष्टि करने लगीं।

[३२५] रस = जल ; आनंद। मौरै = मुकुट से। रूप० = रूप के श्रृंगार का मुकुट धारण किए हुए। हिय० = हृदयरूपी सुंदर प्रदेश। सुदेस = उत्तम, अच्छा। अपूरब = अपूर्व, अद्वितीय ; पूर्वातिरिक्त दिशा। ठौरै = स्थान।

मोहन-बाँसुरिया सी बजै मधुरे गरजे धुनि मैं मति बौरे।
आज की मोरन की सजनी चित दै सुनि लै कछु बोलनि औरै ॥३२५॥

कवित्त

रति-सुख-स्वेद-ओप्यौ आनँद बिलोकि प्यारे,
प्राननि सिहाय मोह-मादक महा छकै।
पीतपट छोर लै लै ढोरत समीर धीर,
चुंबन की चाड़नि लुभाय रहि ना सकै।
परसि सरस विधि रुचिर चिबुक त्यौं ही,
कंपित करनि केलि-भाव-दाँव ही तकै।
लाजनि लसौंहीँ चितवनि चाहि जान प्यारी,
सींचति अनंदघन हाँसी सौं भरीन कै ॥३२६॥
पानिप अनूप रूप जल कौं निहारि मन,
गयौ हो बिहार करिबे कौं चाय ढरि कै।

अपूरब० = आँखों में अपूर्व स्थान बना लेता है। मोहन० = उसके मधुर (मंद) गरजने में मोहन की बाँसुरी सी बजती है। जिसकी ध्वनि से बुद्धि पागली हो जाती है। आज की० = देखो न आज मयूर की बोली कुछ और ही है, प्रिय के संयोग के कारण मयूर की वाणी विशिष्ट (सुखदायिनी) जान पड़ती है।

[३२६] ओप्यौ = देदीप्यमान । प्राननि० = प्राणों द्वारा लालायित होकर। मोह० = मोहरूपी मदिरा से प्रिय खूब छक जाता है (अत्यंत मोहित हो जाता है)। पीत० = अपने पीतांबर के छोर से। ढोरत० = हवा करते हैं। चाड़ = उत्कंठा। परसि = छूकर। सरस = रसीले ढंग से। चिबुक = ठुड्डी। दाँव = अवसर। चाहि = देखकर। भरीन = भरन, पानी का भराव, घोर वृष्टि। सींचति० = आनंद के बादलरूपी हास से वारिधारा गिराकर (हृदय को) सींचती है।

[३२७] पानिप = शोभा ; पानी। बिहार० = जलक्रीड़ा करने। चाय० = चाव से द्रवीभूत होकर। कैसें० = कैसे पार कर सके। धीर० = धैर्यरूप तट दिखाई ही नहीं पड़ता। हहरि = घबराकर। लेस० = थोड़ा भी सहारा नहीं

पर्‌यौ जाय रंगनि की तरल तरंगनि मैं,
अति ही अपार ताहि कैसैं सकै तरि कै।
धीर-तीर सूझत कहूँ न घनआनँद यौं,
बिवस बिचारो थक्यौ बीच ही हहरि कै।
लेस न सम्हार गहि केसनि मगन भयौ,
बूड़िबे तें बच्यौ को सिवार कौं पकरि कै ॥३२७॥

नेकु उर आएँ ही बहुत दुख दूरि जात,
ताप बिन ताहि आप चंदन कृपा करै।
लगनि दै लागनि दै पाग अनुरागनि दै,
जागनि जगाय लै कै मंदन कृपा करै।
बानी के बिलास बरसावै घनआनँद ह्वै,
मूढ़ हू प्रगट गूढ़-छंदन कृपा करै।
आरति-निकंदन मिलावै नंदनंदन सु,
आनँदनि मेरी मति बंदन कृपा करै ॥३२८॥

अमल अपूरब उजागर अखंड नित,
जाहि चाहि चंदहि चितारिबो कलंक है।

मिलता ; कुछ भी सँभाल नहीं है। बूड़िबे० = भला कोई कभी सिवार (केश) को पकड़कर डूबने से बच सका है? मन उस शोभा के समुद्र में आखिर डूब ही गया।

[३२८] ताप० = कृपा स्वयं उसका ताप चंदन सदृश (शीतल ; शांत) कर देती है। लगनि = प्रीति। लागनि = लगने की उमंग। पाग० = अनुराग में लीन होने की वृत्ति। जागनि० = विबोध का आविर्भाव करके। लै कै० = मंद बुद्धिवालों को। बानी० = वाणी के विलास की वृष्टि करती है। मूढ़ हू = मूढ़ भी गूढ़ छंदों की रचना करने लगता है। आरति० = क्लेश को दूर करनेवाले। आनँदनि = आनंदपूर्वक मेरी बुद्धि उनका वंदन करती है। यह सब कृपा ही करती है।

[३२९] अमल = स्वच्छ ; कलंकरहित। अपूरब = अपूर्व, अनुपम; पूर्व से भिन्न दिशा। अखंड = निरंतर, रातदिन। चितारिबो = चित्रित करना, ध्यान

तारनि प्रकासै मित्र-मंडल मैं मंडन ह्वै,
बन-घन राजै रस-नायक निसंक है।
आनँद-अमृत-कंद, बंदनीय प्रानन को,
सुषमा-संपत्ति हेरैं काम कौन रंक है।
चाहते चकोरन कों चोपन सौं लखि लेत,
कृपा-चंद्रिका मैं नंदनंदन मयंक है ॥३२९॥

सवैया

दृग दीजियै दीसि परौ जिन सौं इन मोर-पखौवनि को भटकै।
मन दै फिरि लीजियै आपु नहीं जु तहीँ अटकै न कहूँ मटकै।
करि बंदन दीन भनै सुनियै भ्रम-फंदन मैं कब लौं लटकै।
घनआनँद स्याम सुजान हरौ जिय-चातिक के हिय की खटकै ।३३०॥

क्यौं हठ कै सठ ! साधन सोधत, होत कहा, मन यौं तरसे तैं।
हाथ चढ़ै जिहिं स्याम सुजान कहूँ तिहिं पायन रे परसे तैं।

मैं ले आना। कलंक = दोष। तारनि = नेत्र के तारे ; आकाश के तारे। मित्र = सखा; सूर्य। बन० = बनरूपी बादलों मैं भी सुशोभित रहता है। रसनायक = प्रिय; रसेश। आनँद = आनंदरूपी अमृत का बादल है। काम० = उसके सामने दरिद्र काम क्या है ? चाहते = चाहनेवाले, प्रेमी, भक्त। चोपन० = उत्साहपूर्वक देखता है। कृपा० = कृपारूपी चाँदनी से युक्त। मयंक = मृगांक, चंद्र।

[३३०] दृग = ऐसे नेत्र दीजिए जिनसे आप दिखाई पड़ें, ये मोरपंख की सी (दृष्टिहीन) आँखें लेकर मैं कहाँ तक भटकता फिरूँ। मन० = मुझे सच्चा मन दीजिए और अपनापन ले लीजिए। न मटकै = कहीं चंचल होकर न घूमे। भ्रम० = भ्रम के फंदों मैं कब तक लटकता रहूँ। जिय० = चित्त-रूपी चातक के हृदय की सारी खटक (चिंता) दूर कर दें।

[३३१] सोधत = ढूँढता फिरता है। हाथ० = जिन चरणों के छूने से सुजान स्याम हाथ पर चढ़ जाते हैं (वश मैं हो जाते हैं) उन्हें कभी तूने स्पर्श किया ? मानस = मन ; मानसरोवर। रसरासि = आनंदराशि ; जल-

नीरस मानस ह्वै रसरासि विराजत नैसिक जा सरसे तैं।
ऊसर हू सर होत लखें घनआनँद रूप-कृपा बरसे तैं ॥३३१॥
साधन-पुंज परे अनलेखे पै मैं अपने मन एकौ न लेख्यौ।
जे निरखे उरझे तिन मैं, किन हूँ विन सोच कछू न बिसेख्यौ।
तातें सबै तजि स्याम सुजान सों साहस औरै हियैं अवरेख्यौ।
प्रान-पपीहन को घनआनँद पोष-रसीली कृपा करि देख्यौ ॥३३२॥
ज्यौं परसै नहि स्याम सुजान तौ धूरि समान है अंगनि धोइबो।
त्यौं मन कौ तिनके दरसे विन बादि विचारनि बीच घँघोइबो।
वे घनआनँद क्यौं लहियै स्रम कै भरि भार अपारहि ढोइबो।
जागत भाग कृपा-रस पागत, दीसत यौं सहजै सुख सोइबो ॥३३३॥
आय जौ छाय तौ धूरि सबै सुख, जीवन-मूरि सम्हारत क्यौं नहीँ।
ताहि महागति तोहिँ कहा गति बैठें बनैगी विचारत क्यौं नहीँ।

राशि। नैसिक = थोड़ा। जा० = जिसके सरसने से (हृदय में आने से)।
सर = तालाव। घन० = आनंद के बादलरूप कृपा की वृष्टि से।

[३३२] अनलेखे = अगणित, अनेक। न लेख्यौ = नहीँ माना। जे निरखे = जिन्होँने इन साधनोँ को देखा, जो इनके चक्कर में पड़े। उरझे० = वे उन्हीँ में उलझ गए। किनहूँ० = किसी ने भी सोच के अतिरिक्त और कोई तत्त्व नहीँ पाया। औरै = विलक्षण, न्यारा। अवरेख्यौ = धारण किया। घन-आनँद = आनंद के घन, श्रीकृष्ण। पोष० = पोषण (पुष्टि) से रसमयी।

[३३३] ज्यौं० = यदि चित्त सुजान श्याम में न लगे तो। बादि = व्यर्थ। घँघोइबो = डुबोना। वे० = आनंदघन स्वरूप उन (श्रीकृष्ण) को इस प्रकार प्राप्त नहीँ किया जा सकता। केवल अपार बोझ ढोने का श्रम करना होगा। वे विचारगम्य नहीँ, अनुभवगम्य हैं। जगत० = यदि भाग्य जगे और वे कृपा के रस में पगें तो सहज ही में दृष्टिगम्य हो जाते हैं। उनके दर्शन से सुखपूर्वक सोने का आनंद (समाधि का आनंद) प्राप्त हो जाता है।

[३३४] आय० = यदि वह आकर हृदय में छा जाए। जीवन० = ऐसे जीवनमूल (श्रीकृष्ण) को क्यों नहीँ सँभालता (उनका ध्यान क्यों नहीँ करता)। ताहि = उसके पास। महागति = परमगति। तोहिं० = उस

नैननि संग फिरै भटक्यौ पल मूँदि सरूप निहारत क्यौं नहीं।
स्याम-सुजान-कृपा-घनआनँद प्रान-पपीहन पारत क्यौं नहीं ॥३३४॥
वलकै झलकै मुख रंग रचै उघरै गुन-गौरव सील ढकै।
मन-वाढ़ चढ़ै अति ऊरध कौं, टक-टेक सौं स्याम सुजान तकै।
जक एक न दूसरी बात कहूँ घनआनँद भीजि कै प्रेम पकै।
दृग देखि छकै उछकै कबहूँ न छबीली कृपा-मधुपान छकै ॥३३५॥

कवित्त

परे रहौ करम, धरम सब धरे रहौ,
डरे रहौ डर, कौन गनै हानि लाहे कौं।
लोक परलोक जो कछू हैं तौ न छूहैं हम,
छीलर रुचै न छीरसिंधु अवगाहे कौं।

परमपद तक पहुँचने की तुझमें क्या शक्ति है। बैठ॰ = यदि उनका ध्यान किया जाय तो तेरी बैठे ही बैठे (सहज ही) बन जायगी। पल॰ = पलकें मूँद कर, ध्यानावस्थित होकर। सरूप = श्रीकृष्ण का रूप। पारत॰ = पालता क्यों नहीं, जिलाता क्यों नहीं।

[३३५] कृपामधु और मदिरा की एकता दिखाई गई है। अतः कृपा का मधुपान करनेवाले में मदपान करनेवाले की चेष्टाएँ श्लेष से दर्शाई गई हैं। वलकै = बकबक करे ; वाणी का कोश खुल जाए। झलकै॰ = मुख में ललाई झलकने लगे ; मुख में ओज छा जाए। उघरै॰ = भेद खुल जाए ; गुण-गौरव उद्घाटित हो जाए। सील॰ = शिष्टता न रह जाए ; शील से आवृत हो जाए। वाढ = जोश ; उमंग। टक॰ = टकटकी लगाकर देखने की टेक। जक = रट। घन॰ = आनंद की वृष्टि से भींगकर प्रेम में पक्का हो जाए। मधु = शराब। दृग॰ = यदि नेत्रों से उन्हें देखकर तृप्त हो जाए तो उनकी कृपारूपी मदिरा पीने से जो नशा चढेगा वह कभी उतरेगा ही नहीं।

[३३६] परे रहौ॰ = सब कर्म पड़े रहें। डरे॰ = फेंके रहें। लाहे = लाभ। लोक॰ = लोक या परलोक भी यदि कुछ है तो इनमें से किसी को छूएँगे भी नहीं, लौकिक या पारलौकिक समृद्धि की कोई चिंता नहीं। छीलर॰ = छीरसिंधु में स्नान करनेवाले को तलैया नहीं रुच सकती। ढंख = ढाक, पलाश

महा घनआनँद घुमड़ पाइयत जहाँ,
सोच सूखा परौ करौ कर्म-ढंख दाहे कौं।
ऐसी रसरासि लहि उलह्यौ रहत सदा,
कृपा-दिखवैया काहू दिसि देखै काहे कौं ॥२३६॥

सवैया

हरि के हिय मैं जिय मैं सु बसै महिमा फिरि और कहा कहियै।
दरसै नित नैननि बैननि ह्वै मुसक्यानि सौं रंग महा लहियै।
घनआनँद प्रान-पपीहनि कौं रस-प्यावनि ज्यावनि है वहियै।
करि कोऊ अनेक उपाय मरौ हमैं जीवनि एक कृपा चहियै ॥२३७॥
स्याम सुजान हियें बसियै रहै, नैननि त्यौं लसियै भरि भाइनि।
बैननि बीच बिलास करै मुसक्यानि सखी सौं रची चित-चाइनि।
है बस जाके सदा घनआनँद, ऐसी रसाल महा सुखदाइनि।
चेरी गई मति मेरी निहारि कै सील-सरूप कृपा-ठकुराइनि ॥२३८॥
बैन कृपा, फिरि मौन कृपा दृग दृष्टि कृपाऽरु समाधि कृपाई।
ज्ञान कृपा, गुन-गान कृपा, मन-ध्यान कृपा, हरै आधि कृपाई।

का बन। महा० = उस आनंद के घन की घुमड़ उपलब्ध होने पर फिर चाहे सोच (चिंतन) का सूखा पड़ जाय और कर्म का पलाश-वन भस्म हो जाय। रस० = आनंदराशि। उलह्यौ० = उल्लसित। कृपा० = भगवत्कृपा की ओर देखनेवाला दूसरे किसी की ओर देखे ही क्यों।

[२३७] हरि० = जो कृपा हरि के हृदय में बसती है उसकी और महिमा क्या कही जाय। नैननि० = वह (हरि के) नेत्रों और वचनों द्वारा दर्शन देती है। ज्यावनि = जिलानेवाली। वहियै = वही। जीवनि = संजीवनी।

[२३८] भरि० = भावों से भरकर। मुसक्यानि० = (वह कृपा) मुसकानरूपी सखी से। रची = अनुरक्त। सील० = शील की छटा से युक्त। ठकुराइनि = रानी, स्वामिनी।

[२३९] बैन० = मेरी वाणी वह कृपा ही है, मौन भी वही कृपा है और नेत्रों की ज्योति भी वही है। आधि = मानसिक क्लेश। ठाँ = स्थान। भीजि = सिक्त होकर, युक्त होकर।

लोक कृपा, परलोक कृपा, लहियै सुख-संपति साधि कृपाई।
यौं सब ठाँ दरसै बरसै घनआनँद भीजि अराधि कृपाई ॥३३९॥

कवित्त

मंजु गुंज करै राग-रचे सुर भरै,
प्रेम-पुंज छवि धरै हरै दरप मनोज को।
चाव-मतवारो, भाव-भाँवरीन लेत रहै,
देत नैन चैन ऐन चोपनि के चोज को।
और फूल भूलि, रीझ भीजि घनआनँद यौं,
बंदी भयौ एक वाही गुन-गन-ओज को।
बानी रससानी ता मधुव्रत की, लह्यौ जिन
कृपा-मकरंद स्याम-हृदय-सरोज को ॥३४०॥

सवैया

फीके सवाद परे सब ही अब, ऐसो कछू रसपान कृपा को।
नीरस मानि कहै न लहै गति मोहिँ मिल्यौ मन मान कृपा को।
रीझनि लै भिजयौ हियरा, घनआनँद स्याम-सुजान-कृपा को।
मोल लियौ बिन मोल, अमोल है प्रेम पदारथ-दान कृपा को ॥३४१॥
नेम लियौ सब बातनि तें, अब बैठिहै साधि कै ज्ञान महातप।
प्रेम थप्यौ घनआनँद-रूप सौं, देखि तप्यौ जग-बाद के आतप।

---

[३४०] राग = वह भ्रमर अर्थात् भक्त राग से युक्त स्वर भरने लगता है। चैन० = आनंद का घर। चोज = उमंग। और० = अन्य पुष्पों को त्याग कर। मकरंद = पुष्परस।

[३४१] सवाद = संसार के अन्य स्वाद। नीरस० = जब से कृपा का मान मन को मोह कर मिला है तब से वह गति (मोक्ष) को नीरस मानकर उसे ग्रहण नहीं कर रहा है। भिजयौ = रससिक्त कर दिया। घन० = सुजान स्याम की कृपा के आनंदघन से।

[३४२] नेम० = सब बातों का नियम ले लिया है, और सब बातें त्याग दी हैं। प्रेम० = प्रेम स्थापित कर लिया है। देखि० = सारे जगत् को

कैसें कहैं कछु भोइ सवाद मिलै वड़ी वेर सों याहि मिल्यौ टप।
मौन हूँ जाकी पुकार करै, गुन-माल गहै जपै एक कृपा-जप ॥३४२॥

कवित्त

चाहियै न कछू जाकी चाह तासों फल पायौ,
याते वाही वन के सरूप नैन कीनौ घरु।
जहाँ राधा-केलि-बेलि-कुल की छवनि छायौ,
लसत सदाई कूल-कालिँदी सुदेस थरु।
महा-घनआनँद-फुहार-सुखसार सींचे हित-
उतसवनि लगाय रंग-भर्यौ झरु।
प्रेम-रस-मूल-फूल-मूरति बिराजौ मेरे मन-
आलबाल कृष्ण-कृपा को कलपतरु ॥३४३॥

सवैया

काहे कौं सोचि मरै जियरा परी तोहि कहा बिधि बातनि की है।
ह्वैं घनआनँद स्याम सुजान सम्हारि तू चातिक ज्यौं, सुख जीहै।
ऐसे रसामृत-पुंजहि पाय कै को सठ! साधन-छीलर छीहै।
जाकी कृपा नित छाय रही दुख-ताप तैं बौरे बचाय ही लीहै ॥३४४॥

वादों की धूप से तप्त देखकर। भोई = मिली। टप = शीघ्र। मौन हूँ = जिसका मौन भी पुकार करता है। माल = माला; समूह।

[३४३] चाहियै० = जिसकी इच्छा करने से ऐसे फल की प्राप्ति हुई कि अब किसी वस्तु की इच्छा नहीं रही। बन = वृंदावन। सरूप० = उस वृंदावन के रूप में नेत्रों ने घर बना लिया, उसे ही देखता रहता है। केलि० = जिस कल्पवृक्ष पर राधिका की क्रीड़ारूपी लता छाई रहती है। छायौ = छाया हुआ। सुदेस = सुंदर। हित = प्रेम के उत्सवों ने, उमंगों ने। रंग = आनंद। झरु = झड़ी। आलबाल = थाला।

[३४४] बिधि० = बातों की विधि में क्यों पड़ा है? सुख० = सुखपूर्वक जिएगा। साधन० = साधनाओं की तलैया कौन छूए। लीहै = लेगी।

[३४५] रंग = वर्ण (श्याम)। रंग = प्रेम । दरस० = दर्शन और स्पर्श की प्रतिज्ञा पूर्ण करनेवाली। बसीठि = दूती। एक = एक भी, एकदम।

कवित्त

साँवरे-सुजान-रंग-संग मति रंग-भीजी,
दरस-परस-पैज-पूरन वसीठि है।
एक गुनहीन नहीँ सूझत सरूप जाकोँ,
कृपा-मद-अंध तिन्हैँ सपने न नीठि है।
सदा घनआनँद वरसि प्रान चातकनि,
पोखति पुकार विन ऐसी सुद्ध ईठि है।
साधन असाधन त्योँ सनमुख होति कैसैं,
सव दिसि पीठि कृपा-मन-तन दीठि है ॥३४५॥

सवैया

चातिक-चित्त कृपा-घनआनँद चोँच की खोँच सु क्योँ करि धारौँ।
त्योँ रतनाकर-दान-समै बुधि-जीरन-चीर कहा लै पसारौँ।
पै गुन ताके अनेक लखौँ निहचै उर आनि कै एक विचारौँ।
कूल वढ़ाय प्रवाह वढ़ै योँ कृपा-वल पाय कृपाहिं सहारौँ ॥३४६॥

गुनहीन = गुण से रहित ; निर्गुण। कृपा० = कृपा के मद से जो अंधे हैँ। सपने = स्वप्न मेँ भी। नीठि = कठिन। एक० = जिसके रूप का आभास आँख रहते भी मिलना कठिन है वह निर्गुण ही है, पर जो कृपा के मद से अंधे (नेत्रहीन) हो जाते हैँ उन्हेँ उस (सगुण) के रूप की प्राप्ति स्वप्न मेँ भी कठिन नहीँ है (प्रत्यक्ष की बात ही फिर क्या)। साधन० = साधन केवल असाधन हैँ, वास्तविक साधन नहीँ।

[३४६] खोँच = कोँछ, छोटी झोली। चातिक० = मेरे चित्त का चातक आप की कृपा के आनंददायक बादल की वृष्टि चोँचरूपी छोटे पात्र में कैसे ले। रतनाकर० = रत्नाकर (रत्नोँ का समूह ; समुद्र) का दान लेते समय बुद्धि का पुराना वस्त्र क्या फैलाऊँ (बुद्धि छोटे-बड़े का, अधिक या न्यून का विवेक करने लगेगी)। एक० = योँ तो उस कृपा के गुण अनेक हैँ पर यहाँ एक का ही विचार करना है। कूल० = जैसे कूल का विस्तार करता हुआ प्रवाह वढता है उसी प्रकार कृपा के ही द्वारा कृपा के उस बढ़ते हुए प्रवाह को हृदय के विस्तृत हो जाने से सँभाल लूँगा।

कवित्त

हरि हू को जोतिक सुभाव हम हेरि लहे,
दानी वड़े पै न माँगे बिन वढ़ै दातुरी।
दीनता न आवै तौ लौं बंधु करि कौन पावै,
साँच सों निकट दूरि भाजैं देखि चातुरी।
गुननि बँधे हैं निरगुन हू अनंदघन,
मति बीर यहै गति चाहैं धीर जातु री।
आतुर न ह्वै री अति चातुर विचार थकि,
और सब ढीले कृपा ही के एक आतुरी ॥३४७॥

सवैया

हौ गुनरासि ढरौ गुन ही, गुनहीनन तैं सब दोष प्रमानैं।
हाहा बुरौ जिन मानियै जू बिन जाँचें कहौ किन दानि बखानैं।
लीजै बलाइ तिहारी कहा करें, हैं हम हूँ कहूँ रीझि बिकानैं।
बूझौ कहैं कहा एक कृपा करि रावरे जौ मन के मन मानैं ॥३४८॥

कवित्त

रही ना कसरि कछू साधन के साधिबे की,
स्रम तें बचाय राखे सुखनि सों सानि है।
लोक परलोक भ्रम भूलि गए सुधि आएँ,
चरित अनेक एक एक रसखानि हैं।

---

[३४७] जोतिक = जो कुछ, जैसा। दातुरी = दान की वृत्ति। बंधु० = दीनता आने ही से ईश्वर दीनबंधु होकर मिलता है। साँच० = सत्य से वह निकट है, पर चतुरता देखकर दूर भागता है। गुनि० = वे आनंदघन (ईश्वर) निर्गुण होकर भी गुणों में बँधे हैं (सगुण हैं)। बीर = हे सखी। यहै० = यह गति देखकर धैर्य चला जाता है। आतुर० = ऐ मेरी मति तू चतुरतापूर्ण विचारों से थककर उतावली मत बन और सब तो ढीले (सुस्त) पड़ गए हैं केवल 'कृपा' में ही आतुरता (फुर्ती) है।

[३४८] प्रमानैं = मानते हैं, समझते हैं। मन के० = मेरे मन के मन आप यदि मान जायँ तो।

तापु बापुरेनि की सिरानी आय नैक ही मैं,
छाए घनआनँद सुवात-बास आनि हैं।
अब पहचानि हमैं चाहियै न काहू संग,
बिन पहचानि कृपा लीनें पहचानिहैं ॥३४९॥

सवैया

जल मैं थल मैं भरि पूरि रही सम कै दिखरावति है बिसमैं।
सम रूप सदा गुनहीनन सों निज तेज तें त्रासति ताप-तमैं।
घनआनँद जीवनिरासि महा बरसै सरसै अरसै न गमैं।
तिन प्राननि संगम रंग अभंग कृपा दरसी सब ठौर हमैं ॥३५०॥

कोऊ कृपा-बल-दूबरो ह्वै करि क्यौं नहिं साधन के सव* साधौ।
लाल कै लोयन प्रान मनौ किन कोऊ समाधिहि ऐंचि अराधौ।
मेरें कृपा-घनआनँद है रस भीजैं सदा जिहिं राधिका-माधौ।
ता बिन ते स्रम-सूल सहैं भ्रम-भूल लहैं सु न एक न आधौ ॥३५१॥

---

[३४९] तापु० = बेचारे ताप तो थोड़े ही मैं ठंढे पड़ गए। बात = वायु ; वचन।

[३५०] सम० = विषम को भी सम करके ही दिखाती है, वैषम्य दूर हो जाता है। तमैं = अंधकार को। अरसै० = चलने मैं आलस्य नहीं करती। संगम = साथ।

[३५१] क्यौं० = कृपा के बल की प्राप्ति से दुर्बल (रहित) होकर कोई चाहे साधन के शवों की साधना ही क्यों न करे। पर सब व्यर्थ है। समाधिहि० = समाधि मैं स्थित होकर नेत्र, प्राण और मन को उनमैं लीन करके उनकी आराधना कोई किया करे। वह परोक्ष की साधना मेरी प्रत्यक्ष साधना से भिन्न है। ता बिन० = बिना उस कृपा के साधन के श्रमों का शूल ही सहना पड़ता है। भ्रम और भूल की ही प्राप्ति होती है। उन्हें एक (पूर्ण) क्या आधे की भी प्राप्ति नहीं होती।

* सव, सत।

कवित्त

साधन जितेक ते असाधन के नेग लगौ,
साधन को महामत-सार गहि ताहि तू।
प्रेम सो रतन जातें पायहै सहज ही मैं,
वहै नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू।
राधिका-चरन-नख-चंद त्यौं चकोर कै सु,
बाढ़त अमंद यौं तरंगनि उमाहि तू।❀
बोहित-बिसास ह्व चढ़ाय लैहै सोई हाहा,
कृस्न-कृपासिंधु मेरे मन अवगाहि तू ॥३५२॥

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलैं अनमिले कछू करि न सकौं तरक।
जियौं तुम हीं तें बिना तुम्हैं मरि मरि जावँ,
एक गावँ बसि ऐसी जियै राखियै मरक।
देखि देखि ढूँढ़ौं दुख-दसा देखि मिलौ हाहा,
मीत औ बिसासी यहै कसकै नई करक।
आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
आरस जग्यौ है कैसें सोई है कृपा-ढरक ॥३५३॥

---

[३५२] नेग लगना = किसी की भेंट हो जाना, वश में होना। साधन० = साधन के लिए तू महामत का सार ग्रहण कर। उमाहि = उमंगित हो। बोहित = जहाज। अवगाहि = थाह ले।

[३५३] मिलन० = आप का मिलन अमिलन से मिलाता है। आप मिलने पर भी न मिले हुए रहते हैं। मिलैं० = मिले रहने पर भी जो अमिल रहता है उसके संबंध में मैं कोई तर्क कर ही नहीं पाता, उसका सुसंगत विचार करने में अपने को असमर्थ पाता हूँ। मरक = तनाव, खिंचाव। बिसासी = विश्वासघाती। करक = पीड़ा। ढरक = ढलनशीलता।

❀ यह पंक्ति हस्तलिखित प्रति में नहीं है।

मन की जनाऊँ ताके मोह नाहिँ है हो कान्ह,
जानराय गुनहिँ लगाऊँ कैसेँ दोष जू।
बिना ही कहेँ करौ तौ कहिबे की कहा रही,
कहेँ क्यौँ न करौ दीन-प्रान-परितोष जू।
तुम्हैँ रिझवार जानि, खीझ सौँ कहत प्यारे,
हाहा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू।
आनँद के घन भूमि भूमि कित तरसावौ,
बरसि सरसि कीजै हेत-लता-पोष जू ॥३५४॥

सवैया

सुधि भूलि रही, मिलि ज्यौं जलपै अब यौँ मन क्यौँ करि फूलिहै जू।
मिटिहै तब ही तिहि ताप, जबै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौँ मति बावरी ह्वै रही भूलिहै जू।
सुधि कौन करै इन बातन की कबहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ॥३५५॥

कवित्त

रसिक रँगीले भली भाँतिनि छबीले घन-
आनँद रसीले भरे महा सुख-सार हैँ।
कृपा-धन-धाम स्यामसुंदर सुजान मोद-
मूरति सनेही बिना बूझेँ रिझवार हैँ।
चाह-आलवाल औ अचाह को कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैँ।

---

[३५४] मन की० = अपने मन की बात क्या कहूँ वह तो केवल मोहित होना जानता है। बिना० = बिना कहे ही कृपा करें तो कहने की कोई आवश्यकता ही नहीँ। पर आप कहने पर भी कृपा क्यौँ नहीँ करते। खीझ सौँ = खीझपूर्वक।

[३५५] सुधि० = मेरे याद आने की भी स्मृति आप को न रह जायगी। भूलिहै० = भूल जायगी, समाप्त हो जायगी।

[३५६] चाह० = चाह के थाले में अचाह व्यक्ति के कलपवृक्ष की भाँति दिखाई देते हैँ।

नित हित-संगी, मनमोहन त्रिभंगी, मेरे
प्राननि अधार नंदनंदन उदार हैं ॥ ३५६ ॥

हारे उपाय, कहा करौं हाय, भरौं किहि भाय मसोस यौं मारै ।
रोवनि आँसू न नैननि देखैंऽरु मौन मैं ब्याकुल प्रान पुकारै ।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर विना हित-मूरति कौन सम्हारै ।
है तिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहै पिय-पायनि पारै ॥३५७॥

जिहिँ पाय की धूरि लौं जाय न पौन, करै इहि भाय कौं गौन-समै ।
तिहि दूरि किती, कहि औधि विचारि, विचारत क्यौं न कहा विरमै ।
गति बूझि परी, किन सूझत रे, कहिबो न छिपै किहि घा सुगमै ।
घनआनँद आहि कृपा नियरो भजि लै रसमै तजि दै विसमै ॥३५८॥

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भस्यौ अति उत्तम नीच मैं ।
नीरसता सरस्यौ नित पै अरस्यौ सु कहूँ सनि आरस-कीच मैं ।
ऐसो अचेत जु साँच कियौ भ्रम, जीवन को सुख साधत मीच मैं ।
ज्वाल-जस्यौ अब होत हस्यौ हरि नेकु कृपा-घनआनँद-सीच मैं ॥३५९॥

---

[३५७] भरौं० = किस प्रकार दिन बिताऊँ । मसोस = पछतावा । सम्हारै० = सहारा दे । प्रिय० = प्रिय के पैरों पर ले जाकर गिराए ।

[३५८] करै० = जाने के समय इस प्रकार (जैसे आँधी या तूफान) का वेग करके भी । औधि = सीमा । गति० = अपनी मंद चाल से वहाँ तक पहुँचना समझ में आया ? कहिबो० = उसे सुगम कहना कैसे ठीक है । नियरो = निकट । आहि० = पर वही कृपा से निकट और सुगम होता है । रसमै = आनंदमय ; प्रेमस्वरूप । विसमै = विषमय ; विषम ।

[३५९] उत्तम = अत्यधिक । नीच० = इस नीच मन में । पै = निश्चय ही । अरस्यो० = आलस्य के कीचड में फँसकर पड़ा रह गया । उस नीरसता से कभी पृथक् नहीं हुआ । साँच० = भ्रम को ही सच्चा मान लिया । मीच = मृत्यु । जीवन० = जीने के सुख की साधना मृत्यु में करता है । ज्वाल० = ज्वाला में जला हुआ यह अब हरा-भरा (आनंदित) हो रहा है । सीच० = सींचने से ।

कवित्त

दीनौ जग जनम, जनाइँ जे जुगति आछी,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहरे हौ।
आनँद-पयोद ह्वै सरस सींचे रोम रोम,
भाव-निरभर लै सुभाव-गहभरे हौ।
जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अंग-अंग-संग रस ररे हौ।
ऐसैं क्यौं सुखैयै सोच-तापनि, हर्‍यौ कै हरी,
जैसें या पपीहा-दीठि नीठि हू न परे हौ ॥३६०॥

डगमगी डगनि-धरनि छवि ही के भार,
ढरनि छबीले उर आछी बनमाल की।
सुंदर वदन पर कोरिक मदन वारौं,
चित चुभी चितवनि लोचन विसाल की।
काल्हि इहि गली अली निकस्यौ अचानक ह्वै,
कहा कहौं अटक भटक तिहि काल की।
भिजई हौं रोम रोम आनँद के घन छाय,
बसी मेरी आँखिन मैं आवनि गुपाल की ॥३६१॥

नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग-भर्‍यौ,
काल्हि मेरे द्वार ह्वै कै गावत इतै गयौ।

---

[३६०] ढरनि = ढलना, पिघलना, द्रवीभूत होना। ढरहरे = ढलनेवाले, कृपालु। आँनद० = आनंद के बादल ; आनंदघन, घनआनंद। निर-भर = निर्भर, पूर्ण ; जो भरा न हो। सुभाव० = अपने कृपालु स्वभाव से भली भाँति भरे हुए। रस० = रसयुक्त। दीठि० = कठिनाई से भी, किसी प्रकार भी नहीँ दिखाई पड़े।

[३६१] डगनि० = कदम रखना। भार = बोझ से। ढरनि = हिलना। छबीले० = सुशोभित वक्षस्थल पर। बनमाल = लंबी माला, बड़ी माला।

[३६२] ऐन = घर। सो = वह चित्त। लूट० = लूट सी करके चला गया।

बड़े बाँके नैन महा सोभा के सु ऐन आली,
मृदु मुसक्याय मुरि मो तन चितै गयौ।
तब तें न मेरे चित्त चैन कहूँ रंचकौ है,
धीरज न धरै सो, न जानौं धौं कितै गयौ।
नेकु ही मैं मेरो कछू मो पै न रहन पायौ,
औचक ही आय भट्ट लूट सी बितै गयौ ॥३६२॥

जाके उर बसी रसमसी छबि साँवरे की,
ताहि और बात नीकी कैसें करि लागिहै।
चखनि चषक पूरि पियौ जिन रूप-रस,
कैसें सो गरल-सनी सीखनि सौं पागिहै।
आनँद को घन स्यामसुंदर सजल अंग
छाड़ि, धूम-धूँधरि सौं कैसें कोऊ रागिहै।
ये तौ नैन वाही को वदन हेरें सीरे होत,
और बात आली सब लागति ज्यौं आगि है ॥३६३॥

हिलग अनोखी क्यौंहूँ धीर न धरत मन,
पीर-पूरे हिय मैं धरक जागियै रहै।
मिलैं हूँ मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट विकल अकुलानि लागियै रहै।
मरति मरूरनि बिसूरनि उदेग-बाढ़ी,
चित चटपटी मति चिंता पागियै रहै।
ज्यौं ज्यौं बहरैयै सुधि जी मैं ठहरैयै,
त्यौं त्यौं उर अनुरागी दुख-दाह दागियै रहै ॥३६४॥

---

[३६३] रसमसी = रसयुक्त। चषक = प्याला। रस = अमृत; आनंद। धूम० = धुएँ का धुंध।

[३६४] हिलग = लगन। मरूरनि = मरोर, पीड़ा। उदेग० = उद्वेग से बढ़ी हुई चित्त की आतुरता। दुख० = दुःख के दाह से दग्ध ही होता रहता है।

सवैया

रैन-दिना घुटिबो करैं प्रान झरैं अँखियाँ दुखिया झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं कसकै सखि ज्यौं पँसुरीनि मैं गाँसी।
चौचँद-चार चवाइन के चहुँ ओर मचैं, बिरचैं करि हाँसी।
यौं मरियै भरियै कहि क्यौं सु परौ जिन कोऊ सनेह की फाँसी ॥३६५॥
अलि ! जो बिधिना ब्रजवास न देतौ न नेह को गेह हियो करतौ।
अरु रूप-ठगी अँखियाँ रचतौ नहीँ रूखियै दीठि सौं लै भरतौ।
कहि तौ लखि नंद को छैल छबीलो सु क्यौं कोऊ प्रेम-फँदा परतौ।
दुख कौ लौं सहौं घुटि कैसे रहौं भयौ भाकसी देखें बिना घर तौ ॥३६६॥
होते हरे हरे रूखे जो दूखे, कितै गई सो चिकनानि तिहारी।
मोह-मढ़ी बतियाँ जु गढ़ी सु कढ़ी छतिया छिदि वंक बिहारी।
चूक पै मूक भए ही बनै, घनआनँद हूकनि होति दुखारी।
एहो कहा भयौ कान्ह कठोर ह्वै एक ही बार चिन्हारि बिसारी ॥३६७॥

कवित्त

छवि सौं छबीलो छैल आजु भोर याही गैल,
अति ही रँगीली भाँति औचक ही आयगौ।
चटक-मटक-भरी लटकि चलनि नीकी,
मृदु मुसक्यानि देखें मो मन बिकायगौ।
प्रेम सौं लपेटी कोऊ निपट अनूठी तान,
मो तन चिताय गाय लोचन दुरायगौ।

---

[३६५] गाँसी = फाँस, काँटा। चौचँद-चार = बदनामी की चर्चा। चवाइन = बदनामी करनेवाली स्त्रियाँ। बिरचैं = विशेष रूप से फैल रहे हैं। भरियै = दिन कैसे काटूँ।

[३६६] रूखियै० = उन आँखों को भी रूखी दृष्टि से ही भरता। उनमें स्नेह न देता। भाकसी = (भस्त्री = भाथी) भट्ठी।

[३६७] होते० = रूखे दूखे भी जिससे हरे हो जाते थे वह तुम्हारी चिकनाई कहाँ गई। रूखे = नीरस ; रूक्ष। दूखे = दुखी, पीड़ित। हरे = हरेभरे ; प्रसन्न। हूकनि = वेदना से। चिन्हारि = पहचान।

तब ते रही हौं घूमि भूमि जकि बावरी ह्वै,
गुर को तरंगनि मैं रंग बरसायगौ ॥३६८॥

छवि की निकाई एहो मोहन कन्हाई, कछू
बरनी न जाई जो लुनाई दरसति है।
बारिधि-तरंग जैसे धुनि-राग-रंग जैसे,
प्रतिछिन अधिक उमंग सरसति है।
किधौं इन नैननि सराहौं प्रानप्यारे,
रूप-रेलहि सकेलैं तऊ दीठि तरसति है।
ज्यौं ज्यौं उत आनन पै आनँद सु ओप औरै,
त्यौं त्यौं इत चाहनि मैं चाह बरसति है ॥३६९॥

सुंदर सरस लोनो ललित रँगीलो मुख,
जोबन-झलक क्यौं हूँ कही न परति है।
लोचन चपल चितवनि चाय-चोज-भरी,
भृकुटी सुठौन भेद-भायनि ढरति है।
नासिका रुचिर अधरनि लाली सहजै ही,
हँसनि दसन-जोति हियरा हरति है।
नख-सिख आनँद-उमंग की तरंग बढ़ि
अंग अंग आली छवि छलक्यौ करति है ॥३७०॥

बैस है नवेली अलबेली ऊठ अंग अंग,
झलकै अनंग-रंग एड़त चलत है।
सहज छबीले दसननि मैं रची री बीरी,
अधर-तरंगनि सुधा सी उझलत है।

---

[३६८] घूमि = मस्त होकर।

[३६९] सरसति० = बढ़ती है। रूप० = रूप की अधिकता। सकेलैं = संग्रह करते हैं। चाहनि० = देखने में उत्कंठा की वृष्टि होती है। देखने की लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

[३७०] सुठौन = सुंदर।

छके छुवैं कान वारौं कोटि तीखे बान, ऐसे
नैननि बिहँसि हेरि मैन निदलत है।
कारी घुँघरारी अलकनि के छलानि, छैल
ताननि लुभाय फिरि प्राननि छलत है ॥३७१॥

रूप-गरबीलो अरबीलो नंद-लाड़िलोसु,
दृग-मग उरस्यौ परत आली उर मैं।
काननि ह्वै प्राननि निकासि लेत एरी बीर!
ऐसो कछू गावत मधुर बंसी-सुर मैं।
ढोरियै दरेरनि निदरि लाज देखिबे कौं,
पौरि पौरि याही रौरि माची ब्रज-पुर मैं।
कैसे करि जीजै, बसि कीजै कहा, महा सोच,
चार्‍यो ओर चलत चवाव लघु-गुर मैं ॥३७२॥

पीरे पीरे फूलनि की माला रचि हियें धारि,
वारि वारि ताही कौं सफल करै काय कौं।
ऐसे धीर काचे, पूरे प्रेम-रंग-राचे बीर!
पीरे फल चाखैं अभिलाखैं नीके दाय कौं।
डोलैं बन बन बावरे ह्वै साँवरे सुजान,
धाय धाय भेंटैं भावती ही दिसि बाय कौं।
उमगि उमगि घनआनँद मुरलिका मैं
गौरी गाय ढौरी सौं बुलावैं गोरी गाय कौं ॥३७३॥

---

[३७१] ऊठ = उभाड, उठान। उझलत० = उड़ेलता है। छके = यौवन के मद से मस्त। मैन = काम। निदलत० = दबा देता है, पराजित करता है। छला = बालों के छल्ले।

३७२] उरस्यौ० = धँसे आ रहे हैं। ढोरियै० = साथ लगने के धक्के से लज्जा का निरादर करके। याही० = यहीं शोरगुल। चवाव = बदनामी। लघु० = छोटे बड़े सब में।

[३७३] वारि = निछावर करके। धीरे० = धैर्य मैं कच्चे। दाय = दाँव। बाय = वायु। भेंटैं० = आँखें मूँदकर प्रेमिका की ओर मुँह करके वायु में ही

तेरे हित हेली ! अनुराग-बाग-बेली करि,
मुरली-गरज झूमि झूमि सरसत है।
लोने अंग रंग जानि चंचला छटा सौं पट
पीत कौं उमगि लै लै हियें परसत है।
चाह के समीर की झकोरनि अधीर ह्वै ह्वै,
उमड़ि घुमड़ि याही ओर दरसत है।
लोचन सजल क्यौं हूँ उघरैं न एकौ पल,
ऐसें नेह-नीर घनस्याम बरसत है ॥३७४॥

आई आन गाँव तें नवेली पास पायसें सु,
गुरु-जन-लाज के समाजनि मैं आवरी।
आनँद-सरूप अलि साँवरो तक्यौ ता कहूँ,
दीठि के मिलत बढ़ि पर्यौ चित चाव री।
रीझि-परबस पर बस न चलत कछू,
ऐसें ही मैं होरी को रँगीलो बन्यौ दाव री।
दिन ही मैं तिन-सम कानि के कपाट तोरि,
धूँधरि अबीर की कौं मानत बिभावरी ॥३७५॥

गोरी बाल थोरी बैस, लाल पै गुलाल-मूठि
तानि कै चपल चली आनँद-उठान सौं।
बायें पानि घूँघट की गहनि चहनि-ओट
चोटनि करति अति तीखे नैन-बान सौं।

(शून्य मैं ही) आलिंगन किया करते हैं। गौरी = एक राग। ढौरी० = ढंग से। गोरी = धौरी, सफेद; गौर वर्णवाली।

[३७४] सखी का वचन राधा से। हेली = हे सखी। मुरली० = मुरली की ध्वनिरूपी गर्जना। चंचला = बिजली। घनस्याम = श्रीकृष्ण; बादल। रूपकालंकार।

[३७५] पायसें = जेवनार मैं। पास = पड़ोस। पास० = पास-पड़ोस (के गाँव) मैं। आवरी = व्याकुल। परबस = पराधीनता। रँगीलो = बढ़िया;

कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि, पाय
दाय जीति आय झुंड मिली है सयान सों।
मीड़िबे के लेखें कर मीड़िबोई हाथ लग्यौ,
सो न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सखान सों ॥३७६॥
नीकी नई केसरि को गारौ हू गरब गारै,
फीकी रोरि, गारि सी निहारैं रूप गोरी को।
चारु चुहचुही मँजी एड़िनि ललाई लखें,
चपरि चलत च्वै बरन बूकी बोरी को।
हँसि बोलें कोरिक कपूर सोंधे वारि ढारि,
डारि डारि दीजै हो कलंक इन्हैं चोरी को।
प्यारे घनआनँद के राग-भाग फाग देखौ,
रस-भीजे अंगनि अनूठो खेल होरी को ॥३७७॥

सवैया

बैस नई अनुरागमई सु भई फिरै फागुन की मतवारी।
कोंवरे हाथ रची मिहँदी डफ नीकें बजाय हरै हियरा री।

रंगवाला। तिन = तृण के समान। कानि = मर्यादा। धुंधरि० = अबीर की धुंध को। विभावरी = रात।

[३७६] उठान = उमंग। वायँ० = बाँएँ हाथ मैं घूँघट को पकड़े हुए। चाहनि० = घूँघट की ओट से देखकर चोट करती है। दलनि = समूह। पाय० = दाँव पाकर और जीतकर। सयान = चतुरता। मीड़िबे० = मलने के लिए केवल हाथ मलना (पछताना) ही हाथ लगा।

[३७७] गारौ = गौरव। गारै = दूर करता है। फीकी० = गोरी (राधा) का रूप देखकर रोली का रंग फीका पड जाता है। वह रोली गाली (दूषण) सी जान पड़ती है। चुहचुही = जिनमैं रक्त छलक सा रहा हो। मँजी = स्वच्छ। चपरि = शीघ्रता से। बरन = वर्ण, रंग। बूकी० = लाल बुकनी मैं डुबोए वस्त्र का। सोंधे = सुगंधित पदार्थ, इत्र आदि। वारि० = निछावर करके, फेंक देकर। कलंक० = इन कपूर आदि को चुराने का कलंक लगाओ। राग = अनुराग ; गाने का राग।

साँवरे भौंर के भाय भरी घनआनँद सौंनि मैं दीसति न्यारी।
कान ह्वै पोखति प्रानपियैं मुख-अंबुज च्वै मकरंद सी गारी ॥३७८॥

पिय के अनुराग सुहाग-भरी रति हेरैं न पावति रूप-रफै।
रिझवारि महा रसरासि-खिलारि गवावति गारि बजाय डफै।
अति ही सुकुवारि उरोजनि भार भरै मधुरी डग लंक लफै।
लपटैं घनआनँद घायल ह्वै दृग-पायल छ्वै गुजरी-गुलफै ॥३७९॥

कवित्त

नई तरुनई भई, मुख आछी अरुनई,
सरद-सुधाधर-उदोत-आभा रद की।
अंग अति लोनी लसै लालित तिलोनी सारी,
भाग-भरे भाल दिपै बेंदी मृगमद की।
बोलै हो हो होरी घनआनँद उमंग-बोरी,
छैल-मति छकै छवि हेरैं रदछद की।
रोरी भरि मुठी गोरी भुज उठी सोहै मनौ,
पराग सौं रली भली कली कोकनद की ॥३८०॥

सवैया

घूँघट-ओट तकै तिरछी घनआनँद चोट सुघात बनावै।
बाँह उसारि सुधारि बरा बर बीर! छरा धरि ढूकति आवै।

---

[३७८] बैस = (बयस्) उम्र। काँवरे = कोमल। सौंनि० = अबीर की ललाई से भरे मुँहवाली होकर। न्यारी = अद्भुत। मकरंद = पुष्परस।

[३७९] रफै = ढंग। मधुरी = बढ़िया। डग = कदम। लंक = कमर। लफै = लचकती है। पायल = पायजेब, नूपुर। दृग० = नेत्ररूपी नुपूर। गुजरी = (गुर्जरी) गोपी। गुलफै = एड़ी के ऊपर की गाँठ, टखना।

[३८०] रद० = नष्ट कर दी। तिलोनी = सुगंधित फुलेल से युक्त। बेंदी = बिंदी, बिंदु। रदछद = होंठ। रली = भरी। कोकनद = लाल कमल।

[३८१] उसारि = वस्त्र में से निकलकर। बर = श्रेष्ठ, मनोहर। बरा = भुज पर पहनने का गहना। छरा = माला की लड़। ढूकति० = निकट

कौंधि अचानक चौंधि भरै चख, चौकस चौंकति छाँह न छ्वावै।
वाल अनूठियै ऊठ गुलाल की मूठि मैं लालहि मूठि चलावै ॥३८१॥
दाँव तकै, रस-रूप छकै, बिथकै मति पै अति चोपनि धावै।
चौंकि चलै, ठठि छैल छलै, सु छबीली छराय लौं छाँह न छ्वावै।
घूँघट-ओट चितै घनआनँद चोट बितै अँगुठाहि दिखावै।
भावती गौं-बस ह्वै रसिया हिय-हौंसनि सौंसनि आँखि अँजावै ॥३८२॥
पिय-नेह अछेह भरी दुति देह दिपै तरुनाई के तेह तुली।
अति ही गति धीर समीर लगैं, मृदु हेमलता जिमि जात डुली।
घनआनँद खेल-अलेल-दसै बिलसै, सु लसै लट झूमि झुली।
सुठि सुंदर भाल पै भौंहनि बीच गुलाल की कैसी खुली टिकुली ॥३८३॥
आछी-तिलौनी लसै अँगिया गसि चोवा की बेलि बिराजति लोइन।
साँवरी पोति-छरा छलकै छवि गोरी अँगेट लखें सम कोइ न।

आ रही है। कौंधि = चमककर। चौकस = सावधानीपूर्वक। मूठि चलावै = जादू करती है।

[३८२] ठठि = ठटकर, शान से मोरचा लेने के लिए डटकर। छराय लौं = छले जाने (पकड़ी जाने) की आशंका से। चोट० = चोट करके। गौं = घात।

[३८३] अछेह = परिपूर्ण। तेह = रोष, जोश। तुली = समन्वित होकर। अलेल = खेल में अत्यंत मग्न होकर किलोल करना। दसै = दशा में। झूमि = मस्ती के साथ हिलती हुई। झुली = लटकती हुई। सुठि = सुंदर, (यहाँ पूर्वार्थ में प्रयुक्त) अत्यंत। खुली = शोभित होती है, फबती है।

[३८४] तिलोनी = सुगंधित अर्थात् फुलेल-लगी। अँगिया = चोली। गसि = भिनकर, स्निग्ध होकर। चोवा = सुगंधित द्रव्य, बहुत सुगंधित इत्र। बेलि = इत्र आदि रखने का वर्तन, बेला। लोइन = सुंदर। साँवरी = नीली। पोति = काँच की गुरिया। छरा = माला की लड़ी। गोरी = सफेद। अँगेट = कांति। सम० = कोई समतावाला नहीं दिखाई देता। झवैंलिनि = झाँवें से रगड़ी हुई (एड़ी)। थकै = स्थकित हो जाता है। डग० = उसका दो डग चलना देखकर ही। भावती = प्रिय लगनेवाली। गौं = घात, ढंग।

पड़ी झँवैलिनि ताकि थकै घनआनँद छैल छकै डग दोइन।
भावती गौं पगि लावनि सौं लगि डोलैं लला के लगौं हँई लोइन ॥३८४॥

कवित्त

चिहुँटि जगाई अधराति औटपाई आनि,
जानि भहराई सम्हराई मुँह चाँपि कै।
संकट सनेह को विचारि प्रान जात घुटे,
उरे नाह, नाहर-डरनि उठी काँपि कै।
दिन होरी-खेल की हराहर भयौ हो सु तौ,
भाग जागें सोयौ निधरक नैन ढाँपि कै।
सपने की संपति लौं दुख दैन जान्यौ घन-
आनँद कहा धौं सुख पायौ पंथ नाँपि कै ॥३८५॥

भावती सहेट अंक भरि भेटि संक मेटि,
रंक थाती छाती धरि रहे आप आप कौं।
निपट अनूठी दसा, हेरत हिरानी बीर!
बानियौ सिरानी, क्यौं बखानियै मिलाप कौं।
आगें कहा बाती, भई तब हीँ सुरति-रीती,
जैसैं सर छूटि न मिलत फिरि चाप कौं।
सोभा-रस चाखैं अभिलाखैं हुतीं आँखैं,
घनआनँद उछरि ओछी फूलीं भूलीं जाप कौं ॥३८६॥

लावनि = पैर रखना, चलना [या लावण्य, सौंदर्य]। लगि० = लगे घूमते हैं। लगौं हँई = लगनेवाले।

[३८५] चिहुँटि = चुटकी काटकर। औटपाई = नटखट। जानि० = गिरती हुई जानकर मुँह पकड़कर सँभाला। उरे = दूर (हो जाने पर)। नाहर = सिंह। दिन = दिन में। हराहर = झीना-झपटी, रसक्रीड़ा। जागें० = जागते हुए भी सो गया। नैन० = नेत्र मूँदकर। पंथ० = रास्ता नापने में क्या सुख मिला, अच्छा होता आप आए ही न होते।

[३८६] सहेट = संकेतस्थल, मिलन का स्थान। थाती = पूँजी। रहे० = सब अंगों को अपनी अपनी पड़ी थी। निपट = अत्यंत। हेरत० = देखते देखते

सवैया

प्रेम - अमी - मकरंद - भरे बहुरंग प्रसूननि की रुचि - राजी।
देखत आज बनै बनराजहि रूप अनूपम ओप बिराजी।
राग-रची अनुराग-जची सुनि है घनआनँद बाँसुरी बाजी।
मैन-महीप बसंत-समीप मतौ करि कानन सैन है साजी ॥ ३८७॥

कवित्त

एड़ी तें सिखा लौं है अनूठियै अँगेट आछी,
रोम रोम नेह की निकाई मैं रही है सनि।
सहज सुछबि देखे दबि जाहिँ सबै बाम,
बिन ही सिँगार औरै बानिक बिराजै बनि।
गति लै चलत लखें मति-गति पंगु होति,
दरसति अंग-रंग-माधुरी बसन छनि।
हँसनि - लसनि घनआनँद जुन्हाई छाई,
लागै चौंध चेटक अमेठ-ओपी भौंहैं तनि॥ ३८८॥

सवैया

पातरे गात किए नवसात, निकाई सों नाक चढाएँई बोलै।
राचे महावर पायनि त्यौं तकि चायनि आय गस्यारेई डोलै।

खो गई। बानियौ = वचन भी नहीं निकलते। सुरति-रीति = सुध-बुधरहित। सोभा० = शोभा का रस चखने की अनेक अभिलाषाएँ थीं, किंतु आँखें आनंद से उछलकर मतवाली होकर फूल उठीं और अपना जप भूल बैठीं।

[३८७] रुचि-राजी = सुंदर पंक्ति। बनराज = श्रेष्ठ वन, वृंदावन। ओप = छटा। राग० = गाने के रागों से संयुक्त। अनुराग० = प्रेम से जँची हुई, प्रेम से सिद्ध। मैन = मदन, काम। मतौ० = सलाह करके। कानन = वन में; कानों में। सैन = सेना।

[३८८] अँगेट = दीप्ति। बानिक = रूप की छटा, मुद्रा। बसन० = वस्त्रों से छनकर। अमेठ० = तनाव से चमकती और खिंची भौंहों से जादू की सी चौंध आ लगती है। तनी भौंहें जादू सा प्रभाव उत्पन्न करती हैं।

स्यामहि चाहि चलै तिरछी, मनु खेल खिलारि न घूँघट खोल।
आली सों आनँद बातनि लागि मचावति घातनि घामरि घोल ॥३८९॥
हरि-नेह-छकी तरुनाई के तेह सु गेह मैं लाज सौं काज करै।
मिस ठानि चलै रसिया रहठानि त्यौं आनि भट्ट अँखियानि अरै।
घनआनँद रूप-गरूर-भरी धरनी पर सूधे न पाय परै।
पिय को हिय ताहि लखे अभिलाषनि लाखनि लाखनि भाँति भरै॥३९०॥

कवित्त

रही मिलि भीति पै सभीति लोक-लाज-भरी,
रीझी कहूँ स्यामै देखि दसा ताकी को कहै।
फंद की मृगी लौं छंद छूटिबे को नेकौ नाहिँ,
चारयो ओर कोरि कोरि भाँतिन सौं रोक है।
मोहन को बोल सुनै धुनै सीस, मन ही मैं
घुनै सोच भारी, गुनै गहि बूड़ै सोक है।
उघरै न बास गुरुजन आस-पास घन-
आनँद बतास कहा अहा नेह-झोक है॥३९१॥
तरुनाई-बारुनी-छकनि-मतवारे भारे,
झुकि धुकि धाय रीझि उरझि गिरत हैं।
सम्हरि उटत घनआनँद मनोज-ओज,
बिफरत बावरे न लाजनि घिरत हैं।

---

[३८९] पातरे = पतले, दुबले। नवसात = सोलह शृंगार। गरुयारेई = चक्कर काटती हुई। घामरी = बेहोशी, गश।

[३९०] मिस = बहाना। रहठानि = रहने का स्थान, वासस्थान।

[३९१] भीति = दीवार। रही० = दीवार से सटी जा रही है। सभीति = भययुक्त। फंद० = फंदे में पड़ी। छंद = उपाय। धुनै० = सिर पटक रही है। घुनै = भीतर ही भीतर क्षीण होती है। बास = वस्त्र, परदा, भेद, रहस्य। बतास = वायु। झोक = झोंका।

[३९२] झुकि = क्रुद्ध होकर। धुकि० = तेजी से दौड़कर। रीझि० = रीझ से उलझकर गिर पड़ते हैं। ओज = बल। बिफरत = उत्पात करते हैं।

सुघराई सान सौं सुधारि मसि असि कसि,
कर ही मैं लियें निसवासर फिरत हैं।
तेरे नैन-सुभट चुहट-चोट लागें वीर,
गिरिधर-धीरता के किरचा करत हैं ॥३९२॥

सवैया

चाल-निकाई लखैं विलखै पचि पंगु मरालिनि-माल बिसूरति।
पाय परें न परै मति पाय सची तरसै थरसै, न कछू रति।
घूँघट-बीच मरीचनि की रुचि कोटिक चंदन को मद चूरति।
लाजनि सौं लपटी घनआनँद साजन के हिय मैं हित पूरति ॥३९३॥

कवित्त

सिसुताई-निसि सियराई;बाल-ख्यालनि मैं,
जोबन - बिभाकर-उदोत-आभा है रली।
गमागम-बस भयौ रस को समागम है,
आगे तैं अधिक अब लागन लगी भली।
सकुच-विकच-दसा देखौं मन आई मनौ,
चाहति कमल होन कौन रूप की कली।

मसि = अंजन। असि = तलवार। चुहट = कसक रूपी चोट। किरचा = टुकड़े।

[३९३] पचि = परेशान होकर। मरालिनि० = हंसियों की पंक्ति सोच करने लगती है। पाय० = पैरों के रखने पर। न परै० = बुद्धि उसे समझ नहीं सकती। सची = इद्राणी। तरसै = लालायित होती है। थरसै = त्रस्त होती है। न कछू० = रति कुछ भी नहीं है। रति = काम की पत्नी। मरीच = ज्योति, किरण। रुचि = शोभा, छटा। चंदन = चंद्रों का। हित = प्रेम।

[३९४] सिसुताई० = शैशवरूपी रात्रि बीत गई। ख्यालनि० = खेल में ही। विभाकर = सूर्य। उदोत = उदय। आभा = प्रकाश। रली = छाई है। गमागम = जाना (शैशव का) और आना (यौवन का)। रस = आनंद। समागम = मिलन। आगे तैं = पहले से। सकुच = संकोच। बिकच = खिलना, विकास। सकुच० = संकोच के खिलने की दशा आ गई है, संकोच चढ़ गया है। कमल० = मानों कोई रूप की कली खिलकर कमल होना चाहती

बड़भागी रागी अलि ! पैहै घनआनँद सौं,
आँखिन सिरैहै मधु लैहै भावतो अली ॥३९४॥

अलप अनूप लटपटी सु लपेटी रूप,
अलग लगी सी तामैं केती सूध-बाँक है।
कोटिक निकाई मृदुताई की अवधि सोधौं,
कैसे कै रची है जामैं विधि-बुधि राँक है।
दीठि नीठि आवै कोऊ कहि क्यौं बतावै, जहाँ
बात हू के बोझ हिय होत नसि साँक है।
चलि चित चोरै मुरि मनहिँ मरोरै सुठि,
सुभग सुदेस अलबेली तेरी लाँक है ॥३९५॥

लाली अधरान की रुचिर मुसक्यान-समै,
सब मुख भोर ही सिँदूरा की सी फैल है।
जोबन गरूर गरुवाई सौं भरे, बिसाल
लोचन रसाल चितवनि बंक छैल है।
सुंदर सलोने लोने अंगनि की द्रुति आगैं,
मन मुरझानो मंद मैन को सो मैल है।

है। रागी = प्रेमी। सिरैहै = शीतल करेगा। मधु = मकरंद पुष्परस ; आनंद। भावतो = प्रिय। अली = भ्रमर।

[३९५] अलप = सूक्ष्म। लटपटी = टेढ़ी। लपेटी = चारों ओर घूमी हुई। सूध = सीधी। बाँक = वक्रता। सोधौं = खोजूँ। बिधि० = ब्रह्मा की बुद्धि दरिद्र है। नीठि = कठिनाई से। साँक = सशंक, शंकित। चलि = चलकर, हिलकर। सुठि = अत्यंत (पूर्वी अर्थ)। सुदेश = सुव्यवस्थित। लाँक = लंक, कमर।

[३९६] सिँदूरा = ललाई, उषा की रक्तिमा। गरुवाई = गुरुत्व। सलोने = सलावण्य, प्रिय कृष्ण। लोने = रमणीय। मैन = काम ; मोम। मन० = मन मुरझाकर काम (मोम) की मैल सा रह जाता है। द्युति मैं उज्ज्वलता है और मन मैं मलिनता है ; उसके प्रकाश मैं मन की मैल दिखाई

दुहूँ हाथ अंसनि तें पीरो पट ओढ़े लखि,
टाढ़ो सिंह-पौरि रौरि परि थाकी गैल है ॥३६६॥
मंजु मोरचंद्रिका-सहित सीस साँवरे के,
कैसी आछी फबी छवि पाग पँचरंग की।
दारिम-कुसुम के वरन झीने नीमा मधि,
दीपति दिपति सु ललित लोने अंग की।
मंजन करत तहाँ मन वनितान के,
निहारि मोती-मालहि विचारि धारा गंग की।
आनँदनि भरो खरो मुरली वजावै, मीठी
धुनि उपजावै राग-रागिनी-तरंग की ॥३६७॥

सवैया

नैन के सैन मैं कोटिक मैन लजैऽरु भजै तजि कै सर पाँचनि।
आनँदमै मुसक्यानि लखें पघिल्यौई परै हित चाह की आँचनि।
ता पिय के हिय कौं हँसि हेरि लई सु रई सी नई गति नाचनि।
नपुर-बीन सौं लीन कै प्यारी प्रवीन अधीन किये सुर साँचनि ॥३६८॥
जात नए नए नेह के भार विंधे उर ओर घनी वरुनी के।
आनँदमै मुसक्यानि उदोत मैं होत हैं रोल तमोल अमी के।

पड़ने लगती है। अंस = कंधा। सिंहपौरि = सदर फाटक। रौरि० = शोर-गुल मचाते हुए भीड़ लगकर। थाकी = गली रुक गई है।

[३६७] नीमा = नीचे पहनने की कुर्ती। मंजन० = स्नान करते हैं।

[३६८] सर = अपने पाँचों बाणों को। आनँद० = आनंदयुक्त। हित = प्रेम। लई = उसने ले लिया। नूपुर० = नूपुर की वीणा से उसने मुग्ध करके वास्तविक स्वरों को अपने अधीन कर रखा है। प्रवीन = (वीणा बजाने में) निपुण।

[३६९] जात० = घनी बरौनियों में नए स्नेह का ऐसा बोझ है कि आप इस बोझ से मेरे हृदय की ओर धँसते ही जा रहे हैं। रोल० = तांबूल के अमृत का प्रवाह दिखाई देने लगता है। अँकोर = भेंट। प्रान० = आप जहाँ से आ रहे हैं वहीं प्राण भेंट कर आए हैं। तिन० = रूपवान् को नजर न लगे इस

भोर की आवनि प्रान अँकोर किये।तित ही चलि आए जही के।
डारियै जू तिन तोरि कै लालन और दिनान तें लागत नीके ॥३९९॥
नैन किये नरजी दिनरैन रती-बल कंचन-रूपहि तोलैं।
बारह बानि बनी ठनी षोड़स प्यारी के प्रेम छकी नित डोलैं।
श्रीवन-रानी के छत्र की छाँह करें सुख-वारिधि माहिं कलोलैं।
चाड़ न काहू की, लाड़-लड़ी हम गोरी गरूर-भरी नहिं बोलैं ॥४००॥
पूरन चंद के चूरन कों तट-धूरि हँसै सु कपूर किती पति।
जौ मघवा-मनि को सतु सोधियै तौऽब कहा परसै पय की मति।
स्याम के संग पगी सब अंग, लसै रस-रंग तरंगनि की गति।
आनँद-मंजन आँखिन अंजन होत लखें-सविता-दुहिता अति ॥४०१॥
गोपी—
छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत का पै अरैल भए हौ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत बैन रचावत मैन-तए हौ।

लिए तिनका तोड़कर टुटका करते ह। डारियै० = आप के रूप पर मैं तिनका तोड़ती हूँ, आप बड़े रूपवान् लगते हैं (व्यंग्य)।

[४००] नरजी = नाप-तोल करनेवाला। सूरदास ने 'नरजना' का प्रयोग नापने के अर्थ में किया है—

जा दिन तैं तुम प्रीति करी हो घटति न, बढति तूल 'लेहु नरजी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिन तन भयौ ब्यौंत, बिरह भयौ दरजी।
—भ्रमरगीत-सार, ३५६।

रती = रति (प्रेम) ; घुँघची जिसकी तौल माशे के अष्टमांश (रत्ती) भर होती है। कंचन० = रूप (सौंदर्य) रूपी सोना। बारह० = बारहबानी सोना, कुंदन ; बारह आभूषण। षोड़स = सोलह शृंगार। श्रीबन = एक वन। श्रीवन० = श्रीव १ की रानी, राधा। चाड़ = उत्कट लालसा।

[४०१] चूरन = चूर्ण। पति = प्रतिष्ठा। मघवा० = इंद्रमणि, इंद्र-नीलमणि, नीलम। सतु = सत्त्व। जौ० = यदि नीलम का सत्त्व सोधकर (निकालकर) एकत्र किया जाय। पय = जल। मति = समता। आनँद० = आनंद में स्नान करने की स्थिति। सबिता० = सूर्य की पुत्री, यमुना।

लाज अँचै विन काज खगौ तिनहीं सौं पगौ जिन रंग-रए हौ।
ऐंड़ सवै निकसैगी अवै घनआनँद आनि कहा उनए हौ ॥४०२॥

श्रीकृष्ण—

हैं उनए सु नए न कछू, उघटै कत ऐंड़ अमैड़ अमानी।
वैन वड़े वड़े नैनन के वल वोलति क्यौं है इती इतरानी।
दान दियैं विन जान न पाइहै आइहै जौ चलि खोरि बिरानी।
आगें अछूती गईं सु गईं घनआनँद आज भई मनमानी ॥४०३॥

गोपी—

जाय करौ उहि माय पै लाड़ वढ़ाय वढ़ाय किये इतने जिन।
भीत की दौरनि खोरनि है सठता हठ ओरनि सौं समझै बिन।
दान न कान सुन्यौ कवहूँ कहूँ काहे को कौन दयौ सु लयौ किन।
टोड़िक ह्वै घनआनँद डाँटत काटत क्यौं नहीं दीनता सौं दिन ॥४०४॥

श्रीकृष्ण—

देहैगी दान जु ऐहै इतै, नहीं, पैहै अवै सु किये को सवै फल।
वावा दुहाई, सुहाई कहौ जिय, जानि कै मानि छुटै न कियैं छल।

---

[४०२] अरैल = अड़नेवाले। मैन० = कामतप्त, काम से तपे। लाज० = लज्जा को पीकर। खगौ = अड़ते हो। पगौ = लगो। रत = अनुरक्त। ऐंड़ = शान, शेखी।

[४०३] उनए = छाए (छंद ४०२ के 'घनआनँद आनि कहा उनए हो' के सिलसिले में कथित)। उघटै० = मेरी ऐंड़ को क्यों उघटती है, मेरी ऐंड़ पर क्या ताना मारती है। अमैड़ = मर्यादा को न माननेवाला। अमानी = किसी की मान-प्रतिष्ठा का विचार न करनेवाला। बैन० = बड़ी बड़ी बातें। नैननि० = बड़े नेत्र होने के कारण बातें भी बड़ी बड़ी करने लगी। दान = कर। खोरि = गली। बिरानी = पराई। अछूती = कोरी, विना कर दिए। मन० = मनचाही।

[४०४] लाड़ = दुलार। भीत० = गली में भीत की दौर करना, गली में छेंकना। हठ० = हठ के कारण। समझै० = बिना समझे। टोड़िक = (तुंदिक) पेटवाला, पेटू।

एकहि बोल, दै जाहु चली भगरो सगरो मिटि बात परै सल।
नावँ पर्‌यौ अबला घनआनँद ऐंठति ग्वैंठति भौंह किते बल ॥४०५॥

गोपी—

जीभ सँभारि न बोलत हौ, मुँह चाहत क्यौं अब खायौ थपेरैं।
ज्यौं ज्यौं करी कछु कानि-कनौड़ त्यौं मूड़ चढ़े बढ़े आवत नेरैं।
खाय कहा फल माय जने, जिय देखौ विचारि पिता तन तेरैं।
कंज कनेरहि फेर बड़ो घनआनँद न्यारे रहौ कहौं टेरैं ॥४०६॥

श्रीकृष्ण—

लेहु भया! गहि सीसन तें दधि की मटुकी अब कानि करौ कित।
जैसे सों तैसे भए ही बनै घनआनँद धाय धरौ जित की तित।
एकहि एक वरावरि जाहु, करौ अपने अपने चित को हित।
फेरियै क्यौं दुहूँ हाथ सकेरियै, जौ बिधिना घर बैठें दयौ बित ॥४०७॥

गोपी—

गोद भरै, बित धाय कै जाय धरौ गहि मोद सों माय के आगै।
पेट परे को लखै फल ज्यौं, निपजे हौ सपूत सुभागनि जागै।

---

[४०५] नहीं = नहीं तो। सुहाई = रुचनेवाली। जानि० = जान-बूझ कर तो हम तुम्हारे छल करने से अपना मान छोड़ न देंगे। एकहि० = सौ बात की एक बात कि दान (कर) देकर चली जाओ। बात० = बात में परत पड़े, बात दबे, समाप्त हो। नावँ० = नाम तो है 'अबला' (बलहीन) पर देखो तो भौंहों में कितने बल (टेढ़ेपन) पड़ रहे हैं। ऐंठति० = टेढ़ी-मेढ़ी होती है।

[४०६] थपेर = थप्पड़। करी = की। कानि० = मर्यादा और एहसान का विचार। नेरैं = निकट। खाइ० = न जाने कौन सा फल खाकर तुम्हें माता ने उत्पन्न किया कि तुम ऐसे नटखट पैदा हुए। पिता० = अपने पिता की ओर देखो (कौन बड़े धन्ना सेठ हैं)। फेर = अर्थात् अंतर। न्यारे = दूर।

[४०७] भया = हे भाई, हे मित्र। कानि० = प्रतिष्ठा का विचार क्यों करते हो। एक० = एक के साथ एक ग्वाल भिड़ जाय। हित = चाही बात। सकेरियै = संचित करो। बित = धन।

बाँटिहै बोलि बधाई कमाई की जाति मैं जातें महापति पागै।
बास दियें को यहै फल है घनआनँद जौ छिन दोष न लागै ॥४०८॥

मधुमंगल—

नंदलला रससागर सों ललिता ! रिस की सलिता न बढ़ैयै।
नागरि आगरि हौ बहु भाँति तुम्हैं अब कौन सी बात पढ़ैयै।
चोखन तोष नहीं उपजै घनआनँद क्यौं गुन दोष कढ़ैयै।
नेकु ढरें सुधरैं सब काज, अकाज इतौ अपलोक चढ़ैयै ॥४०९॥

ललिता—

सुनि रे मधुमंगल ! दान-कथा सु जथारुचि होत बृथा हठि है।
कर ओड़ि,दिखाय दया,मृदु ह्वै चलियै बहु भाँति बिनै करि है।
घनआनँद आठ अमेठ कियें कहियै कहा पै अब पैयति है।
रिझवारिनि पै गुन गाय रिझावहु देहिं ललो की निछावरि है ॥४१०॥

सखा—

स्याम सुजान सबै गुन-खानि बजावत बैन महा सुर साँचनि।
अंग त्रिभंग, अनंग-भरे दृग भौंह नचाय नचावत नाँचनि।
कीरतिदा-कुलमंडन ज्यौं निरखै भरि नैन बढ़ै सुख-माँचनि।
दान हँसें चुकिहै घनआनँद रीझन ही रुकिहैं हित-आँचनि ॥४११॥

---

[४०८] बित = धन। बाँटिहै० = तुम्हारी कमाई की वह बधाई बाँटेगी। पति = प्रतिष्ठा। बास० = बसाने का।

[४०९] सलिता = नदी। आगरि = चतुर। चोखन = नैश से। तोष० = संतोष नहीं होता। गुन० = गुण-दोष जीभ पर लाने से क्या लाभ। नेकु० = थोड़ा सा नम्र पड़ने से। अकाज = व्यर्थ ही इतना दोष लगाने से क्या लाभ।

[४१०] मधुमंगल = कोई कृष्णसखा। ओड़ि = फैलाकर। अमेठ० = टेढ़ा करने से। देहिं० = यदि तुम रीझनेवाली राधा के सामने उनके गुण गाओ और उन्हें प्रसन्न करो तो उनकी निछावर में हम गोरस दे सकती हैं।

[४११] कीरतिदा = यशोदा। ज्यौं = ज्यों ही। बढ़ै० = अत्यंत सुख मिले। दान० = दान हँस देने से चुक जायगा। घन० = आनंद के बादल। रीझ० = रीझने से प्रेम की आग शांत होगी।

सखी—

आवौ सखी चलि कुंज मैं बैठि लखैं घनआनँद की सुघराई।
पैठन देहिं न एक सखै, अकिले इन्हैं छेकि करैं मन भाई।
भावती टेक रही बहु भाँति, किये न बनै, अति ही कठिनाई।
लेति हौं राधे बलाय, कह्यौ करि, आज मनौ इतना हम पाई ॥४१२॥
राजदुलार-भरी इकसार, सुभाय मथैं मन डारति पी को।
कुंज चली सुखपुंज अली-सँग भाल बिराजत लाज की टीको।
लोचन कोरनि छोरनि छ्वै मुसक्यानि मैं ह्वै दरसै हित ही को।
बोलनि बापुरी डारियै वारि लखैं घनआनँद रूप लली को ॥४१३॥
रंग रह्यौ सु न जात कह्यौ उमह्यौ सुखसागर कुंज मैं आएँ।
केलि पर्‌यौ रस को झगरो अति ही अगरो निबरै न चुकाएँ।
काहू सम्हारि रही न भटू तनकौ तन मैं घनआनँद छाएँ।
प्रेम पगे रिझवारिन की तहाँ रीझि कै रीझहि लेत बलाएँ ॥४१४॥
आँखि ही मेरी पै चेरी भई लखि फेरी फिरै न सुजान की घेरी।
रूप-छकी, तित ही बिथकी, अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी।
प्रान लै साथ परी पर-हाथ बिकानि की बानि पै कानि बखेरी।
पायनि पारि लई घनआनँद चायनि बावरी प्रीति की बेरी ॥४१५॥
रूपनिधान सुजान लखैं बिन, आँखिन दीठि की पीठि दई है।
ऊखिल ज्यौं खरकै पुतरीन मैं, सूल की मूल सलाक भई है।

---

[४१२] सुघराई = चतुरता। भावती = मनचाही। रही = मन मैं ही रह गई। लेति० = तेरी बलैया लेती हूँ।

[४१३] इकसार = एक ढंग से ही, समान रूप से। ही० = हृदय का।

[४१४] अगरो = अधिक। निबरै० = झगड़ा बंद करने पर भी रस-धारा समाप्त नहीं होती। रीझि० = स्वयं रीझ को भी रीझकर।

[४१५] अनेरी = विलक्षण। नेरी = निकटवालों को भी। चायनि = चाव से। बेरी = बेड़ी।

[४१६] आँखिन० = आँखों ने दृष्टि को ही पीठ दे दी है, दृष्टि ही त्याग दी है। ऊखिल० = अपरिचित ; अप्रिय। सलाक = शलाका (अंजन की)।

ठौर कहूँ न लहै ठहरानि कौं, मूँदैं महा अकुलानिमई है।
बूड़त ज्यौं घनआनँद सोच, दई बिधि ब्याधि असाधि नई है ॥४१६॥
रसमूरति स्याम सुजान लखैं जिय जो गति होति सु कासों कहौं।
चित चुंबक लोह लौं चायनि च्वै चुहटै उहटै नहिं जेतौ गहौं।
बिन काज या लाज-समाज के साजनि क्यौं घनआनँद देह दहौं।
उर आवति यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥४१७॥
मुख हेरि न हेरति रंक मयंक सु पंकज छीवति हाथ न हौं।
जिहिं बानक आयौ अचानक ही घनआनँद बात सु कासों कहौं।
अब तौ सपने-निधि लौं न लहौं अपने चित चेटक आँच दहौं।
उर आवति यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥४१८॥
रस-सागर नागर स्याम लखैं अभिलाषनि धार-मझार बहौं।
सु न सूझत धीर को तीर कहूँ पचि हारि कै लाज-सिवार गहौं।
घनआनँद एक अचंभो बड़ो गुन हाथ हू बूड़त कासों कहौं।
उर आवति यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥४१९॥
सजनी रजनी-दिन देखें बिना दुख पागि उदेग की आगि दहौं।
अँसुवा हिय पै घिय-धार परै उठि स्वास झरै सुठि आस गहौं।

बूड़त० = चित्त सोच में डूब रहा है। दई० = ब्रह्मा ने असाध्य और नई व्याधि उत्पन्न कर दी है।

[४१७] चुहटै = चिपकता है, लिपटता है। उहटै० = हटता नहीं। जेतौ = चाहे जितना पकड़कर खींचूँ (हटाऊँ)। छबि = उनकी छवि की छाया होकर।

[४१८] सु० = उनके हाथों को छूकर कमल को हाथ से नहीं छूती, कमल में वैसी कोमलता नहीं। बानक = छटा। चेटक = जादू, माया।

[४१९] गुन० = डोर के हाथ में होते हुए भी। 'गुण' का दूसरा अर्थ है 'विशेषता'।

[४२०] घिय० = घी की धारा की भाँति। अर्थात् आँसू गिरने से आग बढ़ती है, बुझती नहीं (मिलाइए-आधुनिक नूतन काव्यधारा की इन पंक्तियों से—शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग-जल का। यह व्यर्थ स्वास चल

घनआनँद नीर समीर बिना बुझिबे को न और उपाय लहौं।
उर आवति यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥४२०॥
मन पारद कूप लौं रूप चहैं उमहै सु रहै नहिं जेतौ गहौं।
गुन गाड़नि जाय परै अकुलाय मनोज के ओजनि सूल सहौं।
घनआनँद चेटक-घुम मैं प्रान घुटैं न छुटैं गति कासौं कहौं।
उर आवति यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥४२१॥

कवित्त

तरसि तरसि प्रान जानमनि दरस कौं,
उमहि उमहि आनि आँखिनि बसत है।
बिषम बिरह के बिसिष हियैं घायल ह्वै,
गहवरि घूमि घूमि सोचनि ससत है।
सुमिरि सुमिरि घनआनँद मिलन-सुख,
कटनि सौं आसा-पट कटि लै कसत है।

चल कर करती है काल अनिल का—'आँसू')। समीर = वायु, आँधी से युक्त; समाचार।

[४२१] पारद = पारा। कूप = कुप्पी। पारे को उड़ाने के लिए काच की शीशी रखते हैं उसे कूप, कूपी या कूपिका कहते हैं। आँच से पारा उड़कर ऊपर जा चिपकता है। यहाँ इसी क्रिया को लक्ष्य करके मन के प्रिय के पास चले जाने की बात कही गई है।

(१) विश्वामित्र कपाले वा काचकूप्यामथापि वा।
सूते जलं विनिक्षिप्य तत्र तन्मज्जनावधि ॥—रसेंद्रसारसंग्रह, १-४५

(२) जलसैन्धवसूतपूरितां क्षितिगर्त्ते खलु काचकूपिकाम्।
विनिधाय दिनत्रयं ततो गतषाण्ढ्यः सबलो रसो भवेत् ॥
—रसतरंगिणी, ५-८४

रूप = सौंदर्य ; चाँदी। गाड़० = गड्ढा। चेटक = जादू।

[४२२] ससत है० = साँस नहीं ले पाता है। कटनि = काट ; आसक्ति। गसत० = फँसता है।

निसिदिन लालसा लपेटे ही रहत लोभी,
मुरझि अनोखी उरझनि मैं गसत है ॥४२२॥

मेरी मति बावरी ह्वै जाय जानराय प्यारे,
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय।
देखन के चाय प्रान आँखिन मैं झाँकैं आय,
राखौं परचाय पै निगोड़े चलैं धाय धाय।
बिरह बिषाद छाय आँसुन को झर लाय,
मारै मुरझाय मैन तावरेन ताय ताय।
ऐसैं घनआनँद बिहाय न बसाय दाय,
धीरज बिलाय बिललाय कहौं हाय हाय ॥४२३॥

ललित तमालनि सौं बलित नवेली बेलि,
केलि-रस झेलि हँसि लह्यौ सुखसार है।
मधुर बिनोद स्वेद*-जलकन मकरंद,
मलय समीर सोई मोद-उदगार है।
बन की बनक देखि कठिन बनी है आनि,
बनमाली दूर आली सुनै को पुकार है।
बिन घनआनँद सुजान अंग पीरे परि,
फूलत बसंत हमैं होत पतझार है ॥४२४॥

रूपनिधान सुजान सखी जब तैं इन नैननि नेकु† निहारे।
दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे।

---

[४२३] राखौं = बहलाकर रखता हूँ। निगोड़े = बुरे (गाली); जिन्हें पैर न हो। तावरेन = विरहाग्निरूपी ज्वर की मूर्छा में व्याकुल विरहियों को जला-जलाकर। न बसाय० = कोई घात नहीं लगती।

[४२४] बलित = लिपटी। मोद = आनंद; सुगंध। पतझार = पतझड़; प्रतिष्ठा की हानि।

[४२५] तारे = आँख की पुतली। तारे = ताले।

* स्रम। † नीके।

एक अचंभो भयो घनआनँद हैं नित ही पल-पाट उघारे।
टारे टरैं नहीँ तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे ॥४२५॥

मेरोई जीव जौ मारत मोहिँ तौ प्यारे कहा तुम सौँ कहनो है।
आँखिन हूँ पहचान तजी कछु ऐसो ही भागनि को लहनो है।
आस तिहारियै हौँ घनआनँद कैसैं उदास भएँ रहनो है।
जान ह्वै होत इते पै अजान जौ तौ बिन पावक ही दहनो है ॥४२६॥

आस लगाय उदास भए सु करी जग मैं उपहास-कहानी।
एक बिसास की टेक गहाय कहा बस जौ उर और ही ठानी।
एहो सुजान सनेही कहाय दई कित बोरत हौ बिन पानी।
यौँ उघरे घनआनँद छाय सु हाय परी पहचानि पुरानी ॥४२७॥

अँगुरीन लौँ जाय भुलाय तहीँ फिरि आय लुभाय रहै तरवा।
चपि चायनि चूर ह्वै एड़िनि ह्वौ धपि धाय छकै छबि छाय छवा।
घनआनँद यौँ रस-रीझनि भीजि कहूँ बिसराम विलोक्यौ न वा।
अलबेली सुजान के पायनि-पानि पर्‌यौ न टर्‌यौ मन मेरो झवा ॥४२८॥

गुन बाँधि लियौ हिय हेरत ही, फिरि खेल कियौ अति ही उरझै।
गसिगौ कसि प्रीति के फंदनि मैं घनआनँद छंदनि क्यौं सुरझै।
सुधि लेत न भूलि हू ताकी सुजान सु जानि सकौँ न दुरी गुरझै।
अब याही परेखैं उदेग-भर्‌यौ दुख-ज्वाल जर्‌यौ जुरझै मुरझै ॥४२९॥

---

[४२६] जान = सुजान ; ज्ञानवान्।

[४२७] उघरे = प्रकट हुए ; हट गए।

[४२८] धपि = शीघ्रता से। छवा = एँड़ी के पीछे का भाग। झवा = झाँवा, जली हुई ईंट, जिससे रगड़कर पैर साफ किया जाता है। पायनि० = पैर के हाथ पड़ गया, उनके वश मैं हो गया।

[४२९] उरझै = उलझनवाला। गसिगौ = पकड़ लिया गया। छंदनि० = छल-कपट से। गुरझै = गाँठ। परेखैं = पछतावे से जुरझै = तपता है।

कवित्त

निरखि सुजान प्यारे रावरो रुचिर रूप,
बावरो भयौ है मन मेरो न सिखौ सुनै।
मति अति छाकी गति थाकी रति-रस भीजि,
रीझ की उझलि घनआनँद रह्यौ उनै।
नैन बैन चित-चैन है न मेरे बस, मेरी
दसा अचिरज देखौ बूड़ति गहैं गुनै।
नेह लाय कैसैं अब रूखे ह्वजियत हाय,
चंद ही के चाय ज्वै चकोर चिनगी चुनै ॥४३०॥

काहू कंजमुखी के मधुप ह्वै लुभाने, जानैं
फूले रस भूले घनआनँद अनत ही।
कैसैं सुधि आवै बिसरे हू हो हमारी उन्हैं,
नए नेह पाग्यौ अनुराग्यौ है मन तहीं।
कहा करौं जी तें निकसति न निगोड़ी आस,
कौनै समझी ही ऐसी बनिहै बनत ही।
सुंदर सुजान बिन दिन इन तम सम,
बीतै तमी तारनि कौं तारनि गनत ही ॥४३१॥

सवैया

जा मुख हाँसी लसी घनआनँद,कैसें सुहाति बसी तहाँ नासी।
जा हिय तें हतियै नहिँ तू हँसि बोलनि की कत कीजत हाँसी।
पोखि रसै जिय सोखत क्यौं, गुन बाँधि हू डारत दोष की फाँसी।
हाहा सुजान अचंभो अजान ज्यौं भेदि कै गाँसहिं बेधत गाँसी ॥४३२॥

---

[४३०] न सिखौ० = सीख (शिक्षा) भी नहीं सुनता। उझलि = उलेड़ना। रह्यौ० = छा रहा है। गहैं० = गुण (डोर ; विशेषता) को पकड़े हुए भी डूब रही हूँ।

[४३१] ऐसी० = ऐसी बुरी स्थिति आ जायगी। तमी = रात्रि। तारनि० = तारों को। तारनि = आँखों की पुतलियों से।

[४३२] नासी = विषाद, दुःख। हतियै० = तू दूर नहीं हुआ। भेदि कै =

आड़ न मानति चाड़-भरी उघरी ही रहै अति लाग-लपेटी।
ढीठि भई मिलि ईठि सुजान, न देहि क्यौं पीठि जु दीठि सहेटी।
मेरी ह्वै मोहिँ कुचैन करै घनआनँद रोगिनि लौं रहै लेटी।
ओछी बड़ी इतराति लगी मुँह, नेकौ अघाति न आँखि निपेटी ॥४३३॥

चाह-बढ्यौ चित चाक-चढ्यौ सो फिरै तित ही इत नेकु न धीजै।
नैन थकै छबि-पान छकै घनआनँद लाज त्यौं रीझनि भीजै।
मोह मैं आवरी ह्वै बुधि बावरी सीख सुनै न दसा-दुख छीजै।
देह दहै न रहै सुधि गेह की भूलि हू नेह को नावँ न लीजै ॥४३४॥

रूप लुभाय लगी तब तौ अब लागति नाहिँ सुभाय निमेखै।
जो रस-रंग अभंग लह्यौ सु रह्यौ नहीँ पेखियै लाखनि लेखै।
हौ घनआनँद एहो सुजान तऊ ये दहै दुखदाई परेखै।
आँखिन आपनी आँखि न देख्यौ कियौ अपनो सपनेऊ न देखै ॥४३५॥

पीर की भीर अधीर भईं अखियाँ दुखिया उमगीँ झरना लौँ।
रोकि रही डर-मेँड बही इन टेक यही जु गही सु दही हौँ।

काटकर। गाँस = फंदा। गाँसी = हथियार की नोक। भेदि कै० = फंदा काटकर फिर भाले की नोक चुभोते हैं।

[४३३] आड़ = परदा; ओट। लाग = प्रीति। ईठि = इष्ट, प्रिय। सहेटी = सहेट मेँ जानेवाली, संकेतस्थल से चाव रखनेवाली, प्रिय से मिलनेवाली। निपेटी = अत्यंत पेटू, भुक्खड़।

[४३४] इत० = इधर तो जरा भी नहीँ आता। चाक = चक्र। धीजना = मन मेँ लाना अर्थात् आना। इत० = इधर आने की बात ही नहीँ सोचता। आवरी = व्याकुल। छीजै = घटती है (दुःख से)।

[४३५] आँखिन० = अपनी आँखोँ से अपनी ही आँखोँ को तो देख लिया (अपनी आँखोँ से अपनी ही आँखोँ का देखना असंभव है, फिर भी वह असंभव कार्य कर लिया), पर अपनी करनी स्वप्न मेँ भी नहीँ देखते।

[४३६] भीर = भीड़; अधिकता। डर;मेँड़ = भय की मेँड़ बह गई, लोकलज्जा का भय नहीँ रहा। कहा० = किस घात से।

भीजि बरै घिय-धार परैं हिय आँसुनि यौं पजरै बिरहा दौं।
आनँद के घन मीत सुजान ह्वै प्रीति मैं कीनी अनीति कहा गौं॥४३६॥

फैलि रही घर अंबर पूरि मरीचिनि-बीचिनि-संग हिलोरति।
भौंर-भरी उफनात खरी, सु उपाय की नाव तरेरनि तोरति।
क्यौं बचियै भजि हूँ घनआनँद बैठि रहैं घर पैठि ढँढोरति।
जोन्ह प्रलै के पयोनिधि लौं बढ़ि बैरिनि आज वियोगिनि बोरति॥४३७॥

प्रान-पखेरू परे तरफैं लखि रूप-चुगौ जु फँदे गुन-गाथन।
क्यौं हतियै हित पालि सुजान दया बिन ब्याध-वियोग के हाथन।
सालत बान समान हियैं सु लहे घनआनँद जे सुख साथन।
देहु दिखाय दई मुखचंद लग्यौ अब औधि-दिवाकर आथन॥४३८॥

कवित्त

जल बूड़ी जरैं डीठि पाई हू न सूझि परै,
अमी पियें मरैं मोहिं अचिरज अति है।
चीर सौं न ढकैं, बानी बिन बिथा बकैं,
दौरि परैं न निगोड़ी थकैं, बड़ी भूतागति है।
लगे तारे खुलैं, आखैं तारी त्यौं न पगैं, पिय
नींद-भरी जगैं इन्हैं अनोखियै रति है।
गुन बँधैं कुल छूटै आपौ दै उदेग लूटै,
उत जुरै इत टूटै आनँद विपति है॥४३९॥

अंजन गंजत दीठि, मंजन मलीन करै,
रंजन-समाज-साज सजै उर-पीर को।

---

[४३७] धर = पृथ्वी। अंबर = आकाश। मरीचि = किरण। बीचि = लहर। तरेर = तोड़, धारा का वेग। भजि हूँ = भागकर भी। ढँढोरना = तिल तिल ढूँढना, ध्यान से ढूँढ़ना।

[४३८] चुगौ = चारा। गुन = गुण; डोर। हतियै = मारते हैं। औधि० = अवधिरूपी सूर्य। आथन० = डूबने लगा।

[४३९] अमी = अमृत। तारे = ताले; पुतली। तारी = ताली; ध्यान। चीर० = वस्त्र से परदा नहीं होता। भूतागति = विलक्षण स्थिति।

भूषन दगत, गुन दूषन लगत गात,
पूषन मुकुर अंग सोखै संग चीर को।
जीबो बिष-ज्वाल जीतै, बीतै घनआनँद यौं,
बन भौन कौन है धरैया अब धीर को।
रंग-रस-बरस सुजान के दरस बिन,
तीर तैं सरस बहै परस समीर को ॥४४०॥
बहुत दिनान के अवधि-आस-पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कौं।
कहि कहि आवन सँदेसो मनभावन को,
गहि गहि राखत हैं दै दै सनमान कौं।
झूठी बतियानि की पत्यानि तैं उदास ह्वै कै,
अब न घिरत घनआनँद निदान कौं।
अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान कौ ॥४४१॥

सवैया

जोरि कै कोरिक प्राननि भावते संग लिये अँखियानि मैं आवत।
भीजे कटाछिन सौं घनआनँद छाय महारस कौं बरसावत।

---

[४४०] अंजन० = नेत्रों में अंजन लगाने से दृष्टि नष्ट हो जाती है। मंजन = मार्जन, स्नान। रंजन = मनोरंजन। भूषन० = गहने शरीर को दागते हैं। गुन० = गुण दोष से लगते हैं। पूषन० = दर्पण सूर्य हो रहा है, उसकी ओर देखा नहीं जाता। अंग० = वस्त्र का संग शरीर को सोख रहा है, वस्त्र से शरीर और भी दुर्बल होता जाता है। जीबो = जीने ने विष की ज्वाला को भी जीत लिया है। जीना विष से भी भयंकर हो गया है। बीतै = ऐसी बीत रही है। रंग० = आनंद और हर्ष की वृष्टि करनेवाले। सरस = बढ़कर।

[४४१] दिनान के...परे० = अवधि की आशा के पाश में बहुत दिनों से पड़े हैं। खरे० = अत्यंत हड़बड़ी से। निदान कौं = अंत में। अधर = होंठों पर आ लगे हैं।

ओट भएँ फिरि या जिय की गति जानत जीवनि ह्वै जु जनावत।
मीत सुजान अनूठियै रीति जिवाय कै मारत मारि जिवावत ॥४४२॥
लाखनि भाँति भरे अभिलाषनि कै पल पाँवड़े पंथ निहारैं।
लाड़ली आवनि लालसा लागि न लागत हैं मन मैं पन धारैं।
यौं रस-भीजे रहैं घनआनँद रीझे सुजान सरूप तिहारैं।
चायनि बावरे नैन कबै अँसुवान सौं रावरे पाय पखारैं ॥४४३॥
सोवत भाग जगे सजनी दिन कोटिक या रजनी पर वारे।
नेह-निधान सुजान सजीवन औचक ही उर-बीच पधारे।
सौतिन ते पिय पाय इकौसैं भरे भुज सोच-सकोच निवारे।
बैरिनि दीठि जरौ घनआनँद यौं जिय लै पल-पाट उघारे ॥४४४॥
ह्वै निसवादिल जात रसौ मन तेरे सुभाव-मिठासहि पागैं।
आनँद जान कहौ तुव आनन लागि न आन सौं लायन लागैं।
चैन मैं सैन करैं सब ओर तें भावते भाग जौ तो मिलि जागैं।
रंग रचैं सुठि संग सचैं घनआनँद अंगन क्यौं सुख त्यागैं ॥४४५॥

कवित्त

दरसन-लालसा-ललक-छलकनि पूरि,
पलकनि लागे लगि आवनि अरबरी।
सुंदर सुजान मुखचंद को उदै बिलोकें,
लोचन-चकोर सेवैं आरति-परब री।
अंग-अंग-अंतर-उमंग-रंग भरि भारी,
बाढ़ी चोप चुहल की हिय मैं हरबरी।
बूड़ि बूड़ि तरैं औधि-थाह घनआनँद यौं,
जीव सूक्यौ जाय ज्यौं ज्यौं भीजत सरबरी ॥४४६॥

---

[४४२] भीजे = रससिक्त।

[४४४] इकौसैं = अकेले। पल० = पलकरूप किवाड़।

[४४५] निसवादिल = स्वादहीन, नीरस। ह्वै० = रस भी नीरस (फीका) हो जाता है। चैन० = सब प्रकार से आराम की नींद सोता है। सुठि = सुंदर।

[४४६] अरबरी = उत्कंठा। आरति = लालसा। परब = पर्व, पूर्णिमा;

देखें अनदेखनि-प्रतीति पेखियति प्यारे,
नीठि न परत जानि दीठि किधौं छल है।
दीपति-समीप की बिछोह माहिँ पोहियति,
आरसी-दरस लौं परस ध्यान जल है।
पटी❀ अटपटी-दसा सोच-चटपटी-बीच,
बूड़त बिचारो जीव थाह क्यौं हूँ न लहै।
कहा कहौं आनँद के घन जानराय हौ जू,
मिले हूँ तिहारे अनमिले की कुसल है ॥४४७॥

तू ही गति मेरे, मति नौछावरि करी, तेरे
रूप हेरे चोप-कूप गिरी लेजु लाज की।
सुनिहौ सुजान आन तेरीयै, पखेरू-प्रान
परे प्रीति-सिंधु आस तो हित जहाज की।
कीजै मनभाई इती कहि मैं जताई, तेरे
हाथ ही बड़ाई घनआनँद सु काज की।
हाहा दीन जानि, याकी बीनतीयै लीजै मानि,
दीजै आनि औषद बियोग-रोगराज की ॥४४८॥

सब सौं चिन्हारिहि बिसारि पल टारैं नाहिँ,
इक टक जोहिबे की जक जागियै रहै।

अवसर, समय। हरबरी = हड़बड़ी। सरबरी = शर्वरी, रात्रि। ज्यौं० = ज्यौं ज्यौं रात बीतती जाती है।

[४४७] दीठि = प्रत्यक्ष। छल = माया, जादू, भ्रांति। आरसी = दर्पण। अनमिले० = अमिलाप का ही कल्याण होता है, अमिलाप ही बना रहता है।

[४४८] लेजु = रस्सी। हित० = हित (अपनायत) रूपी जहाज को पा जाने की आशा से। बीनतीयै = केवल विनय ही।

❀ निपट।

देखि देखि सुख भोय हँसि परैं रोय रोय,
चौंकैं चकि चाहनि मैं चिंता पागियै रहै।
तोरि लाज-साँकरैं, घिरै हैं सोभा-साँकरैं सु,
क्यौं हूँ न निकास आस-पास खागियै रहै।
ऐसी कछू बानि चाह-बावरे दगनि आली,
दरस-मुकुंद-लालसाई लागियै रहै ॥४४९॥

सपने की संपति लौं भई है मलोले-मई,
मीत को मिलन-मोद जानौं न कहाँ गयौ।
जकी ह्वै थकी है जड़ताई जागि पागि बीर,
धीर कैसैं धरौं मन सो धन झराँ गयौ।
हाय हाय अंगन की हीनता कहाँ लौं कहौं,
गए न लगेई संग रंग हू जहाँ गयौ।
राखे आप ऊपर सुजान घनआनँद पै,
पह के फटत क्यौं रे हिये फटि नाँ गयौ ॥४५०॥

हित कै हँकारौ तौ हुलासनि सहित धावै,
अनखि बिडारौ तौ बिचारो न कछू कहै।
पाल्यौ प्यार को तिहारो नीके तुम ही निहारौ,
हाहा जनि टारौ याहि द्वारौ दूसरौ न है।
आनँद के घन हौ सुजान आन दियें कहौं,
मान दै न कीजे मान दान दीजियै यहै।
देखें रूप रावरो भयौ है जीव बावरो,
उमंगनि उतावरो ह्वै अंगनि पर्यौ दहै ॥४५१॥

---

[४४९] जक = धुन। साँकरैं = शृंखलाएँ, बंधन। साँकरैं = संकट मैं। खागियै० = आशा का पाश गले मैं पड़ा ही रहता है।

[४५०] लौं = पाने के लिए। मलोले० = कचोट से युक्त। झराँ० = साफ हो गया, चोरी चला गया। पह = पौ, प्रातःकाल पूर्व दिशा मैं सूर्य के उदय के पूर्व प्रकाश का उद्भास होना।

[४५१] आन = शपथ। मान दै न० = संमान देकर (अपनाकर)

बिरह-दवागिनि उठी है तन-बन-बीच,
जतन सलिल के सु कैसें नीचियै परै।
अंतर-पुढ़ाई फटै, चटकत साँस-बाँस,
आस-लाँबी-लता हू उदेग-झर सों जरै।
दुख-धूम-धूँधरि मैं घिरे घुटैं प्रान-खग,
अब लौं बचे हैं जौ सुजान तनकौ ढरै।
बरसि दरस घनआनँद अरस छाँड़ि,
सरस परस दै दहनि सब ही दरै ॥४५२॥

रावरे गुननि बाँधि लियौ हियौ जान प्यारे,
इते पै अचंभो छोरि दीनी जु सुरति है।
उघरि नचाय आपु चाय सैं रचाय हाय,
क्यौं करि बचाय दीठि यौं करि दुरति है।
तुम हूँ तें न्यारी है तिहारी प्रीति-रीति जानी,
ढीले हू परे तें गरे* गाँठि सी घुरति है।
कैसें घनआनँद अदोषनि लगैयै खोरि,
लेखनि लिखार की परेखनि मुरति है ॥४५३॥

सवैया

आपु न अंगन संग को रंग, भर्यौ रिस आनि कै अंग पजारत।
रावरे चैन को ऐन हियो है सु रैन-दिना यह मैन उजारत।

मान न कीजिए (रूठिए मत) यही दान चाहती हूँ, यही माँगती हूँ।

[४५२] जतन० = जल के उपाय से, जल द्वारा। नीचियै० = मंद पड़े। अंतर० = हृदय की दृढ़ता दूर होती जा रही है। साँस० = श्वासरूपी बाँस। अरस = (अलस) आलस्य। दरै = नष्ट कर दे।

[४५३] जानी = समझी। ढीले० = उदासीन। गाँठि० = गाँठ कस जाती है। परेखा = पश्चात्ताप।

[४५४] आपु न० = उस (काम) के पास आपके अंगों की सी बनावट

* पै हियें।

और अनीत कहा लौं कहौं घनआनँद जो कछू आपदा पारत।
कैसैं सुहाति सुजान तुम्हैं हितू मानि दई कोऊ ऐसैं बिसारत ॥४५४॥

हित-भूलनि आवति है सुधि क्यौं हूँ, सु यौं हूँ हमैं सुधि कीजत है।
चित-भूल तौ भूलत नाहिं सुजान जु चंचल ज्यौ कछु धीजत है।
दढ़ आस की पासनि कंठ तें फेरि कै घेरि उसासनि लीजत है।
अब देखियै कौ लौं घिरै घनआनँद आवको दाव सो दीजत है ॥४५५॥

मुख-चाहनि-चाह-उमाहन को घनआनँद लाग्यौ रहैई झरै।
मनभावन मीत सुजान-सँयोग बने बिन कैसैं बियोग टरै।
कबहूँ जौ दई-गति सौं सपनो सो लखौं तौ मनोरथ-भीज भरै।
मिलिहू न मिलाप मिलै तनकौ उर की गति क्यौं करि ब्यौरि परै ॥४५६॥

दुख-धूम की धूँधरि मैं घनआनँद जौ यह जीव घिरयौ घुटिहै।
मनभावन मीत सुजान सौं नातो लग्यौ तनकौ न तऊ टुटिहै।
बन-जीवन प्रान को ध्यान रहो, इक सोच बच्यौऽब सोऊ लुटिहै।
घुरि आस की पास उसास-गरे जु परी सु मरे हूँ कहा छुटिहै ॥४५७॥

कहाँ, वह अनंग है। आपको मैं हृदय मैं बसाती हूँ तो वह इसके भीतर पहुँचकर क्रोध से भरकर जलाने लगता है। ऐन = घर। पारत = डालता है।

[४५५] हित = प्रेम को। भूल० = इस प्रकार भूल जाना चित्त नहीं भूलता। ज्यौ = जी। धीजत = स्थिर होता है। पास = फाँस, डोर। आव = आयु, जिंदगी। दाव = दावाग्नि, बन की भीषण आव। आव० = मैंने तो अपने जीवन-वन मैं दावाग्नि प्रज्वलित कर रखी है, देखूँ आनंद के घन उसे बुझाने के लिए कब घिरते हैं।

[४५६] मुख० = मुँह देखना, दर्शन। झरै = झड़ी ही, आँसू का प्रवाह। दई-गति = दैवगति से, कदाचित्। मनोरथ० = मनोरथ की आर्द्रता से हृदय गीला हो जाता है। ब्यौरि० = सुलझे।

[४५७] बन-जीवन = श्रीकृष्ण। प्रान = प्रिय। इक सोच = यही एक सोच है। अब० = अब प्रिय का ध्यान भी लुट जानेवाला है। मरते समय यह सोच नहीं है कि मर रही हूँ, सोच यही है कि चेतना के लोप मैं उनका ध्यान कैसे कर सकूँगी। घुरि० = आशा के पाश मैं कसा हुआ उसास का

ए मन मेरे कहा करी तैँ तजि दीन चल्यौ जु प्रबीन ह्वै तो सौ।
ल्यायौ न काहुवै आँखि-तरैं हौं कहूँ कबहूँ करि तेरो भरोसौ।
मीत सुजान मिल्यौ सु भली करी बावरे मो सौं भयौ कित रोसौ।
सोचत हौं अपने जिय मैं सपने न लहौं घनआनँद दोसौ ॥४५८॥
रीझि बिकाय निकाई पै रीझि थकी गति हेरत हेरन की गति।
जोबन-घूमरे नैन लखैं मतवारी भई मति वारि कै मोमति।
बानी बिलानी सुबोलनि मैं, अनचाहनी चाह जिवावति है हति।
जान के जी की न जानि परै घनआनँद या हू तें होति कहा अति ॥४५९॥

कवित्त

कोऊ मुँह मोरौ, जोरौ कोरिक चवाई क्यौं न,
तोरौ सब कोऊ, करि सोरौ मेरैं को सुनै।
नेह-रस-हीन-दीन अंतर मलीन, लीन
दोष ही मैं रहै, गहै कौन भाँति वे गुनै।
रूप-उजियारे जान प्यारे पर प्रान वारे,
आँखिन के तारे, न्यारे कैसें धौं करौं उनै।
टरै नहीँ टेक एक यहै घनआनँद जौ,
निंदक अनेक सीस खीसनि परे धुनै ॥४६०॥

गला क्या मरने पर भी छूटेगा। मरने पर भी आशा साँसों के साथ ही लगी रहेगी।

[४५८] दीन = मुझ दीन को। दोसौ = दोष भी।

[४५९] रीझि० = रीझ के हाथों बिककर। निकाई = सुंदरता। थकी० = देखने की गति (दृष्टि) उनकी गति (ढंग) देखते देखते थक गई। घूमरे = मत्त। वारि० = निछावर करके। मोमति = अपनत्व। बानी० = उनके बोलने मैं मेरी वाणी विलीन हो गई, उनकी वाणी सुनकर मैं मौन हूँ। अनचाहनी = न चाहने योग्य, अग्राह्य। हति = मारकर। अति = ज्यादती।

[४६०] चवाई = बदनामी करनेवाले। तोरौ० = संबंध तोड़ लें। करि० = मेरे शोर करने पर भी कौन सुनता है। वे गुनै = उन गुणों को। खीसनि० = लज्जा मैं पड़ा केवल अपना सिर पीटता है।

सवैया

रावरे रूप की रीति नई यह जोहन राखत लै गहि गोहन।
जान न देत कहूँ कबहूँ तिन लेत है हो करि दीठि को दोहन।
सूझ सबै जु टरै घनआनँद बूझि परै न महा मति-मोहन।
देखै कहा, जौन दीसौ इते पर, हाहा सुजान तिहारियै सौंहन ॥४६१॥

रीझि तिहारी न बूझि परै, अहौ बूझति हैं कहौ रीझत काहें।
बूझि कै रीझत हौ जु सुजान किधौं विन बूझ की रीझ सराहें।
रीझ न बूझौ तऊ मन रीझत, बूझि न रीझे हू ओर निवाहें।
सोचनि जूझत सूझत ज्यौं, घनआनँद रीझ औ बूझहि चाहें ॥४६२॥

कवित्त

लहकि लहकि आवै ज्यौं ज्यौं पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौं त्यौं तन ताँवरे तचै।
बहकि बहकि जात बदरा विलोकें हियो,
गहकि गहकि गहबरनि हिये मचै।
चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहै,
कैसें घनआनँद सुजान विन ज्यौं बचै।
महकि महकि मारै पावस प्रसून-बास,
आसनि उसास दैया कौ लौं रहियै अचै ॥४६३॥

---

[४६१] जोहन० = देखने मात्र से ही पकड़कर अपने साथ रख लेता है। डीठि० = दृष्टि को दुह लेता है। सूझ० = कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। बूझि = मति को अत्यंत मोहनेवाला वह रूप कुछ समझ ही में नहीं आता। देखै० = यदि इतने पर भी दिखाई नहीं पड़ते तो क्या देखूँ।

[४६२] बूझति० = पूछती हूँ। बूझि = समझ-बूझकर। बूझ = बुद्धि, समझ। रीझ = मेरी रीझ को समझते नहीं, स्वीकार नहीं करते। बूझि न० = विना समझे रीझ जाने पर भी अंत तक निर्वाह करने की प्रतिज्ञा है। सूझत० = मन बेहोश हो जाता है। रीझ० = आप की यह रीझ और बूझ देखकर।

[४६३] लहकि० = झौंके के साथ। ताँवरे = ताप से। गहकि = बारंबार लालायित होने से। गहबरनि = व्याकुलता। हियेँ० = हृदय पर छा जाती है।

सवैया

लहौं जान पिया लखि लाखन प्रान, पै वारिबे की अभिलाष मरौं।
सु कहौं किहि भाँति अनोखियै पीर अधीर ह्वै नैननि नीर भरौं।
घनआनँद कीजै विचार कहा महा रंक लौं सोच-सकोच ररौं।
चित-चोपन चाह के चौचँद मैं, हहराय हिराय कै हारि परौं ॥४६४॥
घूँटैं घटा चहुँघा घिरि कै, गहि काढ़ै करेजो कलापिन कूकैं।
सीरी समीर सरीर दहै, चहकै चपला चख लै करि ऊकैं।
एहो सुजान तुम्हैं लगे प्रान सु पावस यौं तजि ध्यावस सूकैं।
ह्वै घनआनँद जीवन-मूल, धरौ चित मैं कित चातिक-चूकैं ॥४६५॥
मो दृग-तारनि जौ पै तिहारो निहारिबोई है महासुख-लाहौ।
तौ पै कहा हो हठीले सुजान ये चाहँ परे तुम नेको न चाहौ।
रावरी बानि अनोखियै जानि कै प्रान रचे तिहि रंग सराहौ।
कै विपरीति मिलौ घनआनँद या विधि आपनी रीति निबाहौ ॥४६६॥

कवित्त

ऊतर सँदेसो मिलैं मेल मानि लीजत हो,
ताहू को अँदेसो अब रह्यौ उर पूरि कै।
उठी है उदेग-आगि, जीजै कौन आस लागि,
रोम रोम पीर पागि डारी चिंता चूरि कै।

चहकि० = जला देती है। चखनि० = नेत्रों से देखने पर। ज्यौ = जी। त्रासनि०= त्रास के कारण साँसों को पीकर कब तक प्राण बचाए जायँ।

[४६४] लखि० = उन्हें देखने से लाखों प्राण मिल जाते हैं। वारिबे०= (प्राण) निछावर करने की इच्छा से ही मरती हूँ। ररौं = रटती हूँ। चौचँद= शोर। हहराय = घबराकर। हिराय० = खोकर। हारि० = हार मान बैठती हूँ।

[४६५] घूँटैं० = घूँटे जा रही हैं। कलापिन० = मयूरों की ध्वनियाँ। चहकै = जला देती है। लै करि० = उल्का लेकर, लुक लेकर। ध्यावस = धैर्य, ढारस।

[४६६] लाहौ = लाभ ही। चाहँ० = चाह में पड़े हैं। नेकौ० = जरा सा भी नहीं देखते।

निपट कठोर कियौ हियो, मोह मेटि दियौ,
जान प्यारे नेरे जाय मारौ कित दूरि कै।
तरफौं बिसूरि कै बिथा न टरै मूरि कै,
उड़ायहौं सरीरे घनआनँद यौं धूरि कै ॥४६७॥

मोहिं दीठि-कारन हौ, दुख-तम-टारन हौ,
प्रीति-पन-पारन हौ कहाँ लौं कहौं जसै।
लोचननि तारे, अचिरज-भारे जान प्यारे,
तुम ही तें पियत तिहारे रूप के रसै।
बात अटपटी बढ़ी चाह-चटपटी रहै,
भटभटी लागै जौ पै बीच बरुनी बसै।
लै लै प्रान वारौं इक टक धारौं यौं बिचारौं,
हाहा घनआनँद निहारौ दीन की दसै ॥४६८॥

अवधि सिराएँ ताप-ताते ह्वै कलमलाय,
आपु चाय-बावरे उमहि उफनात हैं।
दरस-दुखारे चैन-बंचित बिचारे हारे,
आँखिन के मारे आय तहीं मड़रात हैं।

---

[४६७] ऊतर० = आप की ओर से उत्तर और संदेश पाकर मैं आप को अपने अनुकूल (अपना स्नेही) समझ लेती थी। पर अब उसका भी खटका है। नेरे० = निकट जाकर अनुकूल होकर फिर दूर होकर क्यों मारते हो। मूरि कै = मूल से, जड़ से। उड़ायहौं = आप से मिलने के लिए अब शरीर को धूल करके उड़ाऊँगी।

[४६८] दीठि० = दृष्टि देनेवाले। तुम ही० = आप के पिलाने पर ही नेत्र आप के रूप-रस को पीते हैं। भटभटी० = यदि आप को देखते समय बीच में बरौनी भी पड़ जाय तो उसका व्यवधान भी आँखों में भटभटी (देखते हुए भी न देख सकना) उत्पन्न कर देता है।

[४६९] सिराएँ = बीत जाने पर। ताप० = संताप से उत्तप्त होकर। कलमलाय = व्याकुल होकर। उमहि = उमंगित होकर। उफनात० = निकल जाने के लिए उतावले होते हैं। दरस० = दर्शन के लिए दुःखी। चैन० = सुख-

इते पै अमोही घनआनँद रुखाई, उर
सोचनि समाय कै थहरि ठहरात हैं।
जानि अनखौंहीं बानि लाड़िले सुजान की सु,
करि हूँ पयान प्रान फेरि फिरि जात हैं ॥४६९॥

साहस सयान ज्ञान ताकत तुम्हैं सुजान,
तब ही सबनि तजी, अब हौं कहा तजौं।
रावरेई राखे प्रान रहे, पै दहे निदान
यौं ही इन काज, लाज बिन हौं खरी लजौं।
ऐसी कै बिसारी, गौं तिहारी न बिचारी परै,
आनँद के घन हौ अमोही जौ ढरौ अजौं।
कौन बिधि कीजै कैसैं जीजै सो बताय दीजै,
हाहा हो बिसासी दूरि भाजत तऊ भजौं ॥४७०॥

घेर्यौ घट आय, अंतराय-पटनि-पट पै,
ता मधि उजारे प्यारे पानस के दीप हौ।
लोचन-पतंग संग तजै न तऊ सुजान,
प्रान-हंस राखिबे कौं धरे ध्यान-सीप हौ।

रहित। हारे० = आँखों के कारण विवश, आँखों की दर्शन-लालसा के कारण व्यग्र। आय० = आँखों में आकर वहीं मड़राते रहते हैं। थहरि = काँपकर। अनखौंहीं = थोड़े में ही चिढ जाने की, रूठनेवाली। करि हूँ० = प्रस्थान करके भी प्राण फिर लौट पड़ते हैं।

[४७०] साहस० = तुम्हें देखते रहने से मुझे साहस, चातुर्य और ज्ञान इन सब ने छोड़ दिया। अब मुझे त्यागने के लिए कुछ रह ही नहीं गया। दहे = जले। निदान = अंत में। गौं = बात। न बिचारी० = समझ में नहीं आती। ढरौ = कृपा करो, पिघलो, द्रवीभूत होओ। अजौं = अब भी। भाजत = भागते हो। भजौं = तुम्हें ही भजती हूँ।

[४७१] अंतराय = विघ्न। पटनि० = परत पर परत करके लिपटे वस्त्र। पानस = फानूस। पतंग = फतींगा। प्रान० = प्राणरूपी हंस को जिलाने के

ऐसेँ कहौ कैसेँ घनआनँद बताऊँ दूरि,
मन-सिंघासन बैठे सुरत-महीप हौ।
दीठि आगै डोलौ, जौ न बोलौ कहा बस लागै,
सोहिँ तौ बियोग हू मैँ दीसत समीप हौ ॥४७१॥

सवैया

हित-भूलनि पै कित भूलि रहे अहो भूलि हू नीके न जानत हौ।
उहि भूलनि संग लगी सुधि है जु सुजान सदा उर आनत हौ।
घनआनँद सोऊ न भूलत क्यौँ जु पै भूलि ही कौँ ठिक ठानत हौ।
तब भूलि कै लैहौ कछू सुधि तौ चित दै इतनौ किन मानत हौ ॥४७२॥

कवित्त

अलग भयौ है 'लगि तुम्हैँ और ठौरन तैँ,
सुलग्यौ करत ऐसी गति लागी मो हियै।
क्यौँ हूँ न परत गह्यौ रह्यौ गहि एक टेक,
आनँद के घन आप अधिक अमोहियै।
खरक दुहेली हो असूझ रूप रावरे की,
दीठि पाय काँटौ कहौ कौन बिधि टोहियै।

लिए ध्यानरूपी मोती को धारण करनेवाली सीप हो। सुरत० = स्मृति के शासक। लागै० = जान पड़ता है।

[४७२] हित० = प्रेम के भूलने पर क्यों मग्न हैं। भूलि हू० = आप को भूलना भी ठीक ठीक नहीं आता, प्रेम का भूलना कोई अच्छा भूलना नहीं। उहि० = तुम्हारे उस भूलने में ही मेरी सुध लगी है, उसी का स्मरण करती हूँ। न भूलत० = यदि आप ने भूलने का ही निश्चय कर लिया है तो भूलने को ही क्यों नहीं भूल जाते। तब० = ऐसा करने से यदि जानते-बूझते नहीं, तो भूले-भटके तो मेरी सुध आ ही जायगी।

[४७३] सुलग्यौ = सुलगता ही रहता है; भली भाँति लगता है। खरक = खटक। दुहेली = दुखद। दीठि = दृष्टि पाकर भी यदि लगा काँटा खोजा न जा सका तो व्यर्थ है।

जब तैं सुजान प्रान प्यारे पुतरीनि-तारे,
आँखिन बसे हौ सब सूनो जग जोहियै ॥४७३॥

जब तैं निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तब तैं गही है उर आन देखिबे की आन।
रस-भीजे बैननि लुभाय कै रचे हैं तहाँ,
मधु-मकरंद-सुधा नावौ न सुनत कान।
प्रानप्यारी ज्यारी घनआनँद गुननि कथा,
रसनौ रसीली निसिबासर करत गान।
अंग अंग मेरे उन ही के संग रंग रँगे,
मन-सिंघासन पै बिराजै तिन ही को ध्यान ॥४७४॥

सवैया

ढिग बैठे हू पैठि रहै उर मैं घर कै दुख को सुख दोहत है।
दृग आगे तैं बैरी टरै न कहूँ जगि जोहन अंतर जोहत है।
घनआनँद मीत सुजान मिलैं, बसि बीच तऊ मति मोहत है।
यह कैसो सँजोग न बूझि परै जु बियोग न क्यौं हूँ बिछोहत है ॥४७५॥

कवित्त

गहैं एक टेक, टारि दीने हैं बिबेक सब,
कौन प्यास पीर-पूरे नीरहि रितौत हैं।
कैसें कही जाय हेली इनकी दुहेली दसा,
जैसे ये बियोगी निसिबासर बितौत हैं।

---

[४७४] उर० = हृदय ने दूसरे को देखने की शपथ ले ली है, अर्थात् दूसरे को न देखने की प्रतिज्ञा कर ली है। मधु० = अमृत से भरी अपनी वाणी सुनाओ तो ये सुनें, नहीं तो इन्होंने सुनना भी छोड़ दिया है। ज्यारी = जिलानेवाली।

[४७५] ढिग० = उनके पास बैठे रहने पर भी वह (वियोग) हृदय में धँसा रहता है। जगि० = (वह वियोग) देखने के बीच में प्रकट होकर देखने लगता है। बसि० = व्यवधान के रूप में आकर मन को मूर्छित (बेहोश) कर देता है।

कहिबे को मेरे, पै अनेरे ये रे जाहिं नाहिं,
अति ही अमोही मोहिं नेकौ न हितौत हैं।
जब तें निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तें अनोखे नैन काहिँ न चितौत हैं ॥४७६॥

बेध्यौ लै बिसासी मोहिं गाँसी नेकु हाँसी ही मैं,
घूमि घूमि मेरो घनो मरम महा पिराय।
होत न लखाय क्यौं हूँ घाय हाय कहा करौं,
जरौं बिष-ज्वाल पै न काल कैसें हूँ निराय।
जीवन की मूरि जाहि मान्यौ तिन चूरि करी,
खरी बिपरीति दई हेरि हौं गई हिराय।
हैरी घनआनँद सुजान बैरी पैंड़े पर्यौ,
दै री अब ऊतर यौं धीर हू चल्यौ धिराय ॥४७७॥

सवैया

जिन ही बरुनीन सौं बेध्यौ हियो तिनही दग-हाथ सिवावत हौ।
बिष-भोए कटाछिन ही हँसि दै जु सुजान सुधाहि पिवावत हौ।
अनबोले रहौ जू अनोखे अजौं रस मैं अब रोष दिवावत हौ।
घनआनँद चूकौ न दाव कहूँ फिरि मार न-चाव जिवावत हौ ॥४७८॥

कवित्त

मोहिं दुख-दोष सोखै, पोखै सुख तोहि, मोहिं
चिंता-चिता चूरि तोहि राखै निधरक है।

---

[४७६] रितौत० = टपकाते हैं। हेली = हे सखी। दुहेली = कष्टदायक। अनेरे = विलक्षण, अपरिचित। न हितौत० = भलाई नहीं करते हैं। काहिँ = किसी को भी।

[४७७] घूमि० = मत्त होकर। मरम = मर्मस्थल, कलेजा। घाय = घाव। न निराय = निकट नहीं आता। हेरि० = देखने में मैं खो गई। पैंड़े० = पीछे पड़ा। दै री० = अब जवाब देकर धैर्य भी धैर्यपूर्वक चला जा रहा है।

[४७८] जिन ही० = तुम्हारे जिन नेत्रों ने बरौनी के बाण से हृदय बिद्ध किया उन्हीं नेत्रों के हाथ से तुम मेरा हृदय सीते हो। बिष-भोए = विषयुक्त।

रूवाय कै जगावै मोहिँ, बिहँसावै स्वावै तोहि,
तेरे भूल भरै मोहिँ सालै ज्यौँ करक है।
तोहि चैत-चाँदनी मैँ सरसै हरष-सुधा,
मोहिँ जारै मारै ह्वै बिषाद को अरक है।
कहूँ घनआनँद घमड़ उघरत कहूँ
नेह की बिषमता सुजान अतरक है ॥४७९॥

लालसा ललित मुख-सुषमा निहारिबे की,
बरनी परै न ज्यौँ भरी है नैन छाय कै।
ठौर के सँकोच दीठि हूँ कौँ अति सोच बाढ्यौ,
बिना तुम्है कहौ और कहाँ रहै जाय कै।
बानिक-निकाई नीके हेरियै सुजान हौ जू,
कीजियै कहा धौँ सोऽव दीजियै बताय कै।
एक ठावँ दुहुनि बसैयै सुख-दुख कैसैँ,
हाहा घनआनँद सुरस बरसाय कै ॥४८०॥

सोभा-लोभ लागि अंग-रंग-संग प्रीति पागि,
जागि जागि नेकौ न निमेष टेक तैँ टरी।
बोलनि चितौनि चारु डोलनि कलोलनि सौँ,
चाहि चाहि रंक लौँ सु संपति हियेँ धरी।
ऐसैँ ही मैँ असह बिरह कित हू तैं आय,
बावरे-सुभाय-बस कुटिलाई है करी।

मारन० = आप अपना मारने का उत्साह दिखाकर मुझे जिलाते हैँ।

[४७९] निधरक = निश्चिंत। स्वावै = सुख की नीँद सुलाता है। सालै० = गाँस की भाँति पीड़ा करता है। अरक = अर्क, सूर्य। अतरक = अतर्क्य।

[४८०] छाय० = भली भाँति, लबालब। ठौर० = स्थान की कमी के कारण। बानिक = छटा, मुद्रा। सुरस = जल ; आनंद।

[४८१] लागि = लिए। प्रान० = प्राण का दान करनेवाले। बुधि० = बुद्धिमान्।

अब घनआनँद सुजान प्रान-दान भेटौं,
बिधि बुधि-आगर पै जाचत यहै घरी ॥४८१॥

प्रानन के प्रान, एहो सुंदर सुजान, सुनौ
कान धरि बात, नेकु मेरी ओर चाहियै।
रूप दरसाय, चोप-चाय सरसाय हाय,
त्याए करि हाँसी मैं बिसास हरि ता हियै।
भीजे घनआनँद बिराजौ निधरक तुम,
ताहि चिंता-चिता-बीच ऐसें अब दाहियै।
सब बिधि लायक नवल नेही नायक हौ,
कहा लौं रसीले गुन-गननि सराहियै ॥४८२॥

सवैया

देखि सुजान छए घनआनँद, ढीठ भए सु न नीठ सकोचत।
चाह के दाह भरे कित तें नित पीर अधीर ह्वै नीरद मोचत।
लोभी तऊ अकुलाय कै प्यासनि रूप के पानिप-लेस कों लोचत।
नैन असोचिन की गति हेरि कै बीतत री निसिबासर सोचत ॥४८३॥

कवित्त

मोहिं मेरे जिय की जनायबो अजानता है,
जानराय जानत हौ सकल-कला-प्रवीन।
औगुन बिचारौ जौ पै तौ गुन कहा तिहारो,
आप त्यौं निहारौ पन पारौ जू सँभारौ दीन।
जतन कहा बताऊँ तुम ही तें तुम्हैं पाऊँ,
रावरोई जस गाऊँ बावरे लौं हित-लीन।

---

[४८२] बिसास = विश्वासघात। ता हियै = उसके हृदय को।

[४८३] नीठ = किसी प्रकार भी। नीरद० = बादल की (सी) वृष्टि करते हैं। पानिप० = सौंदर्य के पानी (आब) के लेश मात्र के लिए चिंतित रहते हैं। असोची० = किसी बात का विचार न करनेवाले।

[४८४] अजानता = अज्ञान, मूर्खता। पारौ = पालो। रसरासि = आनंद की राशि ; समुद्र।

रहौं लगि आस घनआनँद मिलन-प्यास,
एहो रसरासि ज्याय लीजै ढरि निज मीन ॥४८४॥

सब बिधि लायक असेष सुखदायक हौ,
तुम ही पै बनै बेसम्हारनि सम्हारिबो।
निघटत नाहिँ मो घटाई, उघटत क्यौं हूँ,
रावरी वड़ाई आहि प्रीति-पन-पारिबो।
एहो घनआनँद सुजान एक टेक ही सौं,
चातिक बिचारे को है जीवनि बिचारिबो।
यातैं निसदिन सब रस दरसाएँ और,
टक जक लाएँ लोभी करत निहारिबो ॥४८५॥

नेही-सिरमौर एक तुम ही लौं मेरी दौर,
नाहीं और ठौर, काहि साँकरै सँभारियै।
दरसन-दान दीजै भावते सुजान, रहे
आसा लागि प्रान आन बोलत तिहारियै।
गुन-माला फेरौं निगुनी ह्वै नित हित हेरौं,
बिरह-अधीर टेरौं पीरहि निवारियै।
पन-तन ताकौ जो हो काचो सो तौ आहि पाकौ,
आनँद के घन प्रीति-साको न बिगारियै ॥४८६॥

बैनन मैं बोलै, नैन-ऐन चैन सों कलोलै,
गैन-संग डोल पै न परस-परोस है।
हेरति हिरावँ एक ठौर हू न लहौं ठावँ,
झुरि मुरि झावदार ऐसी पीर को सहै।

---

[४८५] निघटत = घटती नहीँ। उघटत = प्रकट करने से। सब० = सब प्रकार की वृत्तियाँ दिखाता हुआ। टक = टकटकी। जक = धुन।

[४८६] साँकरै० = संकट मैं किसका ध्यान करूँ। आन = दुहाई। माला = समूह ; जपने की माला। हित = प्रेम। पन० = अपनी प्रतिज्ञा की ओर देखिए। जो हो० = जो पहले प्रेम मैं कच्चा था वह (मैं) प्रेम मैं पक्का हो गया हूँ। प्रीति० = प्रेम की ख्याति मत बिगाड़िए।

पाय न परति बात, प्रान पौढ़ि करै घात,
जानराय प्यारे को नवेला रस-रोस है।
अपने किये की छाँह वैठियै वखानै जग,
वे तौ घनआनँद मो देखन को दोस है ॥४८७॥

अंग अंग छाई है उदेग उरझानि महा,
साँस लैवो आली गिरि हू तें गरुवौ लगै।
जोवन-सरूप-गुन सूल से सलत गात,
तूल तिनका लौं ह्वै गुमान हरुवौ लगै।
सुंदर सुजान प्रानप्यारे के निहारे विन,
दीठि तौ अदीठि सी उजार घरुवौ लगै।
और जे सवाद घनआनँद विचारै कौन,
विरह-विपाद-जुर जीवो करुवौ लगै ॥४८८॥

जे दृग सिराए घनआनँद दरस-रस,
ते अव अमोही दुख-ज्वाल जारियत है।
तोखे हित-पोखे नित जेई प्रान राखि, साथ
तेई कै अनाथ यौं अकेले मारियत है।
कौन कौन बात को परेखो उर आनियै हो,
जान प्यारे कैसें विधि-अंक टारियत है।

---

[४८७] ऐन = घर। चैन० = चैन से व्याकुल हैं। गैन = गमन। पै न० = स्पर्श का लेश भी नहीं पाती। हेरति० = देखने में खो जाती हूँ। झाबदार = झब्बेदार, बनी-ठनी, भरी-पूरी, परिपूर्ण। पाई० = बात समझ में नहीं आती। रस० = प्रीति का रोप। आपने० = अपनी की हुई छाया में बैठने से संसार प्रशंसा करता है। पर यहाँ तो मुझे देखने में भी आप को दोष लगता है।

[४८८] गरुवौ = भारी। सूल० = काँटे की भाँति शरीर में घुसते हैं। तूल = रूई। हरुवौ = हल्का। करुवौ = कड़ुवा ; बुरा।

[४८९] सिराए = शीतल हुए। रस = आनंद ; जल। विधि० = ब्रह्मा के अक्षर।

थाती लौं तिहारी प्रीति छाती पै बिराजि रही,
हेरि हेरि आँसुन-समूह ढारियत है ॥४८९॥

सवैया

फल होत दियें सम कै अधिकै बरनैं कबि-कोबिद यौं सब ही।
बिपरीति लखी यह रीति अहो, परतीति-गही मति मोह बही।
उत कौं घनआनँद गौं है यही, इत की जु सुजान बनी सु सही।
दुख दै सुख पावत हौ तुम तौ चित के अरपे हम चिंत लही।४९०॥

नैन कहै सुनि रे मन! कान दै क्यौं इतने गुन भेटि दयौ है।
सुंदर प्यारे सुजान को मंदिर बावरे तू हम ही तें भयौ है।
लोभी तिन्हैं तनकौ न दिखावत ऐसो महामद छाकि गयौ है।
कीजियै जू घनआनँद आय कै पाय परौं यह न्याव नयौ है ॥४९१॥

कवित्त

सुंदर सुजान प्रानप्यारे महा कोमल ह्वै,
दीन के हृदै कों दैया दुखनि कहा दरौ।
सुजस-मयंक हौ पै लागत कलंक बड़ो,
बापुरे चकोर कों जौ त्यागिबोई आदरौ।
मेरे दोष देखौ तौ परेखो है अलेखो ए जू,
मीन ढोलै निधि कैसें बूझियत गादरौ।
चातिक बिचारो घनआनँद पुकार जानै,
मूँदि क्यौं सकत है बिदरि गएँ बादरौ ॥४९२॥

---

[४९०] सम कै = दान के बराबर या अधिक। परतीति० = विश्वास करनेवाली मति मोह में बह गई, विश्वास करने से मति मोह में पड़ गई। गौं = घात की बात।

[४९१] हम हीं० = मेरे ही कारण तो तू सुंदर प्यारे सुजान का मंदिर बन सका है। लोभी० = सुजान को तू ने अपने में ही छिपा रखा है, मुझे कुछ भी नहीं दिखाता। तू कैसा मदमत्त है।

[४९२] दरौ = दलते हो। आदरौ = स्वीकार करो, मानो। परेखो = खेद। मीन० = मीन के लिए। निधि = समुद्र। गादरौ = शिथिल। मीन० =

सवैया

कहियै किहि भाँति दसा सजनी अति ताती कथा रसनाहिँ दहै।
अरु जौ हिय ही मधि घूँटि रहौँ तौ दुखी जिय क्यौँ करि ताहि सहै।
घनआनँद जान न कान करैँ इत के हित की कित कोऊ कहै।
उत ऊतर-पायँ लगी मिहँदी सु कहाँ लगि धीरज हाथ रहै ॥४६३॥

बिन बूझ असूझ बिरंचि रचे सपने हूँ न लागनि गैल गईं।
जिन बावरी रोग-बियोग-भरी रचि ये हम कौँ तम-जोग दईं।
घनआनँद मीत सुजान लखैं अभिलाषनि लाखनि भाँति रईं।
मुख-माधुरी-पान कौँ आतुर पै अखियाँ दुखियाँ कित भोरी भईं ॥४६४॥

कवित्त

गाँसनि गसीले गरुवाई औ गरूर भरे,
जकरि पकरि और ओरनि तें छोरी हौँ।
मोहन महा ढरारे, सोहन मिठास भारे,
जोहन उररि पैठि बैठि उर भोरी हौँ।

छोटी सी मछली के लिए अपार जलराशिवाले समुद्र का शिथिल पड़ना कैसा। चातक = बेचारा चातक तो केवल पुकार करना जानता है, छिन्न-भिन्न हो जानेवाले बादल को वह नेत्रों में कैसे ढके रह सकता है। जो बादल खुल गए हों उनको वह अपनी पुकार से एकत्र करने में कैसे समर्थ हो?

[४६३] ताती = तप्त। हिय० = यदि हृदय में ही उसे पी जाया जाय तो। कित = कितना ही। उत० = वहाँ तो उत्तर के पैरों में मेहँदी लगी है, उत्तर आता ही नहीं। कहाँ० = कहाँ तक धैर्य हाथ में रहे, कहाँ तक धैर्य धारण किया जाय।

[४६४] बिन० = बिना बिचारे। असूझ = सूझ से हीन। बिरंचि = ब्रह्मा। सपने हूँ० = स्वप्न में भी ये लगने के मार्ग पर नहीं गईं, ये लगती ही नहीं, खुली ही रहती हैं। तम-जोग = अंधकार के योग्य, अंधकारमय। रईं = रँगी, युक्त हुईं।

[४६५] गाँस० = गाँस (मनमुटाव) से भली भाँति युक्त। गरुवाई = गुरुता। ढरारे = दयालु; द्रवणशील। उररि = बरबस हृदय में धँसकर।

नेह-निधि लाड़िले नवेली रीति रावरी है,
तीर आएँ बिरह-गहर लै झकोरी हौं।
तरिबो सुन्यौ हो गुन गहें घनआनँद पै,
जान प्यारे गुननि तिहारे गहि बोरी हौं ॥४९५॥

सवैया

बात अनोखी कहा कहियै सुनि बैठे सरै न करै कछु कीबो।
देखत देखत सूझि परै नहीं बूझत बूझत बौरई लीबो।
एहो सुजान दुहेली दसा दुख हाथ लगे हू न छीजत दीबो।
है घनआनँद सोच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीबो ॥४९६॥

कवित्त

छाए परदेस जान प्यारे संग लै सँदेस,
मो मन अँदेस आली साँसनि रुँधै गरै।
मोरनि की कूक सुनि उठति हिये मैं हूकैं,
चूकै नहीं चातिक-करेजो कढ़िबो अरै।
दामिनी की कौंधि लखि चौंधनि भरत चख,
अंग अंग सीरीयौ समीर परसैं जरै।
घेरि घूँटि मारै चहूँघा तैं घनआनँद यौं,
बादर अडंबरनि डावाँडोल ज्यौं करै ॥४९७॥

तीर = तट ; निकट। गहर = गहराई। झकोरी = झटका देकर गिरा दी गई हूँ। गुन = डोर। गुननि = डोर ; विशेषता।

[४९६] न बैठे० = न तो बैठे काम बनता है और न काम करना ही किसी काम आता है। न काम करने में आराम मिलता है, न न करने में ही। बौरई = पागलपन। छीजत दीबो = दुःख हाथ लगने पर भी उनका दुःख देना कम नहीं हो रहा है, दुःख पर दुःख मिलता है। मरिबो० = बिना मृत्यु के मरना और बिना प्राण के जीना पड़ता है।

[४९७] संग० = संदेश को भी साथ लिए हुए, संदेशों का कोई उत्तर नहीं मिलता। गरै = गला ही। हूकैं = पीड़ाएँ। घूँटि = दम घोंटकर। अडंबर = बादलों में सूर्य-किरणों की ललाई का छाना।

तिन हू तें हरई भई है गुर-जन-आगें,
पुर-जन-पुंज मैं कहानी सी धौं कौन काज ।
तो हित बोहित जानि मोहित बिहंग-मन,
आसा-गुन बँध्यौ हेरि नेह को सरितराज ।
कीजै कहा ऐसी अब अति ही अनैसी बात,
हाहा घनआनँद अमैड़नि के सिरताज ।
सुंदर सुजान ह्वै सुहाई पै न आई तोहि,
एहो निरमोही नेकौ लाज हू तजे की लाज ॥४९८॥

सवैया

प्रान परे निरमोही के पानि सु जानि परै वाकी नाहीँ न हाँ है ।
कै अपने सपने हू न सोचत मो चित ऊखिल ही लौं तहाँ है ।
ये मड़रात तऊ घनआनँद जीवनिमूरति जान जहाँ है ।
हाय दई न बसाय बिसासी सों ठौर रहेन कौं ठौर कहाँ है ॥४९९॥
जान सजीवन-प्रान लखें बिन आतुर आँखिन आवत आधे ।
लोग चवाई सबै निरदै अति बान से बैन अयान सों साधे ।
को समझै मन की घनआनँद औरई बेदन बौरई नाधे ।
पीर-भर्यौ जिय धीर धरै नहीँ कैसें रहै जल जाल के बाँधे ॥५००॥

---

[४९८] तिन = तृण । हरई = हलकापन । कहानी० = कथा की भाँति केवल कहने-सुनने योग्य । हित = प्रेम । बोहित = जहाज । हित = लिए । बिहंग० = मनरूपी पक्षी । सरित० = समुद्र । अमैड़ = मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला । सुहाई = अच्छी बात ।

[४९९] पानि = हाथ में । कै० = अपने वश म करके फिर कुछ ध्यान ही नहीँ देते । ऊखिल = अपरिचित, अजनबी । न० = वश नहीँ चलता । ठौर० = आप के पास रहनेवालों के लिए दूसरा स्थान कहाँ है ।

[५००] आधे० = वे प्राण आधे होकर व्याकुलतापूर्वक आँखों में आ बसते हैं । अयान० = अज्ञान के साथ । बौरई० = पागलपन ने विलक्षण वेदना उत्पन्न कर दी है ।

कवित्त

अघट घटाई भस्यौ निपट निघरघट,
मो घट क्यौँ रावरी वड़ाई लौँ निपटिहै।
नीके करि देखौ न परेखो उर आनौ, मानौ,
जान प्यारे पूरी पैज हाहा कैसैँ हटिहै।
दानी सनमानी दीन-दारिद-दलन ह्वै कै,
अति ही अचंभो* जौ कचाई-तन डटिहै।
जियैगौ पियैगौ रस कोऊ† दुखी चातिक तौ,
आनँद के घन को कहौ धौँ कहा घटिहै ॥५०१॥
जान प्यारे जहाँ हौ तहाँ हैँ मेरे प्रान संग,
जीबो कछू भ्रम ही सो मानि लीजियत है।
सुनिबो देखिबो स्वाद आदि दै धरम जेते,
सपने मैँ होत जो विचार कीजियत है।
रावरे सनेह यौँ अदेह कीनी, लीनी जीति,
आनँद के घन पै अचंभे भीजियत है।
जाकी गति मति औ सुरति सब हारियै जू,
ताहि कहौ कैसैँ धौँ बिसारि दीजियत है ॥५०२॥

---

[५०१] अघट = न घटनेवाली। घटाई = ओछापन, तुच्छता। निपट = अत्यंत। निघरघट = ढीठ, शोख। मो० = मेरा शरीर। बड़ाई = आप की बड़ाई तक कैसे पहुँच सकता है। परेखो = खेद। पैज = प्रतिज्ञा। कचाई० = कच्चेपन की ओर डटेगा, कचाई दिखाएगा। रस = जल ; आनंद। कहा = क्या।

[५०२] जीबो = जीना भ्रम सा ही समझ लिया है। आप ही मेरे जीवन हैँ, मेरा जीना तो भ्रम मात्र है। धरम = शरीर के धर्म। अदेह = शरीर के अध्यास से शून्य, शरीर की अनुभूति से रहित। आनँद० = जो आनंद का बादल है वह अचंभे से भिँगो रहा है। हारियै = हरण की हो, ले ली हो।

---

* दीन दासन पै आनि दया हियहु लगौ। † जित तित लागी एक तेरी आस।

(उपसंहार—कवित्त-प्रशस्ति)

कवित्त

नेह-कमरंद-भरे कैधौं अरबिंद-बृंद,
निरखत नसत सकल ताप ही के हैं।
कैधौं सुबरन के कलस ये सुधा सौं भरे,
स्वाद पाएँ लगत सवाद सब फीके हैं।
कैधौं अदभुत जलधर 'ब्रजनाथ' कहै,
नव-रस-रंग बरसत अति नीके हैं।
चोर चित्त-वित्त के कि पैठि बरजोर हियैं,
कैधौं बिलसत के कवित्त घन जी के हैं॥ ३॥

प्रगटे सुघन सुबरन स्वाति-जल जेते,
बसे छंद-बंद रीति सुकति अधार है।
सुंदर बिमल बहु अरथ-निधान देखौ,
अचिरज नेह-भरे झलकै अपार है।
कहै 'ब्रजनाथ' बहु जतननि आए हाथ,
बरनौं कहा लौं एतौ परम सुढार है।
ए जू सुनौ मित्त चित्त गुन मैं पिरोय इन्हैं,
राखौ कंठ मुकता-कवित्त करि हार है॥ ४॥

---

[३] हीं = हृदय। सुबरन = सुवर्ण, सोना ; सुंदर अक्षर। रस = जल ; आनंद। चित्त० = हृदयरूपी घन के। घन = घनानंद।

[४] घन = बादल ; घनानंद। बरन = वर्ण, रंग ; अक्षर। सुकति = शुक्ति, सीपी ; सूक्ति, सुंदर उक्ति। अरथ = धन, द्रव्य ; शब्द का तात्पर्य। गुन = डोर ; विशेषता। पिरोय = पिरोकर, गुहकर।

सवैया

स्वाद महा खर दाखनि चाखत ज्यौं जन-नैननि रोष बढ़ावै।
ज्यौं तरुनी-तन-रूप निहारत षंड बढ़ै हिय सोच उपावै।
चित्र-बिचित्र के भेद सराहत ज्यौं दगमंद न काहु सुहावै।
त्यौं घनआनँद-बानि बखानत मूढ़ सुजाननि आनि सतावै ॥ ५ ॥

कोटि बिषै करि ओट महा नहिँ नेह की चोटहि जे पहचानै।
बात के गूढ़ न भेदन जानत मूढ़ तऊ हठि बादन ठानै।
चाह-प्रबाह अथाह परे नहिँ आप ही आप बिचच्छन मानै।
पूँछ बिषान बिना पसु जो सु कहा घनआनँद-बानी बखानै ॥६॥

बिनती कर जोरि कै बात कहौं जौ सुनौ मन-कान दै हेत सौँ जू।
कबिता घनआनँद की न सुनौ पहचान नहीँ उहि खेत सौं जू।
जु पढ़े बिन क्यौं हूँ रह्यौ न परै तौ पढ़ौ चित मैं करि चेत सौँ जू।
रस-स्वादहि पाय बिषाद बहाय रहौ रमि कै इहि नेत सौँ जू* ॥७॥

मैं अति कष्ट सौं लीने कबित्त ये लाज बड़ाई सुभाय कौं खोय कै।
सो दुख मेरो न जानै कोऊ लै बखानै लिखाइयै मोहू कौं गोय कै।
कैसी करौं अब जाहुँ कितै मैं बिताए हैं रैनिदिना सब भोय कै।
प्रेम की चोट लगी जिन आँखिन सोई लहै कहा पंडित होय कै ॥८॥

गोपिन के रस को चसको जब लौं न लग्यौ तब लौं मन गुंज न।
नीरस की रसिकाई कहा सब ही बिधि है सठ रे भठ-भुंजन
प्रेम-पिकीन की प्यास भर्यौ घनआनँद छायौ जहाँ हित-पुंजन।
सीरी सुदेस सदा सुखमैन बसै जमुना-तट की उन कुंजन ॥९॥

---

[५] खर = गदहा। दाख = द्राक्षा, अंगूर, मुनक्का। षंड = नपुंसक। उपावै = उत्पन्न करता है। भेद = रहस्य। दग० = दीनदृष्टि व्यक्ति।

[६] पूँछ० = साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।

[८] गोय० = छिपाकर, भूलकर। भोय = लीन होकर।

[९] सुखमैन = सुख की कामना। भठ = भट्ठी में भूँजना।

* यह चरण हस्तलिखित पुस्तक में नहीं है, संपादक द्वारा बढ़ाया गया है।

हरि-राधा जहीँ जहीँ राजत हे वह ठौर जथारुचि रंजन है।
सु सँजोग वियोग महा रस-रूप तिहीँ तित ही मन मंजन दै।
न मिलै बिछुरै कबहूँ न कहूँ घनआनँद यौँ भ्रम-भंजन जै।
लखि लै सुख-संपति दंपति मैँ ब्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥१०॥
गोकुल की बर बानिक नैन सदा लखिबोई करै अनिमेखनि।
मंडित मोद अखंडित रूप भरौ मन रोमहि रोम सुदेखनि।
मोहन ही सब के धन जीवन प्रीति रची रस-रीति बिसेखनि।
पान करौ चित चातिक ह्वै घनआनँद चाह उमाह असेखनि ॥११॥

[१०] मंजन = मार्जन, स्नान।
[११] असेखनि = परिपूर्ण।